॥ श्रीः ॥

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला

२८५

म० म० श्रीहरिहरकृतं

प्रभा M M HA रिणयम्

'प्रकाश' हिन्द

akāśa' Hindi Commentary

व्याख्या By

आचार्य श्रीरामच 'ACANDRA MIŚRA

(प्राध्यापक · राजकीय संस्कृत it College, Patna

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी OFFICE

१९६६

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०२६
मूल्य : ६-००

Sanskrit Series Office
andir Lane
amba, Post Box 8
asi-1 (India)
1969
Phone : 3145

प्रधान शाखा
चौखम्बा विद्याभवन
चौक, पो० बा० ६९, वाराणसी-१
फोन : ३०७६

THE

HARIDAS SANSKRIT SERIES

285

PRABHĀVATĪPARIṆAYA

OF

M M HARIHARA

Edited with the 'Prakāśa' Hindi Commentary

By

ĀCĀRYA ŚRĪ RĀMACANDRA MIŚRA

Professor, Govt Sanskrit College, Patna

THE

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

VARANASI-1

1969

First Edition
1969
Price : Rs. 6-00

Also can be had of
THE CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Publishers and Oriental Book-Sellers
Chowk, Post Box 69, Varanasi-1 (India)
Phone : 3076

प्राक्कथन

नाटक साहित्य की प्राचीनता

भारतीय नाटक साहित्य विचारधारा तथा विकासक्रम में मूलतः स्वतन्त्र है, इस बात को अब सभी आलोचक मानने लग गये हैं। वैदिक साहित्य की समीक्षा से पता चलता है कि वैदिककाल में नाटक के सभी अङ्गों—सवाद, सङ्गीत, नृत्य एव अभिनयकला का किसी न किसी रूप में अस्तित्व था। ऋग्वेद में यम यमी, उर्वशी पुरूरवा और सरमा पणिके सवादात्मक सूक्तों में नाटकीय सवाद का तत्त्व वर्तमान है। सामवेद की सङ्गीतप्राणता अतिप्रसिद्ध है। आलोचकों का अनुमान है कि ऐसे सवाद ही कालान्तर में परिमार्जित होकर नाटकों के रूप में परिणत हुए। रामायण, महाभारतकाल में नाटक का कुछ और स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है। विराट् पर्व में रङ्गशाला का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। नट शब्द का भी वहाँ प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ श्रीधरस्वामी ने 'नवरसाभिनयचतुर' किया है। हरिवंश में रामायण की कथा पर आधारित एक नाटक के खेले जाने का वर्णन आया है। रामायण में भी 'नट', 'नर्तक', 'नाटक', 'रङ्गमञ्च' आदि का वर्णन स्थान स्थान पर मिलता है। रामायण में अभिनेता के अर्थ में 'कुशीलव' शब्द का प्रयोग भी पाया जाता है। महावैयाकरण पाणिनि ने 'पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः' इस सूत्र में नट सूत्र शब्द से नाट्यशास्त्र का स्मरण किया है।

इन सारी बातों पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि उनके पूर्व ही अनेक नाटक रचे जा चुके होंगे, जिन नाटकों के बाद इन नटसूत्रों की रचना हुई होगी, जिन्हें पाणिनि ने पूर्वनिर्दिष्ट सूत्र में स्मरण किया है। लक्ष्य ग्रन्थों को देखकर ही लक्षण ग्रन्थ बनते हैं। अतः नटसूत्रों से पूर्व में नाटकों का अस्तित्व मानना होगा। इस तरह हम देखते हैं कि संस्कृत नाटक साहित्य की परम्परा अतिप्राचीन है।

प्राचीन पद्धति के अनुसार विचार करने से भी नाटक साहित्य की प्राचीनता सिद्ध होती है। भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में लिखा है :—

"महेन्द्रप्रमुखैर्देवैरुक्तः किल पितामहः। क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत्॥
न वेदव्यवहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु। तस्मात्सृजापरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम्॥

एवमस्त्विति तानुक्त्वा देवराजं विसृज्य च।
सस्मार चतुरो वेदान् योगमास्थाय तत्त्ववित्॥

धर्म्यमर्थ्यं यशस्यं च सोपदेशं ससंग्रहम्। भविष्यतश्च लोकस्य सर्वकर्मानुदर्शकम्॥
सर्वशास्त्रार्थसम्पन्नं सर्वशिल्पप्रदर्शकम्। नाट्यसंज्ञमिमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम्॥
एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन्। नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसम्भवम्॥

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च। यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि॥
वेदोपवेदैः सम्बद्धो नाट्यवेदो महात्मना। एवं भगवता सृष्टो ब्रह्मणा ललितात्मकम्॥
आज्ञापितो विदित्वाहं नाट्यवेदं पितामहात्।
पुत्रानध्यापयं योग्यान् प्रयोगं चास्य तत्त्वतः॥
एवं प्रयोगे प्रारब्धे दैत्यदानवनाशने। अभवन् क्षुभिताः सर्वे दैत्या ये तत्र सङ्गताः॥
देवतानामृषीणाञ्च राज्ञामथ कुटुम्बिनाम्। कृतानुकरणं लोके नाट्यमित्यभिधीयते॥

शारदातनय ने भी अपने 'भावप्रकाशन' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में लिखा है —

कल्पस्यान्ते कदाचित्तु दग्ध्वा लोकान्महेश्वरः।
स्वे महिम्नि स्थितः स्वैरं नृत्यत्यानन्दनिर्भरम्॥
मनसैवासृजद्विष्णुं ब्रह्माणं च महेश्वरः। नियोगाद् देवदेवस्य ब्रह्मा लोकानथासृजत्॥
दृष्ट्वा च देवदेवस्य पुरा नृत्तमथास्मरन्। दिव्य चारित्रसंज्ञं स कथमप्यस्य नामिषात्॥
इति चिन्तापरे तस्मिन्नभ्यगाद्धदिवेश्वरः। स नाट्यवेदमध्याप्य सत्प्रयोगं चतुर्मुखम्॥
उवाच वाक्यं भगवान् नन्दी तच्चिन्तितार्थवित्।
नाट्यवेदोपदिष्टानि रूपकाणि च यानि तु॥
विधाय तेषामेकन्तु रूपकं लक्षणान्वितम्। भरतेषु प्रयोज्य त्वं तत्त्वतः सम्यग् विजानता॥
तस्मिन् प्रयुक्ते भरतैर्भावाभिनयकोविदैः।
प्राक्तनानि च कर्माणि प्रत्यक्षाणि भवन्ति ते॥
एवं सुवचनान्तरधान्नन्दी स भगवान् प्रभुः। श्रुत्वैतद्वचनं प्रीतो ब्रह्मा देवं समस्मरत्॥
ततस्त्रिपुरदाहाख्यं कदाचिद् ब्रह्मसंसदि। प्रयुज्यमाने भरतैर्भावाभिनयकोविदैः॥
तद्गतम् प्रेक्षमाणस्य मुनिभ्यो ब्रह्मणः क्रमात्।
वृत्तिभिः सह चत्वारः सन्ध्यारास्या विनिर्गताः॥"

उपर्युक्त समीक्षा तथा उद्धरणों से यह असन्दिग्ध रूप में कहा जा सकता है कि संस्कृत नाटक साहित्य ने अपने क्रमबद्ध विकास में वैदिक वाङ्मय, इतिहास एवं पुराणों से सहायता एवं प्रेरणा पाई है। इसमें भी सन्देह का स्थान नहीं है कि संस्कृत नाटकों के विकास में पर्याप्त समय लगा होगा।

कुछ पाश्चात्य विद्वानों का कहना है कि भारतीय नाटक साहित्य ग्रीक नाटकों से प्रभावित है। उनका तर्क है कि सिकन्दर बड़ा नाटक प्रिय राजा था, उसके मनोरंजनार्थ नाटकों का प्रचुर अभिनय हुआ करता था। भारत में आने वाले अन्य ग्रीक राजाओं की सभा में भी नाटक का काफी प्रचार था। इसका प्रभाव संस्कृत नाटक साहित्य पर पड़ा, किन्तु भारतीय प्रतिभा ने ग्रीक नाटकों के प्रभाव को आत्मसात् कर लिया।

जहाँ तक विचार का सम्बन्ध है हम इस बात में कुछ तथ्य नहीं मालूम पड़ता है। जैसा कि पहले कहा गया है, जब हम भारतीय नाट्य साहित्य को वेदों पर आधारित मानते हैं

तब उस पर ग्रीक नाटकों के प्रभाव की कल्पना क्यों की जाय ? यदि हम भारतीय नाटक साहित्य का विकास वेदमूलक मानते हैं तब तो वह स्वतन्त्र भी हो सकता है, उस पर ग्रीक प्रभाव की कल्पना कैसे प्रमाणित हो सकेगी ? ग्रीक नाटकों के साथ भारतीय नाटकों के तुलनात्मक अध्ययन से भी इनका अवान्तर भेद ही सिद्ध होता है। कुछ लोगों ने भारतीय नाटकों में 'जवनिका' शब्द का प्रयोग देखा, उसका शुद्ध रूप 'यवनिका' को माना और इसी 'यवनिका' शब्द के आधार पर कहना प्रारम्भ कर दिया कि भारतीय नाटक साहित्य पर यवनदेश यूनान का प्रभाव पड़ा है। यह कथन भी नितान्त भ्रमपूर्ण है। 'यवनिका' नहीं 'जवनिका' शब्द ही शुद्ध रूप है, वह द्रुतगामी वस्त्र खण्डों से बनी होने के कारण 'जवनिका' कही जाती है। राजशेखर ने जवनिका शब्द का प्रयोग किया है, उनके प्राकृत प्रयुक्त जवनिका शब्द का संस्कृत संस्करण 'यवनिका' कर इन स्वयम्भू संस्कृतज्ञों ने यूनान के सम्बन्ध का आविष्कार कर डाला। वस्तुतः संस्कृत तथा प्राकृत में भी जवनिका शब्द ही है। इस तरह के अज्ञानमूलक तर्कों की और क्या आलोचना की जाय ? भारतीय रङ्गमञ्च की व्यवस्था पूर्णता भी यूनानी प्रभाव की चर्चा के विपरीत है। यूनान के नाटक जब खुले आकाश में खेले जाते थे, तब भी भारत का रङ्गमञ्च व्यवस्थित था, जिसका प्रभाव जावा, सुमात्रा प्रभृति देशों के नाटक पर पड़ा।

संस्कृत नाटक का प्रभाव

संस्कृत में नाटकों की संख्या बहुत अधिक नहीं है, परन्तु वह बहुत कम भी नहीं है। शताधिक नाटककार संस्कृत में गिनाये जा सकते हैं। संस्कृत नाटककारों में सर्वप्रथम नाटककार कौन है, इस प्रश्न का समाधान सरल नहीं है। इसका उत्तर यदि दिया जाय कि भास ही सर्वप्रथम संस्कृत नाटककार हुए तो प्राय यह उत्तर अधिक लोगों को ठीक मालूम पड़ेगा।

'लूडरसन' महोदय का कथन है कि सर्वप्रथम संस्कृत नाटककार 'अश्वघोष' हैं। 'लूडरसन' ने 'तूर्फान' नगर में अश्वघोष के तीन नाटक प्राप्त किये थे, जिनमें एक का नाम 'शारिपुत्रप्रकरण' था। यह छः अङ्कों का नाटक है। इसमें शारिपुत्र मौद्गल्यायन की प्रव्रज्या का वृत्तान्त वर्णित है। दूसरा और तीसरा नाटक अधूरा है। इन नाटकों की भाषा संस्कृत है। कालिदास को ही सर्वप्रथम नाटककार मानने वाले लोगों की कमी नहीं है। यह भी हो सकता है कि कालिदास के पहले बने नाटक इन दिनों अप्राप्य हो गये हों और अब कालिदास के नाटक ही आदिम नाटक कहे जाने के अधिकारी हो गये हों।

संस्कृत में नाटक समृद्धि

संस्कृत भाषा में लिखे गये नाटकों की संख्या प्रचुर है, यह बात कही जा चुकी है। केवल संख्या की दृष्टि से ही नहीं, नाटक में अपेक्षित अन्यान्य गुणों की दृष्टि से भी

संस्कृत नाटक साहित्य को समृद्ध माना जाता है। जिस प्रकार हमारे भारतवर्ष की समृद्धता की सूचना व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, माघ आदि की काव्य राशि से प्राप्त होती है, उसी तरह संस्कृत के नाटक शाकुन्तल, रत्नावली आदि भी नितान्त समृद्ध हैं। नाटकों की साज सज्जा, पात्रों की वेश भूषा, स्थान विशेष की कल्पना, परिस्थिति-विशेष की उपस्थापना आदि बातें ऐसी होती हैं जिनसे समृद्ध नाटक तात्कालिक समाज की समृद्धि का अनुमान कराने में सहायक होती हैं। इस दृष्टि से संस्कृत नाटक नितान्त समृद्ध कहे जा सकते हैं।

संस्कृत नाट्यों के प्रभेद

अभिनेय साहित्य का प्रधान अङ्ग नाटक ही है। यद्यपि शास्त्रानुसार उसका मुख्य नाम रूपक है—'रूपारोपात्तु रूपकम्'। रूपक शब्द ही सभी अभिनेय काव्यों का परिचायक है, परन्तु आपामर साधारणजन रूपकमात्र को नाटक कह लेते हैं। संस्कृत भाषा निबद्ध अभिनेय साहित्य—

"नाटकमथ प्रकरणं भाण-व्यायोग-समवकार-डिमाः।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश॥"

इन दस भागों में विभक्त है, परन्तु इनमें सर्वाधिक समृद्ध नाटक ही है। अन्यान्य भागों पर उतना साहित्य नहीं प्रस्तुत किया गया है जितना नाटक पर।

नाटक में शृङ्गार तथा वीररस का प्राधान्य अपेक्षित है—'एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा। अङ्गमन्ये रसाः सर्वे।' मन के भाव प्रधानतः दो दशाओं में अधिक आस्वाद गोचर होते हैं—उग्रता एवं माधुर्य। माधुर्य के आस्वादनार्थ किये गये प्रयास शृङ्गाररस प्रधान नाटकों के रूप में और उग्रता के आस्वादनार्थ किये गये प्रयत्न वीररसप्रधान नाटकों में प्रथित होते हैं।

संस्कृत में लिखे गये नाटकों के प्राचीन प्रभेद दो ही थे। शृङ्गारप्रधान अथवा वीर-प्रधान। बाद में चल कर संस्कृत के नाटक कुछ दूसरी दिशा की ओर भी मुड़े। यद्यपि यह मुड़ना उनके ह्रास का परिचायक हुआ पर मुड़े वे अवश्य।

पण्डितों ने जब देखा कि वीर तथा शृङ्गार पर आधारित नाटकों में कुछ नई बात नहीं आ रही है, और इतने परिश्रम से सम्पादित शास्त्रीय तत्त्व सरलता के साथ जनमन तक नाटकों के द्वारा ही पहुँच सकते हैं, तब उन लोगों ने एक नये प्रकार के नाटक का निर्माण करना प्रारम्भ किया, जिसे बुद्धिवादपूर्ण शास्त्रीय नाटक कहा जा सकता है। ऐसे नाटकों में प्रतीकों के माध्यम से गम्भीर दार्शनिक बातें प्रस्तुत की जाती हैं। इस तरह के नाटकों को 'प्रतीकात्मक' नाटक भी कहा जाता है। श्रीकृष्ण मिश्र का 'प्रबोध-चन्द्रोदय' इस पद्धति का एक सफल नाटक है।

प्रभावतीपरिणय नाटक

प्रस्तुत 'प्रभावतीपरिणय' शृङ्गार रस प्रधान नाटक है। इसमें श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न और वज्रनाभासुर की कन्या प्रभावती का पावन एवं प्रेममूलक परिणय वर्णित किया गया है, यह आख्यान पौराणिक है अतः इसके द्वारा नाटक में अपेक्षित 'ख्यातवृत्त' की पूर्ति हो गई है। नाटक के लक्षण में लिखा है —

'नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिषु सयतम् ।
विलासद्धर्यादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः ॥
× × ×
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान् ।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः' ॥
× × ×

नायक में अपेक्षित गुण भी प्रद्युम्न में वर्तमान थे। इस प्रकार से नाटक के सभी तत्व, कथा, नायक, नायिका, वर्णनीय प्रभावादि, सारी सामग्री इसे नाटक बनाती है। इसमें वर्णित कथा महाभारत के अद्भुत हरिवंशपुराण के विष्णु पर्व में ९१वें अध्याय से ९७वें अध्याय तक वर्तमान है, वह इस प्रकार है —

एकनवतितमोऽध्यायः

जनमेजय उवाच—

भानुमत्यापहरणं विजयः केशवस्य च। छालिक्यनयनं चैव देवलोकान्महामुने ॥
क्रीडा च सागरे दिव्या वृष्णीनाममितेजसाम्। अश्रौषं परमाश्चर्यं मुने धर्मभृतां वर ॥
वज्रनाभवधो ह्युक्तो निकुम्भवधकीर्तने। तन्मे कौतूहलं श्रोतुं प्रसादाद् भवतो मुने ॥

वैशम्पायन उवाच—

हन्त ते वर्णयिष्यामि वज्रनाभवधं नृप। विजयं चैव कामस्य साम्बस्यैव च भारत ॥
मेरोः सानौ नरपते तपश्चक्रे महासुरः। वज्रनाभ इति ख्यातो निश्चितः समितिंजय ॥
तस्य तुष्टो महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः। वरेण च्छन्दयामास तपसा परितोषितः ॥
अवध्यत्वं स देवेभ्यो वव्रे दानवसत्तमः। पुरं वज्रपुरं चापि सर्वरत्नमयं शुभम् ॥ ७ ॥
स्वच्छन्देन प्रवेशश्च न वायोरपि भारत। अचिन्तितेन कामानामुपपत्तिर्नराधिप ॥
शाखा नगरमुख्यानां सबाह्यानां शतानि च। नगरस्याप्रमेयस्य समन्ताज्जनमेजय ॥
तथा तदभवत् तस्य वरदानेन भारत। उवास वज्रनगरे वज्रनाभो महासुरः ॥१०॥
कोटिशो वरलब्धं तमसुराः परिवार्य ते। ऊषुर्वज्रपुरे राजन् सबाह्येषु तथैव च ॥११॥
शाखानगरमुख्येषु रम्येषु च नराधिप। हृष्टपुष्टप्रमुदिता नृप देवस्य शत्रवः ॥ १२ ॥

वज्रनाभोऽथ दुष्टात्मा वरदानेन दर्पितः । पुरस्थश्चामरांश्चैव जगद् बाधितुमुद्यतः ॥
महेन्द्रमब्रवीद् गत्वा देवलोकं दिवस्पते । अहमीशितुमिच्छामि त्रैलोक्यं पाकशासन ॥

अथवा मे प्रयच्छस्व युद्धं देवगणेश्वर ।
सामान्यं हि जगत्कृत्स्नं काश्यपानां महात्मनाम् ॥ १५ ॥

स बृहस्पतिना सार्द्धं मन्त्रयित्वा महेश्वरः । वज्रनाभं सुरश्रेष्ठः प्रोवाच कुरुनन्दन ॥

सत्रेषु दीक्षितः सौम्य कश्यपो नः पिता मुनिः ।
तस्मिन् वृत्ते यथा न्याय्यं तथा स हि करिष्यति ॥ १७ ॥

ततः स पितरं गत्वा कश्यपं दानवोऽब्रवीत् । यथोक्तं देवराजेन तमुवाचाथ कश्यपः ॥

सत्रे वृत्ते करिष्यामि यथा न्याय्यं भविष्यति ।
त्वं तु वज्रपुरे पुत्र वस गच्छ समाहितः ॥ १९ ॥

एवमुक्ते वज्रनाभः स्वमेव नगरं गतः । महेन्द्रोऽपि ययौ देवो द्वारकां द्वारमालिनीम् ॥
गत्वा चान्तर्हितो देवो वासुदेवमथाब्रवीत् । वज्रनाभस्य वृत्तान्तं तमुवाच जनार्दन ॥
शौरे परिवृतो देव वाजिमेधो महाक्रतुः । तस्मिन् वृत्ते वज्रनाभं पातयिष्यामि वासव ॥

तत्रोपायं प्रवेशे तु चिन्तयाव सतां गते ।
नानिष्टया प्रवेशोऽस्ति तत्र वायोरपि प्रभो ॥ २३ ॥

ततो गतो देवराजो वासुदेवेन सत्कृतः । वाजिमेधे च संप्राप्ते वसुदेवस्य भारत ॥
तस्मिन् यज्ञे वर्तमाने प्रवेशार्थं सुरोत्तमौ । चिन्तयामासतुर्वीरौ देवराजाच्युतावुभौ ॥
तत्र यज्ञे वर्तमाने सुनाट्येन नटस्तदा । महर्षींस्तोषयामास भद्रनामेति नामतः ॥
तं वरेण मुनिश्रेष्ठाश्छन्दयामासुरात्मवत् । स वव्रे तु नटो भद्रो वरं देवसमोपमः ॥
देवेन्द्र कृष्णच्छन्देन सरस्वत्या प्रचोदितः । प्रणिपत्य मुनिश्रेष्ठानश्वमेधे समागतान् ॥

नट उवाच—

भोज्यो द्विजानां सर्वेषां भवेयं मुनिसत्तमाः ।
सप्तद्वीपां च पृथिवीं विचरेयमिमामहम् ॥ २९ ॥

प्रसिद्धाकाशगमनः शक्तिवीर्यश्च विशेषतः । अवध्यः सर्वभूतानां स्थावरा ये च जङ्गमाः ॥

यस्य यस्य च वेषेण प्रविशेयमहं वसु ।
मृतस्य जीवतो वापि भाव्येनोत्पादितस्य वा ॥ ३१ ॥

तद्रूपस्तादृशः स्यां वै जरारोगविवर्जितः । तुष्येयुर्मुनयो नित्यमन्ये च मम सर्वदा ॥
एवमस्त्विति तत्रोक्तो ब्राह्मणैर्नृपते नटः । सप्तद्वीपां वसुमतीं पर्यटत्यमरोपमः ॥ ३३ ॥
पुराणि दानवेन्द्राणामुत्तरांश्च कुरूंस्तथा । भद्राश्वान् केतुमालांश्च कालाम्रद्वीपमेव च ॥
पर्वणीषु तु सर्वासु द्वारकां यदुभूषिताम् । आयाति वरदत्तः स सर्वचरो महानटः ॥

ततो हंसान् धार्तराष्ट्रान् देवलोकनिवासिनः ।
उवाच भगवाञ्छक्रः सान्त्वयित्वा सुरेश्वरः ॥ ३६ ॥

भगवन्तो भ्रातरोऽस्माक काश्यपा देवपक्षिण ।
विमानवाहा देवाना सुकृतीना तथैव च ॥ ३७ ॥
देवानामस्ति कर्तव्य कार्यं शत्रुवधान्वितम् ।
तत कर्तव्य न मन्त्रश्च भेत्तव्यो व कथचन ॥ ३८ ॥
न कुर्वता देवताज्ञामुग्रो दण्ड पतेदपि । सर्वत्राप्रतिपिद्ध वो गमन हससत्तमा ॥
गत्वा प्रवेश्यमन्यपा वज्रनाभपुरोत्तमम् । इतोऽन्त पुरवापीपु चरध्वमुचित हि व ॥
तस्यास्ति कन्यारत्न हि त्रैलोक्यातिशय शुभम् ।
नाम्ना प्रभावती नाम चन्द्राभेव प्रभावती ॥ ४१ ॥
वरदानेन सा लब्धा मात्रा किल वरानना ।
हैमवत्या महादेव्या सकाशादिति न श्रुतम् ॥ ४२ ॥
स्वयवरा च सा कन्या बन्धुभि स्थापिता सती ।
आत्मेच्छया पति हसा वरयिष्यति शोभना ॥ ४३ ॥
तद्भवद्भिर्गुणा वाच्या प्रद्युम्नस्य महात्मन । सद्भूता कुलरूपस्य शीलस्य वयसस्तथा॥
यदा सा रक्तभावा च वज्रनाभसुता सती ।
तस्या सकाशात् सदेशो नयितव्य समाधिना ॥ ४५ ॥
प्रद्युम्नस्य पुनस्तस्मादानयध्व तथैव च । स्वबुद्ध्या प्राप्तकाल च सविधेय हित मम ॥
नेत्रवक्त्रप्रसादश्च कर्तव्यस्तत्र सर्वथा ॥ ४७ ॥
तथा तथा गुणा वाच्या प्रद्युम्नस्य महात्मन ।
यथा यथा प्रभावत्या मनस्तत्र भवेत् स्थितम् ॥ ४८ ॥
वृत्तान्तश्चानुदिवस प्रदेयो मम सर्वथा । द्वारवत्या च कृष्णस्य भ्रातुर्मम यवीयस ॥
तावद्यत्नश्च कर्तव्य प्रद्युम्नो यावदात्मवित् । पर्यावर्तद् वरारोहा वज्रनाभसुता विभु ॥
अवध्यास्ते तु देवाना ब्राह्मणो वरदर्पिता । देवपुत्रैर्हि हन्तव्या प्रद्युम्नप्रमुखैर्युधि ॥
नगे दत्तवरस्तस्य वेगमास्थाय यादवा । प्रद्युम्नाद्या गमिष्यन्ति वज्रनाभविनाशना ॥
एतच्च सर्वं कर्तव्यमन्यच्च सर्वमेव हि । प्राप्तकाल विधातव्यमस्माक प्रियकाम्यया ॥
प्रवेशस्तत्र देवाना नास्ति हसा कथचन । वज्रनाभेप्सिते तत्र प्रदेशे खलु सर्वथा ॥

द्विनवतितमोऽध्यायः

वैशम्पायन उवाच—

ते वासवस्य श्रुत्वा हसा वज्रपुर ययु । पूर्वोचित हि गमन तेषा तत्र जनाधिप ॥
ते दीर्घिकासु रम्यासु निपेतुर्वीर पक्षिण । पद्मोत्पलैरावृतासु काञ्चनै स्पर्शनक्षमै ॥
ते वै नदन्तो मधुर सस्कृतापूर्वभापिण । पूर्वमप्यागतास्ते तु विस्मय जनयन्ति हि॥
अन्त पुरोपभोग्यासु चेरुर्वापीपु ते नृप । दृष्टास्ते वज्रनाभस्य त्रिविष्टपनिवासिन ॥

आलपन्तं सुमधुरं धार्तराष्ट्रा जनेश्वर । स तानुवाच दैतेयो धार्तराष्ट्रानिदं वचः ॥ ५ ॥
त्रिविष्टपे नित्यरता भवन्तश्चारुभाषिणः । यद्देवेष्वस्मदीयेऽस्माकं भवद्भिरवगम्यते ॥ ६ ॥

आगन्तव्यं चारुपादाः स्वमिदं भवतां गृहम् ।
विस्रब्धं च प्रवेष्टव्यं त्रिविष्टपनिवासिभिः ॥ ७ ॥

ते तथोक्ताः शकुनयो वज्रनाभेन भारत । तथेत्युक्त्वा हि विविशुर्दानवेन्द्रनिवेशनम् ॥
चक्रुः परिचयं ते च देवकार्यव्यपेक्षया । मानुषालापिनस्ते तु कथाश्चक्रुः पृथग्विधाः ॥

वंशवद्धा काश्यपानां सर्वकल्याणभागिनाम् ।
त्रियो रेमुर्विशेषेण श्रृण्वन्त्यः सङ्कृता कथा ॥ १० ॥

विचरन्तस्ततो हंसा ददृशुश्चारुहासिनीम् । प्रभावतीं वरारोहां वज्रनाभसुतां तदा ॥

हंसाः परिचिता चक्रुस्तां तनश्चारुहासिनीम् ।
सखीं शुचिमुखीं चक्रे हंसीं राजसुता तदा ॥ १२ ॥
सा तां कदाचित् प्रपच्छ वज्रनाभसुतां सखीम् ।
विश्रम्भितां पृथक्पूर्णैराख्यानकशतैर्वराम् ॥ १३ ॥
त्रैलोक्यसुन्दरीं वेद्मि त्वामहं हि प्रभावति ।
रूपशीलगुणैर्देवि किंचित् त्वां वक्तुमुत्सहे ॥ १४ ॥

व्यतिक्रामति ते भीरु यौवनं चारुहासिनि । यदतीतं पुनर्नैति गतं स्रोत इवाम्भसः ॥

कामोपभोगतुल्या हि रतिर्देवि न विद्यते ।
स्त्रीणां जगति कल्याणि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ १६ ॥
स्वयंवरे च न्यस्ता त्वं पित्रा सर्वाङ्गशोभने ।
न च कांश्चिद् वरयसे देवासुरकुलोद्भवान् ॥ १७ ॥
व्रीडिता यान्ति सुश्रोणि प्रत्याख्यातास्त्वया शुभे ।
रूपशौर्यगुणैर्युक्तान् सदृशानस्य कुलस्य हि ॥ १८ ॥
आगतान् नेच्छसे देवि सदृशान् कुलरूपयोः ।
कदेष्यति क्रियार्थं त्वां प्रद्युम्नो रुक्मिणीसुतः ॥ १९ ॥
त्रैलोक्ये यस्य रूपेण सदृशो न कुलेन वा ।
गुणैर्वा चारुसर्वाङ्गि शौर्येणाप्यति वा शुभे ॥ २० ॥

दैवेषु देवः सुश्रोणि दानवेषु च दानवः । मानुषेष्वपि धर्मात्मा मनुष्यः स महाबलः ॥

यं सदा देवि दृष्ट्वा हि सर्वास्ता अपि नार्यो हि ।
आर्तिनाशीव धेनूनां स्तनानि स्रवन्तीमिव ॥ २१ ॥

न पूर्णचन्द्रेण मुखं सदृशं वा कुलेन्दुः । उरस्थो मोदमानः हि सुरेन्द्रेणाप वा नरैः ॥

जगत् सारस्तुरस्य पुत्रः स विदितः शुभे ।
कृष्णानन्दं वरं साक्षाद् विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ २२ ॥

हतेन शम्बरो बाल्ये येन पापो निबर्हित ।
मायाश्च सर्वा सम्प्राप्ता न च शील विनाशितम् ॥ २५ ॥
यान् यान् गुणान् पृथुश्रोणि मनसा कल्पयिष्यसि ।
एष्टव्यास्त्रिषु लोकेषु प्रद्युम्ने सर्व एव ते ॥ २६ ॥
रुच्या वह्निप्रतीकाश क्षमया पृथिवीसम ।
तेजसा सूर्यसदृशो गाम्भीर्येण ह्रदोपम ।प्रभावती शुचिमुखीं वितीहोवाच भामिनी ॥

प्रभावत्युवाच—

विष्णुर्मानुपलोकस्थ श्रुत सुबहुशो मया ।
पितु कथयत सौम्ये नारदस्य च धीमत ॥ २८ ॥
शत्रु किल स दैत्याना वर्जनीय सदानघे ।
कुलानि किल दैत्याना तेन दग्धानि मानिनि ॥ २९ ॥
प्रदीप्तेन रथाङ्गेन शार्ङ्गेण गदया तथा । शाखानगरदेशेषु वसन्ति किल येऽसुरा ॥
इत्येते दानवेन्द्रेण सदिश्यन्त हि त प्रति ।
मनोरथो हि सर्वासा स्त्रीणामेव शुचिस्मिते ॥ ३१ ॥
भवद्धि मे पतिकुल श्रेष्ठ पितृकुलादिति ।
यदि नामाभ्युपाय स्यात् तस्येहागमन प्रति ॥ ३२ ॥
महाननुग्रहो मे स्यात् कुल स्यात् पावित च मे ।
समर्थना मे पृष्टा त्व प्रयच्छ शुचिलापिनि ॥ ३३ ॥
प्रद्युम्न स्याद् यथा भर्ता स मे वृष्णिकुलोद्भव ।
अत्यन्तवैरी दैत्यानामुद्वेजनकरो हरि ॥ ३४ ॥
असुराणा स्त्रियो वृद्धा कथयन्त्यो मया श्रुता ।
प्रद्युम्नस्य तथा जन्म पुरस्तादपि मे श्रुतम् ॥ ३५ ॥
यथा च तेन निहतो बलवान् कालशम्बर । हृदि मे वर्तते नित्यप्रद्युम्न खलु सत्तमे ॥
हेतु स नास्ति स्यात् तन यथा मम समागत ।
दासी तवाह सख्यार्हे दूत्ये त्वा च विसर्जये ॥ ३७ ॥
पण्डितासि यदोपाय मम तस्य च सगमे ।
ततस्ता सान्त्वयित्वा सा प्रहसन्तीदमब्रवीत् ॥ ३८ ॥

शुचिमुख्युवाच—

तत्र दूती गमिष्यामि तवाह चारुहासिनि ।
इमा भक्ति तवोदारा प्रवक्ष्यामि शुचिस्मिते ॥ ३९ ॥
तथा चैव करिष्यामि यथैष्यति तवान्तिकम् ।
साक्षात्कामेन सुश्रोणि भविष्यति सकामिनी ॥ ४० ॥

इति मे भाषितं प्रियं स्वरेयाः शुचिलोचने । कथाकुशलतां चित्रे कथयस्वायतेक्षणे ॥
मम त्वं तत्र मे देवि हितं सम्यक् प्रपत्स्यसे ।
इत्युक्ता सा तया चक्रे यत्तत् सा तामथाब्रवीत् ॥ ४२ ॥
दानवेन्द्रश्च तां हंसीं पप्रच्छान्तःपुरे तदा । प्रभावत्या समाख्याता कथाकुशलता तव ॥
तत्त्वं शुचिस्मिते ब्रूहि कथां योग्यतया वरे । किं त्वया दृष्टमाश्चर्यं जगत्युत्तमरूपिणि ॥
अदृष्टपूर्वमन्यैर्वा योग्यार्थैश्चानिन्दिते । सोवाच वज्रनाभं तु हंसी नरवरोत्तम ॥
श्रूयतामित्यथामन्त्र्य दानवेन्द्रं महाद्युतिम् ।
दृष्टा मे शाण्डिली नाम साध्वी दानवसत्तम । आश्चर्यं कर्म कुर्वन्ती मेरुपार्श्वे मनस्विनी ॥
सुमनाश्चैव कौशल्या सर्वभूतहिते रता ।
कथंचिद् वरशाण्डिल्याः शैलपुत्र्याः शुभा सखी ॥ ४७ ॥
नटश्चैव मया दृष्टो मुनिदत्तवरः शुभः । कामरूपी च सोऽयञ्च त्रैलोक्ये नित्यसम्मतः ॥
कुरून् याश्चोत्तरान् वीर कालाम्रद्वीपमेव च ।
भद्राश्वान् केतुमालांश्च द्वीपानन्यांस्तथानघ ॥ ४९ ॥
देवगन्धर्वगेयानि नृत्यानि विविधानि च ।
स वेत्ति देवान् नृत्येन विस्मापयति सर्वथा ॥ ५० ॥

वज्रनाभ उवाच—

श्रुतमेतन्मया हंसि न चिरादिव विस्तरम् ।
चारणानां कथयतां सिद्धानां च महात्मनाम् ॥ ५१ ॥
कुतूहलं ममाप्यस्ति सर्वथा पद्मिनन्दिनि । नटे दानवरे तस्मिन् संस्तवस्तु न विद्यते ॥

हंस्युवाच—

सप्तद्वीपान् विचरति नटः स दितिजोत्तम । गुणवन्तं जनं श्रुत्वा गुणकार्यः स सर्वथा ॥
तव चेच्छृणुयाद् वीर सद्वृत्तं गुणविस्तरम् । नटं तदागतं विद्धि पुरं तव महासुर ॥

वज्रनाभ उवाच—

उपायः सुजनां हंसि येनेह स नटः शुभे । आगच्छेन्मम भद्रं ते क्रियतं पद्मिनन्दिनि ॥
ते हंसा वज्रनाभेन कार्यहेतोर्विसर्जिता । देवेन्द्रायाथ कृष्णाय शशंसुः सर्वमेव तत् ।
अर्धांशेन प्रद्युम्नो निपुणस्तत्र कर्मणि । प्रभावत्याश्च संसर्गे वज्रनाभवधे तथा ॥५३॥
देवीं मायां समाश्रित्य सविधाय हरिर्नटम् । नटवेषेण सैन्यानां प्रेषयामास भारत ॥
प्रद्युम्नं नायकं कृत्वा साम्बं कृत्वा विदूषकम् ।
परिपार्श्वे गदं वीरमन्यान् सैन्यांस्तथैव च ॥ ५५ ॥
वारमुख्या नटीः कृत्वा तत्पूर्वसदृशाम्बदा । तथैव भद्रं भद्रस्य महायांश्च तथाविधान् ॥
मधुकविहितं रम्य विमानं ते महारथाः । जग्मुराकाशे कार्यार्थं देवानाममितौजसाम् ॥
एकैकस्य सभा रूपे पुरुषा युवरस्य ते । स्त्रीणां च मरुताः सर्वे ते स्वरूपैर्नराधिपः ॥
ते वज्रनगरस्याथ सामान्नगरमुत्तमम् । जग्मुर्दानवसंकीर्णं सुपुरं नाम नामतः ॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः

वैशम्पायन उवाच—

ततः सुपुरवासीनामसुराणां नराधिप । ददावाज्ञां वज्रनाभो दीयतां गृहमुत्तमम् ॥
आतिथ्यं क्रियतामेषां बहुरत्नमुपायनम् । वासांसि सुविचित्राणि सुखाय जनरञ्जनम्॥
भर्तुराज्ञां समालम्ब्य तथा चक्रुश्च सर्वशः । पूर्वश्रुतो नटः प्राप्तः कौतूहलमनीजनत्॥
नटस्याथ ददुर्दैत्याः सत्कारं परया मुदा । पर्यायार्थे ददुश्चापि रत्नानि सुबहून्यथ ॥
ततः स ननृते तत्र वरदत्तो नटस्तथा । सुपुरे पुरवासीनां परं हर्षं समादधत् ॥५॥
रामायणं महाकाव्यमुद्दिश्य नाटकं कृतम् । जन्म विष्णोरमेयस्य राक्षसेन्द्रवधेप्सया ॥

लोमपादो दशरथ ऋष्यशृङ्गं महामुनिम् ।
शान्तामप्यानयामास गणिकाभिः सहानघ ॥ ७ ॥

रामलक्ष्मणशत्रुघ्ना भरतश्चैव भारत । ऋष्यशृङ्गश्च शान्ता च तथा रूपैर्नटैः कृता ॥
तत्कालजीविनो वृद्धा दानवा विस्मयं गताः । आचचक्षुश्च तेषां वै रूपतुल्यत्वमच्युत॥

संस्काराभिनयौ तेषां प्रस्तावानां च धारणम् ।
दृष्ट्वा सर्वे प्रवेशं च दानवा विस्मयं गताः ॥ १० ॥

ते रक्ता विस्मयं नेदुरसुराः परया मुदा । उत्थायोत्थाय नाट्यस्य विषयेषु पुनः पुनः ॥
ददुर्वस्त्राणि तुष्टाश्च ग्रैवेयवलयानि च । हारान् मनोहरांश्चैव हेमवैडूर्यभूषितान् ॥
पृथगर्थेषु दत्तेषु लोकैस्ते तु दुदुर्नटाः । असुराश्च सुतैश्चैव गोत्रैरभिजनैरपि ॥१३॥
प्रेषितं वज्रनाभस्य शाखानगरवासिभिः । नटस्य दिव्यरूपस्य नरेन्द्रागमनं तदा ॥
पुरा श्रुतार्थो दैत्येन्द्रः प्रेषयामास भारत । आनीयतां वज्रपुरं नटोऽसाविति हर्षितः ॥
दानवेन्द्रवचः श्रुत्वा शाखानगरवासिभिः । नीता वज्रपुरं रम्यं नटवेषेण यादवाः ॥
आवासश्च ततो दत्तः सुकृतो विश्वकर्मणा । एष्टव्यं यच्च तत् सर्वं दत्तं शतगुणोत्तरम् ॥
अथ कालोत्सवं चक्रे वज्रनाभो महासुरः । कारयामास रम्यं च चमूवाहं प्रहृष्टवान्॥

ततस्तान् परिविश्रान्तान् प्रेक्षार्थाय प्रचोदयत् ।
दत्त्वा रत्नानि भूरीणि वज्रनाभो महाबलः ॥ १९ ॥
उपविष्टश्च तान् द्रष्टुं सह ज्ञातिभिरात्मवान् ।
छन्ने चान्तःपुरं स्थाप्य चक्षुर्दर्शये नराधिप ॥ २० ॥

भैमापि बद्धनेपथ्या नटवेषधरास्तथा । कार्यार्थं भीमकर्माणो नृत्यार्थमुपचक्रमुः ॥
ततो घनं ससुषिरं मुरजानकभूषितम् । तन्त्रीस्वरगणैर्विद्धानातोद्यानन्ववादयन्॥
ततस्तु देवगान्धारं छालिक्यश्रवणामृतम् । भैमस्त्रियः प्रजगिरे मनःश्रोत्रसुखावहम्॥
आगान्धारग्राममरागं गङ्गावतरणं तथा । विद्धमासारितं रम्यं जगिरे स्वरसम्पदा ॥
लयतालसमं श्रुत्वा गङ्गावतरणं शुभम् । असुरास्तोषयामासुरुत्थायोत्थाय भारत ॥

नान्दि च वादयामासु प्रद्युम्नो गद एव च।
साम्बश्च वीर्यसम्पन्नः कार्यार्थं नटतां गतः ॥ २६ ॥
नान्द्यन्ते च तदा श्लोकं गङ्गावतरणाश्रितम्।
रौक्मिणेयस्तदोवाच सम्यक् स्वभिनयान्वितम् ॥ २७ ॥
रम्भाभिसारं कौबेरं नाटकं ननृतुस्ततः। शूरो रावणरूपेण रम्भावेषा मनोवती ॥२८॥
नलकूबरस्तु प्रद्युम्नः साम्बस्तस्य विदूषकः। कैलासो रूपितश्चापि मायया यदुनन्दनैः॥
शापश्च दत्तः क्रुद्धेन रावणस्य दुरात्मनः।
नलकूबरेण च यथा रम्भा चाप्यथ सान्त्विता ॥ ३० ॥
एतत् प्रकरणं धीरा ननृतुर्यदुनन्दनाः। नारदस्य मुनेः कीर्तिं सर्वज्ञस्य महात्मनः ॥
पादोद्धारेण नृत्येन तथैवाभिनयेन च। तुष्टुवुर्दानवा धीरा भैमानाममितौजसाम् ॥
ते ददुर्वस्त्रमुख्यानि रत्नान्याभरणानि च। हारांस्तरलविद्धांश्च वैडूर्यमणिभूषितान्॥
विमानानि विचित्राणि रथांश्चाकाशगामिनः।
गजानाकाशगांश्चैव दिव्यनागकुलोद्भवान् ॥ ३४ ॥
चन्दनानि च दिव्यानि शीतानि रसवन्ति च।
गुरूण्यगुरुमुख्यानि गन्धाढ्यानि च भारत ॥ ३५ ॥
चिन्तामणीनुदारांश्च चिन्तिते सर्वकामदान्।
प्रेक्षासु तासु बह्वीषु ददन्तो दानवास्तथा ॥ ३६ ॥
धनरत्नैर्विरहिता कृता पुरपसत्तम। स्त्रियो दानवमुख्यानां तथैव च जनेश्वर ॥३७॥
ततो हंसी प्रभावत्याः सखी प्राह प्रभावतीम्।
गतास्मि द्वारकां रम्यां भैमगुप्तामनिन्दिते ॥ ३८ ॥
प्रद्युम्नश्च मया दृष्टो विविक्ते चारुलोचने। भक्तिश्च कथिता तस्य मया तव शुचिस्मिते॥
तेन दृष्टेन कालश्च कृतः कमललोचने। अद्य प्रदोषसमये त्वया सह समागमे ॥४०॥
तदद्य रुचिरश्रोणि तव प्रियसमागमः। न ह्यसमवति भाषन्ते मिथ्या भैमकुलोद्भवाः॥
ततः प्रभावती हृष्टा हंसा तामिदमब्रवीत्। उषितासि ममावासे त्वम्पुनर्हंसि सुन्दरि॥
त्वयाह सहितावाम द्रष्टुमिच्छामि केशविम्।
निःसाध्वसा भविष्यामि त्वया सह विहङ्गमे ॥ ४३ ॥
हंसी तथेति चोवाच सखीं कमललोचनाम्। आरुरोह च तद्धर्म्यं प्रभावत्या विहङ्गमा॥
विश्वकर्मकृते तत्र हर्म्यपृष्ठे प्रभावती। सविधानं चकाराशु प्रद्युम्नागमनक्षमम् ॥४५॥
तस्मिन् कृते सविधाने काममानयितुं ययौ। प्रभावतीमनुज्ञाप्य हंसी वायुसमा गतौ॥
नटवेषधरं कामं गत्वोवाच शुचिस्मिता। अद्य भूतः स भगवन् समयो वर्तते निशि॥
तथेति प्राह तां कामः सा निवृत्ताथ पक्षिणी।
अभ्यागता च मां हंसी प्रभावतिमथाब्रवीत्।
अभ्यति रौक्मिणेयोऽयमायाच्छायतलोचन ॥ ४८ ॥

प्रद्युम्नो नीयमानं तु ददृशे माल्यमात्मवान्। भ्रमरैरावृतं वीरः सुगन्धमरिमर्दनः॥
निलिल्ये तत्र माल्ये तु भूत्वा मधुकरस्तदा।
प्रभावत्या नीयमाने विदितार्थः प्रतापवान्॥ ५० ॥
प्रवेशितं च तन्माल्यं स्त्रीभिर्मधुकरायुतम्।
उपनीतं प्रभावत्यै स्त्रीभिस्तद् भ्रमरावृतम्॥ ५१ ॥
अविदूरे च विन्यस्तं प्रभावत्या जनाधिप।
भ्रमरास्ते ययुः सौम्य संध्याकाले ह्युपस्थिते॥ ५२ ॥
स भैमप्रवरो वीरस्तैः सहायैर्विहीनतः। कर्णोत्पले प्रभावत्या निलिल्ये दानवैरिव॥
ततः प्रभावती हंसीमुवाच वदतां वरा। उद्यतं पूर्णचन्द्रं सा समीक्ष्यातिमनोहरम्॥
सखि दह्यन्ति मेऽङ्गानि मुखं च परिशुष्यति।
औत्सुक्यं हृदि चातीव कोऽयं व्याधिरनौषधः॥ ५५ ॥
दधद् द्विगुणमौत्सुक्यमसौ पूर्णनिशाकरः।
नवोदितः शीतरश्मिः सत्यं हरति च प्रियः॥ ५६ ॥
न दृष्टपूर्वो हि मया श्रुतमात्रेण काङ्क्षितः।
अहो धूमयतेऽङ्गानि स्त्रीस्वभावस्य धिक् खलु॥ ५७ ॥
कल्पयामि यथा बुद्ध्या यदि नाभ्येति मे प्रियः।
कुमुद्वतीगतं मार्गं हा गमिष्याम्यकिंचना॥ ५८ ॥
मदनाशीविषेणास्मि हा हा दष्टा मनस्विनी।
शीतवीर्याः प्रकृत्यैव जगतो ह्लादनाः सुखाः।
दहन्ति मम गात्राणि किं नु चन्द्रगभस्तयः॥ ५९ ॥
प्रकृत्या शीतलो वायुर्नानापुष्परजोवहः।
दावाग्निसदृशो मेऽद्य दन्दहीति शुभां तनुम्॥ ६० ॥
ततः सङ्कल्पये एव स्थैर्यं कार्यमिवात्मनः। नावतिष्ठति निर्वीर्यं मनः संकल्पधर्षितम्॥
विमनस्कास्मि मुह्यामि वेपथुर्मे महान् हृदि।
चङ्क्रमीति च मे दृष्टिर्हा हा यामि ध्रुवं क्षयम्॥ ६२ ॥

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

वैशम्पायन उवाच—

आविष्टेयं मया बाला सर्वथेत्यवगम्य तु। कार्ष्णिर्हृष्टेन मनसा हंसीमिदमुवाच ह॥
दैत्येन्द्र तनया प्राप्तमवगच्छस्व मामिह।
षट्पदैः सह षट्पादो भूत्वा माल्ये निलीय हि॥ २॥
विधेयोऽस्मि प्रभावत्या यथेष्टं मयि वर्ततां।
इत्युक्त्वा दर्शयामास सुरूपो रूपमात्मनः॥ ३॥

तद्धर्म्यंपृष्ठ प्रभया द्योतित तस्य धीमत ।
अभिभूता प्रभा चैव राजश्चन्द्रोद्भवा शुभा ॥ ४ ॥
प्रभावत्यास्तु त दृष्ट्वा ववृधे कामसागर ।
चन्द्रस्येवोदये प्राप्ते पर्वण्या सरिता पति ॥ ५ ॥
लज्जाधोमुखी किञ्चित् किञ्चित् तिर्यगवक्षिणी ।
प्रभावती तदा तस्थौ निश्चल कमलेक्षणा ॥ ६ ॥
करेणाथ प्रदेशे ता चारुभूषणभूषिताम् । स्पृष्ट्वोवाच वरारोहा रोमाञ्चिततनुस्तत ॥
मनोरथशतैर्लब्ध किं पूर्णेन्दुसमप्रभम् । अधोमुखं मुख कृत्वा न मां किञ्चित् प्रभाषसे॥
प्रभोपमर्दं मा कार्षीर्वदनस्य वरानने । साध्वस त्यज्यता भीरु दास साध्वनुगृह्यताम्॥
न कालमिव पश्यामि भीरु भीरुत्वमुत्सृज ।
याचाम्यपाञ्जलिं कृत्वा प्राप्तकाल निबोध मे ॥ १० ॥
गान्धर्वेण विवाहेन कुरु चानुग्रह मम । देशकालानुरूपेण रूपणाप्रतिमा सती ॥११॥
उपस्पृश्य ततो भैमो मणिस्थ जातवेदसम् । जुहाव समये वीर पुष्पैर्मन्त्रानुदीरयन्॥
जग्राहाथ कर तस्या वराभरणभूषितम् । चक्रे प्रदक्षिण चैव स मणिस्थ हुताशनम् ॥
प्रजज्वाल स तत्रस्थो मानयन्नच्युतात्मजम् ।
भगवाञ्जगत साक्षी शुभस्याप्यशुभस्य च ॥ १४ ॥
उद्दिश्य दक्षिणा वीरो विप्राणा यदुनन्दन ।
उवाच हर्षी द्वारस्थां तिष्ठन्तीं रत्न पक्षिणी ॥ १५ ॥
तस्या प्रणम्य यातायां कामरता चारुलोचनाम् ।
प्रगृह्य दक्षिण हस्त निनाय शयनोत्तमम् ॥ १६ ॥
ऊरावेनोपवेश्यैना सान्त्वयित्वा पुन पुन । चुचुम्ब शनकैर्गण्ड वामयन् सुखमारतैः॥
ततोऽस्याश्च पपौ वक्त्रपद्म मधुकरो यथा। आश्लिष्टे च सुश्रोणीं प्रमेग रतिकोविद ॥
अरीरमद् रहस्येना न चोद्वेजितवांस्तदा ।
अपकृष्य च रशनं रतिकार्यविशारद । उवास स तया सार्द्धं रमन् कृष्णसुत प्रभु॥
अरुणोदयकाले च ययौ यत्र सटास्यम् । अरामया प्रभाराम्या कथञ्चित् स विसर्जित॥
तामेव मनसा कान्तां कान्तरूपा समुद्वहन् । स उपुर्नटरूपण कार्यार्थं भ्रमरराजा ॥
प्रतीक्षन्तस्तदा वाक्यमिन्द्रकश्यपयोस्तदा। उद्योग वज्रनाभस्य त्रैलोक्यविजय प्रति॥
प्रतीक्षन्तो महात्मानो गुप्तमरक्षण रता । कश्यपस्य मुन सर्वे यावत् तावत्सुरारिणा॥
देवासुराणां सततमविरोधो महात्मनाम् ।
त्रैलोक्यविजयार्थाय यततां धर्मचारिणाम् ॥ २४ ॥
एव काल प्रयातानां वसतां तत्र धामताम् । सम्प्राप्त प्रावृषा रत्य सर्वभूतमनोहर ॥
अहर्निश च वृत्तान्तं प्रयच्छन्ति मनोजवा ।
शक्रकश्यपयोर्हंसा कुमाराणां महात्मनाम् ॥ २६ ॥

रेमे सह प्रभावत्या प्रद्युम्नश्चानुरूपया । रात्रौ रात्रौ महातेजा धार्तराष्ट्राभिरक्षितः ॥
तैर्हि वज्रपुर हसैर्वसद्भिर्वासवाज्ञया । व्याप्त नृप नटास्ताश्च न विदु' कालमोहिता. ॥
दिवापि रौक्मिणेयस्तु प्रभावत्या नृपालये । तिष्ठत्यन्तर्हितो वीरो हससखाभिरक्षितः ॥

माययास्य प्रतिच्छाया दृश्यते हि नटालये ।
देहार्धेन तु कौरव्य सिषेवेऽसौ प्रभावतीम् ॥ ३० ॥
सनतिं विनय शील लीला दाक्ष्यमथार्जवम् ।
स्पृहयन्त्यसुरा दृष्ट्वा विद्वत्ता च महात्मनाम् ॥ ३१ ॥
रूप विलास गन्ध च मञ्जुभाषामथार्यताम् ।
तासा यादवनारीणा स्पृहयन्त्यसुरस्त्रिय ॥ ३२ ॥
वज्रनाभस्य तु भ्राता सुनाभो नाम विश्रुत ।
दुहितृद्वय च नृपते तस्य रूपगुणान्वितम् ॥ ३३ ॥

एका चन्द्रवती नाम्ना गुणवत्यथ चापरा । प्रभाव''ालय ते तु व्रजत खलु नित्यद॥
ददृशाते तु ते तत्र रतिसक्ता प्रभावतीम् । परिपप्रच्छतुश्चैव विस्रम्भोपगता सतीम्॥

सोवाच मम विद्यास्ति याधीता काङ्क्षित पतिम् ।
रत्यर्थं साऽऽनयत्याशु सौभाग्य च प्रयच्छति ॥ ३६ ॥

देव वा दानव वापि विवश सद्य एव हि । साह रमामि कान्तेन देवपुत्रेण धीमता॥
दृश्यता मत्प्रभावेण प्रद्युम्न सुप्रियो मम । ते दृष्ट्वा विस्मय याते रूपयौवनसम्पदम्॥
पुनरेवाब्रवीत् ते तु भगिन्यौ चारुहासिनी। प्रभावती वरारोहा कालप्राप्तमिद वच ॥

देवा धर्मरता नित्य दम्भशीला महासुरा ।
देवास्तपसि रक्ता हि सुखे रक्ता महासुरा ॥ ४० ॥

देवा सत्ये रता नित्यमनृते तु महासुरा । धर्मस्तपश्च सत्य च यत्र तत्र जयो ध्रुवम्॥
देवपुत्रौ वरयता पतिविद्या ददाम्यहम् । उचितौ म प्रभावेण सद्य एवोपलप्स्यथ ॥

ता तथेत्यूचतुर्हृष्टे भगिन्यो चारुलोचनाम् ।
परिपप्रच्छ भैम च कार्यं तत् पतिमानिनी ॥ ४३ ॥
स पितृव्य गद वीर साम्ब चाथाब्रवीत् तदा ।
रूपान्वितौ सुशीलौ च शूरौ च रणकर्मणि ॥ ४४ ॥

प्रभावत्युवाच—

परितुष्टेन दत्ता मे विद्या दुर्वाससा पुरा। परितुष्टेन सौभाग्य स कन्यात्वमेव च॥४५॥

देवदानवयक्षाणा य ध्यास्यति स ते पति ।
भवितेति मया चेन वीरोऽयमभिकाङ्क्षित ॥ ४६ ॥
गृह्णीत तदिमा विद्या सद्यो वा प्रियसङ्गम ।
ततो जगृहतुर्हृष्टे ता विद्या भगिनीमुखात् ॥ ४७ ॥

दध्यतुर्गदसाम्बौ च विद्याभ्यस्य ते शुभे । तौ प्रद्युम्नेन सहितौ प्रविष्टौ भैमनन्दनौ ॥
प्रच्छन्नौ मायया वीरौ कार्ष्णिना मायिना नृप ।
गान्धर्वेण विवाहेन तावप्यारिवलार्दनौ ॥ ४९ ॥
पाणिं जगृहतुर्वीरौ मन्त्रपूर्वं सतां प्रियौ ।
चन्द्रवत्या गदः साम्बो गुणवत्या च कैशविः ॥ ५० ॥
रेमिरेऽसुरकन्याभिर्वीरास्ते यदुपुङ्गवाः । मार्गमाणास्त्वनुज्ञां ते शक्रकेशवयोस्तदा ॥

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

वैशम्पायन उवाच—

नभो नभस्येऽथ निरीक्ष्य मासि कामस्तदा तोयदवृन्दकीर्णम् ।
प्रभावतीं चारुविशालनेत्रामुवाच पूर्णेन्दुनिकाशवक्त्रः ॥ १ ॥
तवाननाभो वरगात्रि चन्द्रो न दृश्यते सुन्दरि चारुबिम्बः ।
स्वच्छेदपाहननिभैर्निरुद्धो बलाहकैश्चार निरन्तरोरु ॥ २ ॥
संदृश्यते सुभ्रु तडिद् घनस्था त्वं हेमचार्वाभरणान्वितेव ।
मुञ्चन्ति धाराश्च घना नदन्तस्त्वद्धारयष्टेः सदृशा वराङ्गि ॥ ३ ॥
घनप्रदेशेषु बलाकपङ्क्तयस्त्वदन्तपङ्क्तिप्रतिमा विभान्ति ।
निमग्नपद्मानि सरित्सु सुभ्रु न भान्ति तोयानि तथाकुलानि ॥ ४ ॥
अमी घना वायुवशोपयाता बलाकमालामलचारुदन्ताः ।
अन्योन्यमभ्याहनितुं प्रवृत्ता वनेषु नागा इव शुक्लदन्ताः ॥ ५ ॥
धनुस्त्रिवर्णं वरगात्रि पश्य कृतं नवापाङ्गमिवाननस्थम् ।
विभूषयन्त गगनं घनाश्च प्रहर्षणं कामिजनस्य कान्ते ॥ ६ ॥
घनान् नदन्तः प्रतिनिर्दमानान् निरीक्ष्य सुश्रोणि शिखीन् प्रकम्पन् ।
समाहतानुच्चनपिच्छभारान् प्रियाभिरामानुपनृत्यमानान् ॥ ७ ॥
हर्म्येषु चान्ये शशिपाण्डुरेषु राजन्ति सुश्रोणि मयूरसंघाः ।
मुहूर्तशोभामतिचारुरूपां दृशा पतन्तो वलभीपुटेषु ॥ ८ ॥
प्रशिलष्टपक्षास्तरुमस्तकेषु मुहूर्तचूडामणितां विधाय ।
प्रयान्ति भूमिं नवशाद्वलानामारब्धमाना दृश्चारदेहाः ॥ ९ ॥
प्रवाति धारान्तरनिःसृतश्च सुखोऽनिलश्चन्दनपङ्कशीतः ।
कदम्बसर्जार्जुनपुष्पभूतं समावहन् गन्धमनङ्गबन्धुम् ॥ १० ॥
रतिश्रमस्वेदविनाशहेतुर्नवोदभारानयने च हेतुः ।
न मारुतः स्याद् यदि चारुगात्रि न मेघकाले मम वल्लभः स्यात् ॥ ११ ॥

एवंविधेषु प्रियसङ्गमेषु रतावसाने यदुपैति वायुः ।
रतिश्रमस्वेदहरः सुगन्धी ततः परं किं सुखमस्ति लोके ॥ १२ ॥
जलाप्लुतानीव महानदीनां सुगात्रि हंसाः पुलिनानि दृष्ट्वा ।
गताः श्रमं मानसवासलुब्धाःससारसाः क्रौञ्चगणानुविद्धाः ॥ १३ ॥
न भान्ति नद्यो न सरांसि चैव हतत्विषीवायतचारुनेत्रे ।
गतेषु हंसेष्वथ सारसेषु रथाङ्गतुल्याह्वयनेषु चैव ॥ १४ ॥
भोगैकदेशेन शुभं शयानं ध्रुवं जगन्नाथमुपेन्द्रमीशम् ।
निद्राभ्युपेता वरकालतज्ज्ञा श्रियं प्रणम्योत्तरचारुरूपाम् ॥ १५ ॥
निद्रायमाणे भगवत्युपेन्द्रे मेघाम्बराक्रान्तनिशाकरोऽद्य ।
पद्मामलाभं कमलायताक्षि कृष्णस्य वक्त्रानुकृतिं करोति ॥ १६ ॥
कदम्बनीपार्जुनकेतकानां स्रजो भृशं कृष्णमुपानयन्ति ।
पुष्पाणि चान्यान्यृतवः समस्ताः कृष्णात् प्रसादानभिकाङ्क्षमाणाः ॥ १७ ॥
नागाश्चरन्तो विपदिग्धवक्त्राः स्पृशन्ति पुष्पाण्यपि पादपानाम् ।
पेपीयमानान् भ्रमरैर्नैनाना कौतूहलं ते जनयन्त्यतीव ॥ १८ ॥
तोयातिभाराम्बुदवृन्दनद्धं नभः पतिष्यन्तमिवाभिवीक्ष्य ।
निपानगम्भीरमभिन्नवृष्टं मनोहरं चारुमुखस्तनोरु ॥ १९ ॥
बलाकमालाकुलमाल्यदाम्ना निरीक्ष्य रम्यं घनवृन्दमेतत् ।
सस्यानि भूमावभिवर्षमाणं जगद्धितार्थं विमलाङ्ग्यदृष्टे ॥ २० ॥
जलावलम्बाम्बुदवृन्दकर्षी घनैर्घनान् योधयतीव वायुः ।
प्रवृत्तचक्रो नृपतिर्वनस्थान् गजान् गजैः स्वैरिव वीर्यदृप्तान् ॥ २१ ॥
अभौममम्भो विसृजन्ति मेघाः पूतं पवित्रं पवनं सुगन्धि ।
हर्षावहं चातकबर्हिणानां वराण्डजानां जलदप्रियाणाम् ॥ २२ ॥
प्लवगमः षोडशपत्रशायी विरौति गोष्ठं सह कामिनीभिः ।
ऋचो द्विजातिः प्रियसत्यधर्मा यथा सुशिष्यैः परिवार्यमाणः ॥ २३ ॥
गुणं महान्तोयदकालतोऽयमवुद्धमेघस्वनभीषितानाम् ।
परिष्वजन्तः परिवर्द्धयन्ति विनापि शय्यासमयं प्रियाणाम् ॥ २४ ॥
दोषोऽप्ययमेकः सलिलागमस्य मा भ्रयुदारान्वयवर्णशीले ।
न दृश्यते यत् तव वक्त्रतुल्यो घनग्रहग्रस्ततनुः शशाङ्कः ॥ २५ ॥
प्रदृश्यते भीरु यदा शशाङ्को घनान्तरस्था जगतः प्रदीपः ।
तदानुपश्यन्ति जनाः प्रहृष्टा बन्धुं प्रवासादिव सन्निवृत्तम् ॥ २६ ॥
विलापसाक्षी प्रियहीनितानां सदृश्यते भीरु यदा शशाङ्कः ।
नेत्रोत्सवः प्रोषितकामुकानां दृष्ट्वैव कान्ते भवतीत्यवैमि ॥ २७ ॥

नेत्रोत्सवः कान्तसमागतानां दावाग्नितुल्यः प्रियहीनितानाम् ।
तेनैव देहेन वराङ्गनानां चन्द्रोऽपि तावत्प्रियविप्रियश्च ॥ २८ ॥
विनापि चन्द्रेण पुरे पितुस्ते यतः प्रभा चन्द्रगभस्तिगौरी ।
गुणागुणांश्चन्द्रमसो न वेद्मि यतस्ततोऽहं प्रशंसयिष्ये ॥ २९ ॥
अवाप यो ब्राह्मणराज्यमीड्यो दुरापमन्यैः सुकृतैस्तपोभिः ।
गायन्ति विप्राः पवमानसंज्ञं समागताः पर्वणि चाप्युदारम् ॥ ३० ॥
पिता बुधस्योत्तरवीर्यकर्मा पुरूरवा यस्य सुतो नृदेवः ।
प्राणाग्निरीड्योऽग्निमजीजनद् यो नष्टं शमीगर्भभवं भवात्मा ॥ ३१ ॥
तथैव पश्चाच्चरमे महात्मा पुरोर्वशीमप्सरसां वरिष्ठाम् ।
पीतः पुरा योऽमृतसर्वदेहो मुनिप्रवीरैर्वरगात्रि घोरैः ॥ ३२ ॥
नृपः कुशाग्रैः पुनरेव यश्च धीमानतोऽग्निर्दिवि पूज्यते च ।
आयुश्च वंशे नहुषश्च यस्य यो देवराजत्वमवाप धीरः ॥ ३३ ॥
देवातिदेवो भगवान् प्रसूतो वंशे हरिर्यस्य जगत्प्रणेता ।
भैमः प्रवीरः सुरकार्यहेतोर्यः सुभ्रु दक्षस्य वृतः सुताभिः ॥ ३४ ॥
बभूव राजाथ वसुश्च यस्य वंशे महात्मा शशिवंशदीपः ।
यश्चक्रवर्तित्वमवाप वीरः स्वैः कर्मभिः शक्रसमप्रभावः ॥ ३५ ॥
यदुश्च राजा शशिवंशमुख्यो योऽवाप महामधिराजभावम् ।
भोजाः कुले यस्य नराधिपस्य धीराः प्रसूताः सुरराजतुल्याः ॥ ३६ ॥
न क्षुद्रकृद् यस्य नृपोऽस्ति वंशे न नास्तिको नैष्कृतिकोऽपि वाम ।
अश्रद्दधानोऽप्यथवा कदर्यः शौर्येण वा वारिरहापि हीनः ॥ ३७ ॥
वंशे वधूस्त्वं कमलायताक्षि श्लाघ्या गुणानामनिपात्रभूता ।
कुरु प्रणामं त्रिपुरप्रमर्दिन्नि तस्य त्वमीशस्य सतां प्रियस्य ॥ ३८ ॥
नारायणायाम्भसि शायनाय लोकायनाय त्रिदशायनाय ।
खगेन्द्रकेतोः पुरुषोत्तमाय कुरु प्रणामं श्वशुराय देवि ॥ ३९ ॥

षण्णवतितमोऽध्यायः

वैशम्पायन उवाच—

सत्रावसाने च मुनेः कश्यपस्यातितेजसः ।
जग्मुर्देवासुराः स्वानि स्थानान्यमितविक्रमाः ॥ १ ॥
वज्रनाभोऽपि निर्वृत्ते सत्रे कश्यपमभ्यगात् ।
त्रैलोक्यविजयाकाङ्क्षी तमुवाचाथ कश्यपः ॥ २ ॥
वज्रनाभ निबोध त्वं श्रोतव्यं यदि चेन्मम । वस वज्रपुरे पुत्र स्वजनेन समावृतः ॥

तपसाम्यधिक शक शक्तश्चैव स्वभावत । ब्रह्मण्यश्च कृतज्ञश्च ज्येष्ट श्रेष्टतमो गुणै ॥
राजा कृत्स्नस्य जगत पात्रभूत सता गति ।
सम्प्राप्तो लोकराज्य स सर्वभूतहिते रता ॥ ५ ॥
नैव शक्यस्त्वया जतु वज्रनाभ विहन्यसे ।
अहि पदा स्पृशन्नेव वै नचिराद् विनशिष्यसि ॥ ६ ॥
वज्रनाभश्च तद्वाक्य नाभिनन्दति भारत । कालपाशपरीताङ्गो मर्तुकाम इवौषधम् ॥
अभिवाद्य स दुर्बुद्धि कश्यप लोकभावनम् ।
त्रैलोक्यविजयारम्भे मति चक्रे दुरासद ॥ ८ ॥
ज्ञातियोधान् समानीय मित्राणि सुबहूनि च ।
प्रतस्थे स्वर्गमेवाग्रे विजिगीषन् विशाम्पते ॥ ९ ॥
एतस्मिन्नन्तरे देवौ कृष्णेन्द्रौ महाबलौ । प्रेषयामासतुर्हंसान् वज्रनाभवध प्रति ॥
समागतास्तु तच्छ्रुत्वा यदुसुरया महाबला ।
मन्त्रयित्वा मत्रा मानश्चिन्तामापेदिरे तथा ॥ ११ ॥
वज्रनाभोऽथ हन्तव्य प्रद्युम्नेनेयसशयम् ।
तयोर्दुहितरो भार्या भक्त्या ता सर्वभावना ॥ १२ ॥
सर्वा सगर्भास्ताश्चैव किं नु कार्यमनन्तरम् ।
प्राप्त प्रसवकालश्च तासा नातिचिरादिव ॥ १३ ॥
सम्मन्त्रयित्वैतदर्थं हसानूचुर्महाबला । आख्येयमर्थवत् कृत्स्न शक्रकेशवयोस्तदा ॥
हसैर्ग वा तदाख्यान देवयोस्तद् यथातथम् ।
ताभ्या हसास्तु सदिष्टा न भेतव्यमिति प्रभो ॥ १५ ॥
उत्पत्स्यन्ति गुणे श्लाघ्या पुत्रा व कामरूपिण ।
गर्भस्था सर्ववेदाश्च साङ्गान् वत्स्यन्त्यनिन्दिता ॥ १६ ॥
तथा चानागत सर्वमस्त्राणि विविधानि च ।
सद्य एव युवानश्च भविष्यन्ति सुपण्डिता ॥ १७ ॥
एवमुक्ता गता हसा पुनर्वज्रपुर विभो । शशसुश्चैव मेमाना शक्रकेशवभाषितम् ॥
प्रभावती तदा पुत्र सुषुवे सदृश पितु । सद्यो यौवनसम्प्राप्त सर्वज्ञत्व च भारत ॥१९॥
मासमात्रेण सुषुव दर्वी चन्द्रवती नृप । चन्द्रप्रभमिति ख्यात तनय सदृश पितु ॥
सद्यश्च यौवन प्राप्त सर्वज्ञ च भारत । गुणवत्यपि पुत्र च गुणवन्तमनिन्दिता ॥
युवानावथ सद्यस्तौ सर्वशास्त्रार्थकोविदौ । इन्द्रोपेन्द्रप्रसादेन सवृत्तौ युद्धवर्द्धनौ ॥
हर्म्यपृष्ठे वर्द्धमाना दृष्टास्ते यदुनन्दना । इन्द्रोपेन्द्रेच्छया वीर नान्यथेत्यवधार्यताम्॥
निवेदिताश्च सम्भ्रान्तर्दैयैराकाशरक्षिभि । वज्रनाभाय वीराय त्रिविष्टपजयैषिणे ॥
वधाय सर्वे गृह्यन्ता ममैते गृहधर्षका । इत्युवाचासुरपतिर्वज्रनाभो महासुर ॥२५॥
तत सैन्य समादिष्टमसुरेन्द्रेण धीमता । आवारयामास दिश सर्वा कुरुकुलोद्वह ॥

गृह्यन्तामाशु बध्यन्तामिति याचन्ततस्ततः । उद्घोषमसुरेन्द्रस्य शासनादरिनाशिनः ॥
तच्छ्रुत्वा व्यथितास्तेषां मातरः पुत्रवत्सलाः ।
रुरुदुस्ता रुदन्तीश्च प्रद्युम्नः प्रहसन् प्रवीत् ॥ २८ ॥
मा भैष्ट जीवमानेषु स्थितेष्वस्मासु सर्वथा ।
किं नो दैत्याः करिष्यन्ति सर्वथा भद्रमस्तु वः ॥ २९ ॥
प्रभावतीमथोवाच प्रद्युम्नो विह्वलां स्थिताम् ।
पिता तव गदापाणिः पितृव्याश्च स्थितास्तव ॥ ३० ॥
भ्रातरश्चैव ते देवि ज्ञातयश्च तथापरे । पुत्रे पुत्र्यश्च मान्याश्च तवार्थे सन्तु सर्वथा ॥
भगिन्यौ पृच्छ भद्रे ते कालोऽयं खलु दारुणः ।
मरणं सहमानानां युद्ध्यतां विजयं ध्रुवम् ॥ ३२ ॥
दानवेन्द्रादयो ह्येते योत्स्यन्तेऽस्मद्वधैषिणः ।
किमत्र कार्यमस्माभिः सर्वैश्चान्तरस्थितैः ॥ ३३ ॥

प्रभावती रुदन्ती तु प्रद्युम्नमिदमब्रवीत् । शिरस्यञ्जलिमाधाय जानुभ्यां पतिता क्षितौ ॥
गृहाण शस्त्रमात्मानं रक्ष शत्रुनिबर्हण । जीवन् पुत्रांश्च दारांश्च द्रक्ष्यसि यदुनन्दन ॥
आर्यां नृवर वैदर्भीमनिरुद्धं च मानद । स्मृत्वैतन्मोक्षयात्मानं व्यसनादरिमर्दन ॥
दुर्वाससा वरो दत्तो मुनिना मम धीमता । वैधव्यरहिता दृष्टा वीरपुत्रा भविष्यसि ॥
एष मे हृदयाश्वासो भविता न तदन्यथा । श्रूयतामिति तेऽप्येतं वाक्यं मुनेरिन्द्रानुजात्मज ॥
इत्युक्त्वाऽपाणिनादाय क्षुरप्रं द्रुतमनस्विनी ।
प्रददौ रुक्मिणेयाय जयस्वेति परं तदा ॥ ३९ ॥

स तं जग्राह धर्मात्मा प्रहृष्टेनान्तरात्मना । प्रणम्य शिरसा दत्तं प्रियया भक्तियुक्तया ॥
चन्द्रवत्यपि निस्त्रिंशं गदाय प्रददौ मुदा । सदा गुणवती चैव साम्बायासि महात्मने ॥
हंसकेतुमथोवाच प्रद्युम्नः प्रथमं प्रभुः । इहैव साम्बसहितो युष्यस्व सह यादवैः ॥
आकाशे दिक्षु सर्वासु योत्स्याम्यहमरिंदम ।
इत्युक्त्वाथ रथं चक्रे मायया मायिनां वरः ॥ ४३ ॥

सहस्रशिरसं नागं कृत्वा सारथिमात्मवान् । अनन्तभोगं कौरव्य सर्वनागोत्तमोत्तमम् ॥
स तेन रथमुख्येन दर्शयन् वै प्रभावतीम् । चचारासुरसैन्येषु सूर्यवच्च हुताशनः ॥
शरैराशीविषप्रख्यैर्दर्शयन्द्रानुकारिभिः । भेदनैर्गन्धनैश्चैव तत्सदं दितिसंभवान् ॥
असुराश्च रणे मत्ता यान्ति नागैरितस्ततः । आनुयत्नप्रयाणपरं निश्चयमाश्रितः ॥
चिच्छेद बाहून् केषांचित् केषांचन पेञ्जरान् ।
मकुटानि केषांचिच्छिरांस्यपि च चिच्छिदे ॥ ४८ ॥
क्षुरप्रैः शिरोभिश्च कायैश्च सकुण्डलैः । असुराणां मही कीर्णा प्रद्युम्नेनारिनिर्जिता ॥
देवेश्वरो देवगणैः सहितः समितिंजयः । ददर्श मुदितो युद्धं भैमस्य दितिजैः सह ॥

ये गद चैव साम्ब च दैत्या समभिदुद्रुवु । ते ययुर्निधन सर्वे यादासीव महोदधौ ॥
विषम तु तदा युद्ध दृष्ट्वा देवपतिर्हरि । गदाय प्रेषयामास स्व रथ हरिवाहन ॥५२॥
दिदेश मातलिसुत यन्तार च सुवर्चसम् । साम्बायैरावण नाग प्रेषयामास चेश्वर ॥
जयन्त रौक्मिणेयस्य सहायमददाद् विभु । ऐरावणमधिष्ठातु प्रवर स नियुक्तवान् ॥
देवपुत्रद्विजौ वीरावप्रमेयपराक्रमौ । अनुज्ञाप्य सुराध्यक्ष ब्रह्माण लोकभावनम् ॥५५॥
त मातलिसुत चैव गजमैरावण तदा । देव प्रेषितवाञ्छक्रो विधिज्ञो वरकर्मसु ॥५६॥
क्षीणमस्य तपो वध्यो यदूनामेष दुर्मति । प्रवदन्ति तु भूतानि सर्वत्र तु यथेप्सितम् ॥
प्रद्युम्नश्च जयन्तश्च प्राप्तौ हर्म्य महाबलौ । असुराञ्छरजालैर्विक्राम्यन्तौ प्रणश्यतु ॥
गद कार्ष्णिस्तदोवाच दुर्वार्यरणदुर्जय । उपेन्द्रानुज शक्रेण रथोऽय प्रेषितस्तव ॥
हरियुङमातलिसुतो यन्ता चाय महाबल । प्रवराधिष्ठितश्चाय साम्बस्यैरावणो गज ॥
अद्योपहारो रुद्रस्य द्वारकाया महाबल । श्व एष्यति हृषीकेशस्तस्मिन् वृत्तेऽच्युतानुज ॥
तस्याज्ञया वधिष्यामो वज्रनाभ सबान्धवम् । अभ्युत्थानकृत पाप त्रिविष्टपनय प्रति ॥

करिष्यामि विधान तु नैष शक्र सुतान्वितम् ।
विनेत्यस्यप्रमादस्तु कर्तव्य इति मे मति ॥ ६३ ॥

कलत्ररक्षण कार्य सर्वोपायैर्नरैर्बुधै । कलत्रधर्षण लोके मरणादतिरिच्यते ॥ ६४ ॥
एव सदिश्य भैम स गदसाम्बौ महाबल । प्रद्युम्नोऽथ ससृजे मायया दिव्यरूपया ॥
तमश्च नाशयामास दैत्यसृष्ट दुरासदम् । नहपे दनराजश्च त दृष्ट्वा रिपुमर्दनम् ॥६६॥
ददृशु सर्वभूतानि कार्ष्णि सर्वेषु शत्रुषु । अन्तरात्मनि वर्तन्त क्षेत्रज्ञमिव त विदु ॥
एव व्यतीता रजनी रौक्मिणेयस्य युध्यत । असुराणा त्रिभागश्च निहतश्चातितेजसा ॥

यावद् वियोधयामास कार्ष्णिर्दैत्यान् रणाजिरे ।
सध्योपास्ता जयन्तेन तावद् विष्णुपदीजले ॥ ६९ ॥
अयोधयज्जयन्तश्च यावद् दैत्यान् महाबल ।
तावदाकाशगङ्गाया भैम सध्यामुपास्तवान् ॥ ७० ॥

सप्तनवतितमोऽध्यायः

वैशम्पायन उवाच—

जगतश्चक्षुषि ततो मुहूर्ताभ्युदिते रवौ । प्रादुरासीद्धरिर्न्वस्ताक्ष्र्येणोरगशत्रुणा ॥ १ ॥
हसवायुमनोभिश्च सुशीघ्रतरग खग । तस्थौ वियति शक्रस्य समीपे कुरुनन्दन ।२।

समेत्य च यथान्याय कृष्णो वासवमग्रिधा ।
पाञ्चजन्य हरिर्दध्मौ दस्याना भयवर्द्धनम् ॥ ३ ॥

त श्रुत्वाभ्यागतस्तत्र प्रद्युम्नो परवीरहा । वज्रनाभ जहीत्युक्त केशवेन त्वरेति च ।४।
तार्क्ष्यमारुह्य गच्छेति पुनरेव प्रणोदित । चकार स तथा वीर प्रणिपत्य सुरोत्तमै ॥

स मनोरहसा वीर तार्क्ष्येणाशु ययौ नृप । अभ्याशं वज्रनाभस्य महाद्वन्द्वस्य भारत॥
ततस्तार्क्ष्यगतो वीरस्ततर्द रणमूर्द्धनि । वज्रनाभं स्थिरो भूत्वा सर्वास्त्रविदनिन्दित॥
तेन तार्क्ष्यगतेनैव गदया कृष्णसूनुना । उरस्यभ्याहतो वीरो वज्रनाभो महात्मना॥
स तेनाभिहितो वीरो दैत्यो मोहवशं गत । चचार च भृशं रक्तं वम्रामैव गतासुवत्॥
आश्वसेत्यथ त कार्ष्णिरुवाच रणदुर्जय । लब्धसञ्ज्ञ स वीरस्तु प्रद्युम्नमिदमब्रवीत्॥
साधु यादव वीर्येण श्लाघ्यो मम रिपुर्भवान् । प्रतिप्रहारकालोऽयं स्थिरो भव महाबल॥

एवमुक्त्वा महानाद मुक्त्वा मेघशतोपमम् ।
गदां मुमोच वेगेन सघण्टां बहुकण्टकाम् ॥ १२ ॥

तया ललाटेऽभिहत प्रद्युम्नो गदया नृप । उद्वमन् रुधिर भूरि मुमोह यदुनन्दन ॥

त दृष्ट्वा भगवान् कृष्ण पाञ्चजन्यं जलोद्भवम् ।
दध्मावाश्वासनकरं पुत्रस्य रिपुनाशन ॥ १४ ॥

त पाञ्चजन्यशब्देन प्रत्याश्वस्त महाबलम् । दृष्ट्वा प्रमुदिता लोका विशेषेणेन्द्रकेशवौ॥
तस्य चक्रं करे याम कृष्णच्छन्देन भारत । क्षुरनेमिसहस्रार दैत्यसघकुलान्तकम् ॥

तन्मुमोचाच्युतसुतस्तस्य नाशाय भारत ।
नमस्कृत्वा सुरेन्द्राय कृष्णाय च महात्मने ॥ १७ ॥

वज्रनाभस्य तच्चक्रात्पादुघरनं शिरस्तदा । नारायणसुतोऽच्छिन्‍न दैत्यानामनुपश्यताम् ॥
गद सुनाभमवधीद् यतमान रणाजिरे । हर्म्यपृष्ठे निषीदन्तं रणदक्षं भयानकम् ॥
साम्ब समरमभ्यस्थानसुरानरिमर्दन । निनाय निशितैर्बाणैः प्रेताधिपपरिग्रहम् ॥
निकुम्भोऽपि हते वीरे वज्रनाभे महासुरे । जगाम षट्पुरं धीरो नारायणभयार्दित ॥
निबर्हिते देवरिपौ वज्रनाभे महासुरे । अवतीर्णौ महात्मानौ हरी वज्रपुर तदा ॥
लब्धप्रशमन चैव चक्रतु सुरसत्तमौ । सान्त्वयामासतुश्चैव बालवृद्ध भयार्दितम् ॥

इन्द्रोपेन्द्रौ महात्मानौ मन्त्रयित्वा महाबलौ ।
आयत्यां च तदाग्रे च बृहस्पतिमतानुगौ ॥ २४ ॥

वज्रनाभस्य तद् राज्य चतुर्धा चक्रतुर्नृप । विजयस्य चतुर्भागं जयन्ततनयस्य वै ॥
प्रद्युम्नस्य चतुर्भागं रौक्मिणेयसुतस्य च । चन्द्रप्रभस्य ददतुश्चतुर्भाग जनेश्वर ॥२६॥

कोट्यश्चतस्रो ग्रामाणामधिक्रान्ता विशाम्पते ।

नाम्नापुरमहस्रं च रुचिरं वज्रपुरोपमम् । चतुर्थं चक्रतुस्तत्र मैत्र्यौ शक्रकेशवौ ॥२७॥
कम्बलाजिनचर्माणि रत्नानि विविधानि च । चतुर्द्धा चक्रतुर्वीरौ वीर वासवकेशवौ ॥
ततोऽभिषिक्तास्ते वीरा राजानो वासवाज्ञया । देवदुन्दुभिघोषेण नृत्यविध्युपराजिते ॥
स्वयं शक्रेण देवेन केशवेन च धीमता । अभिषिक्ता महात्मान शक्रस्यापचनन्दना ।
विजयस्य प्रसिद्धैव गतिर्विदिता धीमत । मातृकेन गुणेनापि माधवानो महात्मनाम् ॥

अभिषिच्य जयन्तं तु वासवो भगवान् प्रवीत् ।
स्वयैते वीर रक्षया राजान समितिञ्जया ॥ ३२ ॥

मम वंशकरोऽत्रैकः केशवस्य त्रयोऽनघ । अवध्या सर्वभूतानां भविष्यन्ति ममाज्ञया॥
गमनागमनं चैव दिवि सिद्धं भविष्यति ।
त्रिविष्टपं द्वारकां च रम्यां भैमाभिरक्षिताम् ॥ ३४ ॥
दिशागजसुतान् नागान् हयांश्चोच्चै श्रवोऽन्वयान् ।
इच्छयैषां प्रयच्छस्व रथास्त्वष्टकृतानपि ॥ ३५ ॥
गजावैरावणसुतौ शत्रुञ्जयरिपुञ्जयौ । प्रयच्छाकाशगौ वीर साम्बस्य च गदस्य च ॥
आकाशेन पुरीं यातु द्वारकां भैमरक्षिताम् । आयातु च सुतौ द्रष्टु यथेष्टं भैमनन्दनौ॥
इति संदिश्य भगवान् देवराजः पुरन्दरः । जगाम भगवान् स्वर्गं द्वारकामपि केशवः ॥
षण्मासानुषितस्तत्र गदः प्रद्युम्न एव च । साम्बश्च द्वारकां याता रूढेराज्ये महाबलाः॥
अद्यापि तानि राज्यानि मेरोः पार्श्वे तथोत्तरे ।
तिष्ठन्ति च जगद् यावत् स्थास्यन्त्यमरसंनिभ ॥ ४० ॥
निवृत्ते मौसले युद्धे स्वर्गं यातेषु वृष्णिषु । गदप्रद्युम्नसाम्बास्ते गता वज्रपुरं विभो ॥
ततः प्रोष्य पुनर्यान्ति स्वर्गं स्वैः कर्मभिः शुभैः ।
प्रसादेन च कृष्णस्य लोककर्तुर्जनेश्वर ॥ ४२ ॥
प्रद्युम्नोत्तरमेतत् ते नृदेव कथितं मया । धन्य यशस्यमायुष्य शत्रुनाशनमेव च ॥
पुत्रपौत्रा विवर्धन्ते आरोग्यधनसम्पदः । यशो विपुलमाप्नोति द्वैपायनवचो यथा ॥

उपरि लिखित हरिवंश की कथा में जो थोड़ा बहुत परिवर्त्तन किया गया है उससे नाटक की रमणीयता बढ़ गई है यह बात निःसङ्कोच कही जा सकती है ।

प्रभावती परिणय की कथावस्तु

(१)

पुराणों के अनुसार कश्यप की दो पत्नियाँ थीं १ दिति, २ अदिति । दिति से उत्पन्न दैत्य, तथा अदिति से उत्पन्न आदित्य-देव कहे गये । दोनो दल का सबन्ध वैमात्रेय कहा सबन्ध रहा । दैत्यों में वज्रनाभ तथा सुनाभ नाम के दो भाई बड़े वीर तथा प्रबल तपस्वी हो गये हैं । वज्रनाभ ने अपनी तपस्या से ब्रह्मा को प्रसन्न करके वरदान प्राप्त किया था कि उसकी नगरी 'वज्रपुर' में उसकी इच्छा के बिना किसी का प्रवेश नहीं हो सकता है । उसको ब्रह्मा ने यह भी वर दिया था कि उसे देवगण नहीं मार सकते हैं । एक समय की बात है वज्रनाभ ने मन्त्रणा करके अपने गुरु शुक्र को इन्द्र के पास सवाद कहने को भेजा । संवाद का स्वरूप यह था कि—'हे देवराज, यह समस्त संसार हम लोगों की पैतृक सम्पत्ति है, उचित है कि हम कश्यप के पुत्र उसका समान अंश प्राप्त करें । अतः आपने जितने दिनों तक स्वर्ग का भोग किया है, उतने दिनों तक अब मुझे स्वर्ग का भोग करने दें ।'

।। संवाद सुनकर इन्द्र तथा बृहस्पति चकित रह गये, इन लोगों ने मन्त्रणा करके उत्तर दिया कि वज्रनाभ का कहना जायज है, परन्तु न्यायानुसार पैतृक सम्पत्ति का विभाजन पिता की मृत्यु के बाद ही होना चाहिये, वह समय आवेगा तो वज्रनाभ का प्रस्ताव स्वीकृत होकर रहेगा। यदि इसमें कुछ आपत्ति हो तो वह पिताजी से पूछ लें। तदनुसार वज्रनाभ कश्यप के आश्रम में पहुँचा। कश्यप ने वज्रनाभ को समझा दिया कि हमारा द्वादश वार्षिक यज्ञ चल रहा है, उसके बाद आप लोगों के मनोरथ पूरे होंगे, इस वार्तालाप की सूचना इन्द्र को भी मिली, उन्होंने स्थिति की सूचना उपेन्द्र को दी। भगवान् तथा इन्द्र ने योजना बनाई। तदनुसार इन्द्र ने शुचिमुखी नामक हंसी के प्रधानत्व में एक हंस समुदाय को वज्र पुर में जाकर प्रभावती के हृदय में प्रद्युम्न के प्रति अनुराग उत्पन्न करने को कहा। शुचिमुखी ने वही किया। अनुराग के कारण प्रभावती का विरह बढ़ने लगा (प्रथम अङ्क)।

(२)

यथा क्रम में प्रभावती ने अपने पिता वज्रनाभ से कह दिया कि यह हंसी अनुरागपूर्ण देशान्तर वृत्तान्त सुनाने में निपुण है। इस पर कुतूहली दैत्यराज ने शुचिमुखी को वृत्तान्त सुनाने के लिये कहा। शुचिमुखी ने भद्रादि नटों के नाट्यकौशल की वर्णना द्वारा वज्रनाभ को इस प्रकार से आकृष्ट कर दिया कि—उसने भद्र आदि को बुला देने का अनुरोध कर दिया। शुचिमुखी की योजना सफल हो गई। (द्वितीय अङ्क)।

(३)

योजनानुसार भद्र आदि नटों के साथ प्रद्युम्न, साम्ब, गद आदि यादव वीर नटवेष में शुचिमुखी के साथ आ गये। इन लोगों ने अपने अभिनय कौशल से वज्रनाभ को तथा उसकी रानियों को इतना आकृष्ट कर लिया कि उन लोगों ने प्रसन्न होकर बहुत सारे उपहार दिये। (तृतीय अङ्क)।

(४)

वज्रपुर में प्रद्युम्न आदि के आ जाने पर शुचिमुखी के माध्यम से उनका प्रभावती के साथ पत्र व्यवहार होने लगा। एक दिन पुष्प के साथ भ्रमर रूप में प्रद्युम्न प्रभावती के अन्तःपुर में प्रवेश कर गये। प्रभावती के साथ उनके हाथ की गर छेड़खानी से प्रभावती के कोप पर शुचिमुखी ने गन्धर्व माला में सूत्र बद्ध किया। एक समय प्रभावती प्रद्युम्न का चित्र चित्रण करके अपना मन बहला रही थी, उसी समय तिरस्करिणी में छिपकर प्रद्युम्न वहीं उपस्थित हो गये, चित्र तथा प्रद्युम्न की छाया, दोनों में तुल्य रूप देखकर प्रभावती तथा सखियों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। प्रत्यक्ष रूप में प्रद्युम्न को अन्तःपुर

में पाकर प्रभावती घवड़ा गई, शुचिमुखी के समझाने पर वह प्रकृतिस्थ हुई। दोनों का प्रच्छन्न मिलन हुआ। (चतुर्थ अङ्क)।

(५)

परभृनिका आदि सखियों ने गद तथा साम्ब को भी चन्द्रावती एवं गुणवती के प्रणय में आवद्ध किया। वे दोनों वज्रनाभ के अनुज सुनाभ की कन्यायें तथा प्रभावती की बहिन के साथ सखियाँ थीं। उनके अनुराग को सफल बनाने के लिए योजना बनी कि उनको भी प्रद्युम्न द्वारा दी गई तिरस्करिणी के बल से अन्तःपुर में रखा जाय। तदनुसार गुप्त मार्ग से अन्धकार में गद तथा साम्ब को अन्तःपुर में पहुँचा दिया गया। (पञ्चम अङ्क)।

(६)

एक रात प्रभावती ने सपना देखा कि उसके प्रिय प्रद्युम्न ने उसके पिता का वध कर दिया है। वह बहुत दुःखी हुई। उसकी सखियों ने उसे स्वप्न व्यर्थता के बारे में बहुत सी बातें कहीं, पर उसके हृदय को आश्वासन नहीं मिला। इस पर उसने स्वप्नदृष्ट अमङ्गल की शान्ति करने का विचार किया। तब तक वर्षा आ गई। प्रद्युम्न ने प्रभावती को अभयदान दिया कि जब तक तुम्हारे पिता द्वारा अन्तःपुर पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं किया जायेगा तब तक मैं उन पर अस्त्र नहीं उठाऊँगा, और बिना तुम से कहे मैं उन्हें नहीं मारूँगा। (छठा अङ्क)।

(७)

धीरे धीरे वज्रनाभ पर यह बात खुल गई कि उसके कन्यान्तःपुर में शत्रुओं का प्रवेश हो गया है तथा उनके सम्पर्क में कन्यायें दूषित हुई हैं। इस पर कुपित होकर वज्रनाभ ने असुर सैन्य सजा कर अन्तःपुर पर धावा बोल दिया। फिर क्या था, प्रद्युम्न, साम्ब और गद ने अपनी वीरता दिखाई। सारे सैन्य के साथ वज्रनाभ तथा सुनाभ मारे गये। युद्ध में भगवान् को भी मदद करनी पड़ी। अन्त में प्रभावती के पुत्र तथा गुणवती-चन्द्रावती के पुत्रों को वहाँ का राज्य विभक्त कर बाँट दिया गया। (सप्तम अङ्क)।

मूल कथा तथा प्रभावती परिणय की कथावस्तु पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है कि परिवर्त्तन केवल नाम मात्र का है, वह भी इसी उद्देश्य से किया गया है कि चमत्कार बढ़े। भित्ति समान है, रङ्ग भर दूसरा है, वह भी इसीलिए कि चित्र साफ़ उभर सके।

प्रभावती परिणय के प्रणेता

'प्रभावती परिणय' के रचयिता हरिहरोपाध्याय ने अपना परिचय स्वयं दे दिया है,

अतः इनके सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि यह हृषीकेश झा के पुत्र राघव झा के आत्मज थे। उन्होंने स्वयं लिखा है :—

"प्रादुर्भूय पुरो गिरीरिव हृषीकेशात्कृती राघवो
यस्तिग्मद्युतिवद् दिवाकरमहावंशे दिदीपे द्विजः।
या लक्ष्मीरिव मैथिलादुदभवद् विद्यावदातात्मन-
स्ताभ्यामुद्भवमापतु' कुशलवप्रख्यातगोत्री सुती ॥
एषा तयोः प्रथमजेन निजानुजात-श्रीनीलकण्ठकविकण्ठविभूषणाय।
सत्तत्त्वीनगुणगुम्फनिबन्धमूलिमुक्तावली हरिहरेण चिरेण चीर्णा ॥"

(प्रभावती परिणय, हरिहर सुभाषित)

इन दोनों उद्धृत श्लोकों से स्पष्ट हो जाता है कि 'हरिहर' के पितामह 'हृषीकेश' पिता 'राघव' माता 'लक्ष्मी' तथा अनुज 'नीलकण्ठ' थे। इन्हीं श्लोकों से यह भी ज्ञात होता है कि यह मैथिल थे। इन्होंने प्रभावती परिणय के आरम्भ में अपने नाना का नाम भी बताया है।

'श्रीरामेश्वरमीश्वरीकविगिरामाराधयन्ती चिराद्या
विद्याभिर्दशमल्लारयल्लहरी तस्या यदि स्यादियम्'
'तत्पराधीनतयैव तदीदिग्रमनुगृहीतयस्या.'

(प्रभावती परिणय)

इन दोनों उद्धरणों से कवि का पूरा पता चल जाता है।

मैथिल पञ्जीप्रबन्ध के अनुसार भी हरिहर का पूर्वोक्त परिचय प्राप्त होता है जिसका विस्तृत उल्लेख प्रो० रमानाथ झा एम० ए० द्वारा सम्पादित हरिहर विरचित सूक्तिमुक्तावली या हरिहर सुभाषित नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की अंग्रेजी लिखित भूमिका में मिलता है। उस भूमिका से तथा उसमें दिये गये वंश वृक्षों से यह भी प्रमाणित होता है कि उनका मूल — "करमहे वेहट" था, तथा उनके वंश में आज भी लोग वर्तमान हैं जो उनके सर्वथा स्मारक हैं। इसके सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी के लिए प्रो० रमानाथ झा की भूमिका—' हरिहर सुभाषित पर) देखना चाहिये जो प्रकाशित है।

हरिहर की रचनाएँ

हरिहर नाम के बहुत कवि हुए हैं जिनकी भिन्न भिन्न रचनाएं प्रसिद्ध हैं, उनमें हमारे परिचयनायक की मात्र दो रचनाएं हैं—१ प्रभावती परिणय २ सूक्तिमुक्तावली या हरिहर सुभाषित।

यद्यपि कुछ लोग 'भर्तृहरि निर्वेद' नामक नाटक को भी हरिहर के नाम से निर्दिष्ट करते हैं, परन्तु महामहोपाध्याय मुकुन्द झा बख्शी द्वारा लिखित हरिहर निर्वेद की भूमिका

से स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है कि भर्तृहरि निर्वेद के रचयिता हरिहर प्रभावती परिणय के प्रणेता हरिहर से भिन्न पुरुष थे। आर० एल० मित्र एवं काशीप्रसाद जायसवाल ने अपनी सूचनाओं में क्रमश पृष्ठ १५९ तथा ८८ में प्रभावती परिणय के श्लोक उद्धृत करते हुए यह बातें स्वीकृत की हैं।

भर्तृहरि निर्वेद किसी धर्मशास्त्रनिबन्धा हरिहर की रचना है। इस बात को प्रो० रमानाथ झा ने वंशानुक्रमजनित कालभेद के द्वारा प्रमाणित कर दिया है।

हरिहर का पाण्डित्य

हरिहर उपाध्याय मूलत दार्शनिक विद्वान् थे जैसा कि उनके समय के मैथिल हुआ करते थे। गङ्गेश की भूमि में दार्शनिक विद्वान् का होना ही प्रचलित परम्परा थी, दार्शनिकता की पृष्ठ भूमि में ही वहाँ धर्मशास्त्र, काव्य, नाटक आदि भिन्न भिन्न प्रकार के साहित्य पनपा करते थे, प्रसिद्ध नाटककार जयदेव ने जहाँ प्रसन्न राघव लिखा, वहा उनके न्याय ग्रन्थ भी हैं। मुरारि ने यदि 'अनर्घराघव' की रचना की, तो उन्होंने मीमांसा में भी मत प्रवर्त्तन का श्रेय प्राप्त किया। गोकुलनाथ ने गद्यकाव्य, नाटक, काव्यप्रकाश टीका के साथ ही 'रश्मिचक्र', 'लाघवगौरवरहस्य' आदि दार्शनिक ग्रन्थों का भी निर्माण किया। हरिहर ने भी न्यायादिदर्शन के साथ काव्यकला सीखी थी। उनके मानामह भी कविता के रसिक थे। स्वय हरिहर ने ही कहा है—'श्रीरामेश्वरमीश्वरी कविगिरामाराधयन्ता चिराद्या विद्यामिरवास लास्यलहरी तस्या यदि स्यादियम्'। इस प्रकार दार्शनिकता की भित्ति पर अवलम्बित कविता के यशस्वी कवि हरिहर पण्डित कवि थे। उनकी कविता पाण्डित्य की सहचरी थी। उनके दो ग्रन्थ मिले हैं १ हरिहर सुभाषित या सूक्तिमुक्तावली २. प्रभावती परिणय नाटक। प्रथम प्रकाशित है, द्वितीय अभी तक प्रकाशित नहीं हो सका है। यही अब मैं उसके प्रकाशन का प्रयास कर रहा हूँ।

कुछ लोग 'भर्तृहरि निर्वेद' नामक नाटक को भी इनकी रचना मान रहे थे, उनके इस अभिमान का खण्डन महामहोपाध्याय बख्शी मुकुन्द झा एवं प्रो० रमानाथ झा ने ही कर दिया है।

हरिहर का समय

प्रो० रमानाथ झा ने पञ्जीप्रबन्ध का विवरण प्रस्तुत करके सिद्ध कर दिया है कि हरिहर का जन्म १५९५ ई० के लगभग में हुआ था। यद्यपि इस कथन का आधार बहुत प्रामाणिक है, फिर भी इसमें दस पाँच वर्ष का हेरफेर हो सकता है, क्योंकि कुछ बातें अनुमान पर आधारित की गई हैं और उनमें परिवर्तन सम्भव रहता ही है। समय के निश्चित रहने पर भी हरिहर के सम्बन्ध में बहुत जानकारी प्राप्य नहीं है। इतना ही कहा जा सकता है कि

वह एक विशिष्ट विद्वान् थे, श्रोत्रिय सम्प्रदाय के गण्य मान्य जन तथा 'बिठ्ठो' नामक ग्राम के निवासी थे। स्व० महाराज रमेश्वर सिंह की बड़ी बहन के पति पं० मुकुन्द झा इनके वंश के हैं। इसके अतिरिक्त अन्य जीवन घटनायें ज्ञात नहीं हैं।

प्रभावती परिणय का काव्यसौष्ठव

हरिहर की रचना में एक अद्भुत सौष्ठव है, जिसकी उपलब्धि उन्होंने मुरारि तथा जयदेव की शैलियों का समन्वय करके की है। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि हरिहर ने मुरारि की गाढबन्धता अर्थगाम्भीर्य आदि के साथ जयदेव की प्रासादिकता तथा सुकुमारता का भी अपनी कविता में समावेश किया है। वह सरल से सरल तथा कठिन पदों की रचना में समान रूप से सफलता पा सके हैं जहाँ उनकी रचना है—

'विधिना विनिपातनाय नीतो रविरस्ताचलमम्बुधावगाधे। मुग्धमुग्धमम्बुजै रथाङ्गप्रणयके विपदि प्रमाणयन्ति ॥'

इस तरह के सरल पद्य प्रस्तुत किये हैं वहीं—

'प्राच्यामन्वासरश्रीविरचितमिहिरोदारदीपोपरिष्टात्
सम्पृष्टाधारपात्रायितवियदवनीपीठिकासन्निधानि।
भूमीभागं हरिद्भिर्युवतिभिरभितः पाच्यमानानि मन्ये
नान्यत्ताम्यत्समस्तप्रियविरहिणीभिरसामभावं भजन्ते ॥

इस तरह के सम्बन्ध पदों की रचना में भी सफल हो सकने का श्रेय प्राप्त किया है। ये दो उदाहरण मैं इसलिए प्रस्तुत कर रहा हूँ कि पाठक इनकी रचना में दोनों तरह के पदों को लेकर समान रूप से सफलता का आभास प्राप्त कर सकेंगे।

कवि होना एक अलग सौभाग्य की बात है उससे भी बड़ी बात है सफल नाटक की रचना में कुशलता प्राप्त कर सकना। हरिहर उपाध्याय का नाटक 'प्रभावती परिणय' एक सफल नाटक है। इस विषय में किसी को सन्देह करने का अवसर नहीं मिलेगा। नाटक में कथोपकथन की रोचकता पर ही नाटक की सफलता निर्भर करती है यह बात सर्वविदित है और यह रोचकता प्रभावती परिणय में भरपूर है।

इस नाटक में मद के साथ मदन का कथोपकथन, चतुरिका के साथ कुमार का वार्तालाप आदि इतने मनोहर हैं तथा मद का वार्तालाप इतना सरस है कि वे बरबस हृदय को आकृष्ट करते हैं।

अब हम कुछ ऐसे पद्य उद्धृत करेंगे जिनसे आप हरिहर की कविता शैली का कोटि निर्धारण करने में स्वयं सक्षम हो सकते हैं। देखिये—

'बालानामानमद्गुरुपदं निम्नता भूमि गुर्वी
सान्द्रस्पर्शादिव कचभरः गर्भं प्रभ प्रयाति ।

भूयो भूय प्रतिनृपवचो नम्रमाताचरन्मे
कायोऽभ्यासादिव समभवद्वक्र एव क्रमेण ॥'

(अङ्क २ श्लोक २)

वृद्ध कन्चुकी की उक्ति है, वह अपनी वृद्धावस्था को कोस रहा है—वह कहता है कि मैं सदा से राजाओं की आज्ञा को सिर पर रखता आया हूँ, उसी सघर्ष में मेरे सारे बाल गिर गये, राजगण के प्रत्येक आदेश पर नम्रता प्रकाशित करने के लिये बारबार झुकने के अभ्यास से मेरा शरीर वक्र हो गया। वाधक्य की खलितता तथा झुकने का कारण किस प्रकार उत्प्रेक्षित हुआ है

परम्पराकृत नियमानुसार नाटक में प्रात मध्याह्न साय, वर्षा वसन्त, आदि के वर्णन की प्रवृत्ति कवियों में देखी जाती है हर्ष के नाटकों के बाद निर्मित नाटकों में कम-बेशी रूप में यह क्रम विद्यमान है। प्रभावतीपरिणयकार ने इस वर्णन क्रम में खूब सफलता प्राप्त की है। प्रथम अङ्क के अन्त में मध्याह्न का द्वितीय तथा चतुर्थ अङ्क के अन्त में सन्ध्या का, षष्ठ अङ्क में प्रभात का एव वर्षा का वर्णन इतना सुन्दर है कि मैं यहीं एक एक उदाहरण प्रस्तुत करने के लोभ का सवरण नहीं कर पा रहा हू।

(मध्याह्न)

'नीरावैर्विहगरतिरोहितगिरो निर्वातनि स्पन्दना
मध्याह्ने मिहिरातपेन तरवस्तप्ता इवोन्मूछिता ।
शोकोन्मादभरेण पादपतितास्तेषा तु जाया इव
च्छाया सङ्कुचितोपतसतनव क्रोशन्ति झिल्लीरवै ॥'

पक्षिगण नीरव हो रहे हैं, निर्वात हो जाने से वृक्ष निश्चल हैं, ऐसा लगता है—मध्याह्न में सूर्य किरण से सन्तप्त होकर वृक्ष समूह मूर्च्छित हो रहे हों, उन वृक्षों की पत्नी सी लगने वाली छाया उनके पैरों पर पडी है उनके शरीर सन्तप्त हैं और वे झिल्लीरव के व्याज से आक्रोश कर रही हैं।

(सूर्यास्त)

'अस्तोर्वीधरमन्दिर दिनमणौ प्राप्ते प्रिये दूरतो
रक्त सत्वरमम्वर परिदधे स्मेरानना वारुणी।
अन्यास्त सहसा दिशामथ मुखान्यालम्वते नीलिमा
मीलन्नीरजलोचना किमधुना पायोनिनी मुह्यति ॥'

दूर देश से प्रियतम सूर्य के अस्ताचल रूप मन्दिर में आते ही वारुणी दिशा रूप नायिका ने मुस्कुरा कर रक्त अम्बर (लाल वस्त्र-आकाश) धारण कर लिया, अन्य दिशाओं

'यद्यप्येप विशेषविक्कवयिता दिग्नासु दक्षा वयम्,
नाट्ये शम्बरगर्वडम्बरहरो देवः स्मरो नायकः ।'

(प्रभावतीपरिणय—१-१३)

इस श्लोक पर मुझे हर्षकृत 'रत्नावली' के निम्न लिखित पद्य की छाया पड़ती हुई प्रतीत होती है—

'श्रीहर्षो निपुणः कविः परिषदप्येषा गुणग्राहिणी,
लोके हारि च वत्सराजचरितं नाट्ये च दक्षा वयम् ।'

प्रभावतीपरिणय में एक श्लोक है :—

'कृतिमतामपटोरपि घटयति तेजस्विनां पुरस्कार ।
हरति हरितामनूरुर्जगतो जयजाड्यधिकानि तिमिराणि ॥'

(प्रभा० पृ० १-२०)

इस श्लोक पर अभिज्ञानशाकुन्तल के निम्न लिखित श्लोक की छाया पड़ रही है—

'किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसा विभेत्ता तं चेत्सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् ।'

× × ×

'चित्रमेतदनुचिन्तयन्नय चित्रतामतितमा क्रिमागतः'

प्रभावती परिणय के इस पद्यार्ध को—

'चक्रुर्युवानः प्रतिबिम्बिताङ्गाः सजीवचित्रा इव रत्नभित्तीः ॥'

नैषधीय चरित के इस पद्य से मिलाइये ।

प्रभावतीपरिणय में एक श्लोक है :—

'केलिश्रमखिन्नतमं समन्तात् सवीजयन्तोऽपि शरीरमासाम् ।
त्रासेन नान्तःपुरसुन्दरीणां चेलाञ्चलं सञ्चलयन्ति वाताः ॥'

(प्रभा० पृ० २-४ ॥

इस श्लोक पर निम्न लिखित श्लोक की छाया प्रत्यक्ष है—

'यस्यावरोधप्रमदाजनानां निद्रां विहारार्धपथे गतानाम् ।
वातोऽपि नास्रंसयदंशुकानि को लम्बयेदाहरणाय हस्तम् ॥'

प्रभावती परिणय में वर्णित भ्रमर बाधा का शाकुन्तल में वर्णित भ्रमर बाधा से आंशिक समानता स्पष्ट है ।

अन्य कवियों के काव्य की भी छाया प्रभावती परिणय में अन्वेषण करने पर मिल सकती है, परन्तु इससे हरिहर की कवित्वशक्ति पर आँच नहीं आती है, यह बात मैं बिना किसी संदेह के कहता हूँ।

प्रस्तुत संस्करण

यह बात सबसे पहले ध्यान में रख लीजिये कि 'प्रभावती परिणय' आज तक मुद्रित रूप को नहीं प्राप्त कर सका था। कुछ पुस्तकालयों में इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ ही उपलब्ध हैं, जो लेखक दोष से नितान्त अशुद्ध हैं। पेशावर कायस्थ लेखकों द्वारा लिखित होने के कारण पाठ इस प्रकार से अशुद्ध हो गये हैं कि उनका शुद्ध रूप निश्चित करना एक कठिन कार्य है। इसके अतिरिक्त एक और कठिनाई है कि प्रभावती परिणय में स्त्री पात्र तथा नीच पात्र की भाषा प्राकृत है, संस्कृत की अशुद्धि को वैयाकरण समझ सकते हैं, परन्तु प्राकृत की अशुद्धियाँ पकड़ में आती ही नहीं हैं। मुझे जो हस्तलिखित प्रति मिली थी, जिससे मैंने प्रस्तुत संस्करण तैयार किया है, वह एक कायस्थ की लिखी हुई थी, तथा उस पर समय ले० स० ५५६ लिखा हुआ था। आज से तीन साढे तीन सौ वर्ष पहले एक मात्र अक्षर ज्ञानशाली पेशावर कायस्थ की लिखी संस्कृत प्राकृत काव्य का वैसा रूप हो सकता है यह बात विद्वानों के अनुमान में आ सकती है। अस्तु।

मैंने प्रभावती परिणय की मूल प्रति स्वयं लिखी, लिखने समय मुझसे जहाँ तक बन सका मैंने यह चेष्टा की है कि पाठ शुद्ध रहे। सम्भव है मेरे द्वारा शोधित पाठ में कहीं कहीं मूल पाठ से कुछ भेद आ गया हो, परन्तु इसमें मैं निरुपाय था। हाँ, इतना मैंने अवश्य देखा है कि पाठ शुद्ध एवं न्याय्य हों। प्राकृत भाग का संस्कृत अनुवाद भी मुझे ही करना पड़ा है, उसमें मुझे बहुत परेशानी हुई है। इन सारे कष्टों का पारितोषिक मुझे विद्वज्जनों के आशीर्वाद रूप में मिलेगा, यही मेरे लिए सन्तोष का स्थान है।

मैंने इस संस्करण में मूल के साथ प्राकृत अंश का संस्कृत अनुवाद तथा समस्त मूल भाग का हिन्दी रूपान्तर दे दिया है जिससे रसग्राही पाठकों को कुछ सुविधा हो जायगी।

इस संस्करण के सम्पादन में मुझे पटना विश्वविद्यालय के हस्तलिखित ग्रन्थागार के अन्यतम अधिकारी तथा अपने शिष्य चि० श्री जगन्नाथ मिश्र व्या० सा० वेदान्ताचार्य एम० ए० से बहुत साहाय्य प्राप्त हुआ है, अतः मैं उनको आशीर्वाद देता हूँ।

गङ्गा दशहरा
वि० सं० २०२६

विनयावनत—
रामचन्द्र मिश्र

॥ श्रीः ॥

प्रभावतीपरिणयम्

'प्रकाश' हिन्दीव्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

देव्याः मानापनोदप्रणतशिवशिरश्शीतधाम्ना नखेन्दौ
सम्पूर्णे सैंहिकेयाकृतिकुटिलजटामण्डलार्धावरुद्धे ।
गीर्वाणाश्चन्द्रपर्वभ्रमचकितहृदो न्यञ्चदेतत्-किरीटो-
त्सङ्गाद् गङ्गाप्रवाहे प्रवहति विहितस्नानपुण्याः पुनन्तु ॥ १ ॥

अपि च—

ध्यानावधानपरिलङ्घनजागरूक-
रोषानलोन्मथितमन्मथविग्रहस्य ।

पार्वती के मान को दूर करने के उद्देश्य से शिव पार्वती के चरणों पर अपना शिर रखते हैं उस समय उनके मस्तक पर वर्तमान चन्द्रमा की कान्ति से पार्वती के चरण का नख पूर्णचन्द्र की तरह होकर महादेव के जटाभार-रूप राहु से ग्रस्त सा प्रतीत होने लगता है मानो चन्द्रग्रहण उपस्थित हो गया हो, सेवा मे उपस्थित देवगण चन्द्रग्रहण को उपनत देखकर चकित हो उठते हैं, उन्हें महादेव के शिर पर प्रवाहित होने वाली गङ्गामे स्नान का पुण्य अवसर प्राप्त हो जाता है, वे देवगण हमे पवित्र करें ॥ १ ॥

और —

ध्यानभङ्ग करने के कारण उदित क्रोधरूप अग्नि में कामदेव के शरीर को भस्म कर देने वाले महादेव को अपने उग्रकर्म के पश्चात् जो दयाभाव उत्पन्न

सद्यः प्रबुद्धकरुणापरिणाहदीर्घं
देवस्य पातु परिदेवितमिन्दुमौलेः ॥ २ ॥

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः—(अलमतिविस्तरेण । पुरोऽवलोक्य) कथमयमशेषभुवनवनिताविधीयमानसायन्तनमङ्गलदीपिकासहस्रसमकालमेव पूर्वाचलशिखरसौधपरिसरे प्राचीदिगङ्गनया प्रदीयमानः प्रदीप इवोदित एव देवो रोहिणीरमणः । तद्यावदेनं प्रसादयामि (प्रणम्य)

दिङ्नागरीवदनलम्बिघनान्धकार-
केशापसारणविसारिकरप्रसीद ।
उर्वीतलं तरुणतिग्मकरापराध-
म्लान्तं प्रसाधय सुधामधुरैर्मयूखैः ॥ ३ ॥

अपि च—

जातस्त्वमेव भगवन् भुवने भवानी-
प्राणेश्वरोऽयमलिके तिलकं चकार ।

हुआ, उसके चलते उन्होंने जो पश्चात्ताप किया, वह पश्चाताप हमारी रक्षा करे ॥ २ ॥

(नान्दी के अन्त मे)

सूत्रधार—(अधिक विस्तार अनावश्यक है) (आगे की ओर देखकर) क्यो यह चन्द्रमा उदित हो रहे हैं जो समस्त संसार की ललनाओ द्वारा दिये गये हजारो दीपमालिका के साथ ही प्राचीनायिका द्वारा प्रवर्तित दीप के समान लग रहे हैं । तब तक इनकी आराधना करूं । (प्रणाम करके)

दिशारूप नायिका के मुखो पर लटकते हुए अन्धकारस्वरूप केशपाश को दूर करने मे समर्थ हाथ (कर) वाले चन्द्रदेव, आप प्रसन्न हों, और सूर्य की कठोर किरणो से पीडित इस पृथ्वीतल को अपने अमृतमय करों से आह्लादित करें ॥ ३ ॥

और—

इस संसार में आप ही एक ऐसे उत्पन्न हुए जिसे शिव ने भी अपने मस्तक

यत्सोदरास्त्वमृतकौस्तुभपारिजाता
यस्यान्वये स्वयमयं हरिराविरासीत् ॥ ४ ॥

(नेपथ्ये)

भाव, साधु स्मारितम्,

सूत्रधार—(आकर्ण्य) अये कथमयं पारिपार्श्विकः, (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) मारिष, किमिव ?

(प्रविश्य)

नट—भाव, सबहुमानमस्मानिय नियोजयति जनकजनपदाभरणमणिश्रेणीवेणीसरस्वतीस्रोतःसनाथोत्सङ्गा शृङ्गारादिनाट्यरसास्वादनसुखावहा महाकवीनां नवीनानुबद्धनाटकाभिनयकौतुकोपनीतचित्तचापला परिषत्। तदिमां कतरं प्रबन्धं प्रणीय प्रीणयामीति चिन्तयन्नेव शीतांशुवशावतंस भगवन्त वासुदेवमाख्यातवताऽनुस्मारितोऽस्मि भावेन यत्किल श्रीवासुदेवात्मजन्मनः कुमारप्रद्युम्नस्य सच्चरितसन्दर्भगभित प्रभावतीपरिणय नाम नाटकं परन्तु कुतस्त्यमेतदिति स्मारयितुमवशिष्यते।

पर स्थान दिया, आपके सोदरों मे है अमृत, कौस्तुभ तथा पारिजात वृक्ष। आपके वंश मे स्वयं भगवान् ने भी जन्म लिया है ॥ ४ ॥

(नेपथ्य मे)

भाव आपने अच्छा स्मरण कराया।

सूत्रधार—(सुनकर) क्यो, यह पारिपार्श्वक है, (नेपथ्य की ओर देखकर) मारिष, क्या बात है।

(प्रवेश करके)

नट—मिथिला के भूषण सरस्वती के उपासक तथा शृङ्गारादि रसो से पूर्ण नाट्य के आस्वादन मे रसलीन महाकवियो की यह सभा नवनिर्मित नाटक के अभिनयार्थं अचपल भाव स हमको प्रेरित कर रही है, अतः इस परिषद् को किस प्रबन्ध के अभिनय से प्रसन्न करूं, इसी चि ता मे मैं था कि आपने चन्द्रवंशभूषण भगवान् वासुदेव की याद दिला दी, मुझे याद पड गया वासुदेव के पुत्र प्रद्युम्न के चरित से पूर्ण प्रभावतीपरिणय नामक नाटक, परन्तु वह किसकी कृति है यह नहीं याद पड रहा है।

सूत्रधारः—मारिष, मैथिल एवायं प्रबन्धः।

नटः—(सवितर्कम्) भाव, बहवो हि मैथिला महाकवयः, तेषु—

शङ्के शङ्करमिश्रविश्रुतकृतेर्वाचामयं विभ्रमः।

सूत्रधारः—नैवम्, प्राचीना हि ते जगद्गुरवः।

नटः—प्रायः प्रादुरभूदियं रुचिपतेर्वाणीति जानीमहे॥

सूत्रधारः—नैतदपि, ततोऽपि नूतनोऽयम्।

नटः—*श्रीरामेश्वरमीश्वरी कविगिरामाराधयन्ती विराट्*

या विद्याभिरुवास लास्यलहरी तस्या यदि स्यादियम्॥५॥

सूत्रधारः—एवमेतत्, परन्तु तत्पराधीनतयैव तद्दौहित्रमनुगृहीतवत्या, यावत् कवयितारं विशिष्य व्याहरामि।

प्रादुर्भूय पुरोगिरेरिव हृषीकेशात्कृती राघवो
यस्तिग्मद्युतिवद्दिवाकरमहावंशे दिदीपे द्विजः।

सूत्रधार—यह प्रबन्ध तो मिथिला का ही है।

नट—(सोचता हुआ) मित्र, मिथिला मे बहुत से महाकवि हुए हैं, उनमे—

संभव है विश्रुतकीर्ति शङ्करमिश्र की यह कृति हो?

सूत्रधार—नही, वे तो अतिप्राचीन तथा विश्वगुरु हैं।

नट—तब हो सकता है कि वह रुचिपति की रचना हो।

सूत्रधार—नही यह बात भी नहीं है, उनसे भी यह नवीन है।

नट—तब सभव है कि यह रामेश्वरमिश्र की रचना हो जिनको सरस्वती अपनी लीलाओ से रिझाती रही॥५॥

सूत्रधार—हाँ, ठीक है, परन्तु रामेश्वरमिश्र के वश मे होने के कारण उनके दौहित्र को अनुगृहीत करने एव चमत्कार दिखलाने वाली सरस्वती की ही यह कृपा है, साफ शब्दो में मैं कवि का नाम बता रहा हूँ। जैसे पूर्वाचल से प्रकट होकर भगवान् सूर्य दीप्त होते हैं उसी तरह हृषीकेश नामक पिता से

या लक्ष्मीरथ मैथिलादुदभवद्विद्यावदातात्मन-
स्ताभ्यामुद्भवमापतु कुशलवप्रख्यातगोत्रौ सुतौ ॥ ६ ॥

एषा तयो प्रथमजेन निजानुजात-
श्रीनीलकण्ठकविकण्ठविभूषणाय ।
गोविन्दसूनुगुणगुम्फनिबद्धसूक्ति-
मुक्तावली हरिहरेण चिरेण चीर्णा ॥ ७ ॥

अभिनयाय चास्मासु भरतेषु समर्पिता ।

नट —भाव तदहमवधारयामि, भरतकुलानुग्रहायैव कवेरयमभिनिवेश, पश्य—

परोपकाराय महाकवीना-
मेकत्र कुत्रापि वचोविलासा ।
रसान् समाहृत्य समर्पयन्तो
वृत्तिं चिराग्माधुकरीं चरन्ति ॥ ८ ॥

सूत्रधार —मारिष, कुत्रापीति किमुच्यते ? सङ्कर्षणो वासुदेव प्रद्युम्नोऽनिरुद्ध इति—

जन्म लेकर राघव नाम के पण्डित कर महावश मे दीप्त हुए और विद्वान् मैथिल से उत्पन्न हुई लक्ष्मी । इन्ही दोनो—राघव तथा लक्ष्मी के कुशलव-तुल्य दो पुत्र पैदा हुए ॥ ६ ॥

उन दोनो पुत्रो में ज्येष्ठ पुत्र हरिहर ने अपने अनुज नीलकण्ठ के पढन के लिये वासुदेवतनय प्रद्युम्न के गुणो से पूर्ण इस न टक रत्न की रचना की है ॥७॥

और अभिनयार्थ उन्होने अपनी कृति हमें दी है ।

नट—मित्र, मुझ लगता है कि भरतो पर कृपा करने के लिये ही कवि ने यह प्रयास किया है देखो —

परोपकार के लिये ही कविगण किसी पात्रविशेष को वर्णन का लक्ष्य बनाकर यत्रतत्र से रससञ्चय करते हुए मधुकरी वृत्ति का अवलम्बन करते हैं ॥ ८ ॥

सूत्रधार—मारिष, किसी पात्रविशेष मे—ऐसा क्यो कहते हो, सकर्षण,

ये चत्वार: प्राकृतैस्तैर्विकारैः
प्राग् ब्रह्माण्डाद् ब्रह्मखण्डा बभूवुः ।
ते खल्वेते वृष्णिवंशेऽवतीर्णा
दुःस्थामेतां स्थापयन्तो धरित्रीम् ॥ ९ ॥

तेन हि—

विदूरं वेदेभ्यो यदि यदुपु तद्धाम परमं
गिरान्नेदीयस्त्वं ननु तनुभिरेताभिरभजत् ।
परस्तादेतस्यास्तदनु चरितस्वर्गसरितः
कुतः स्रोतः सारस्वतमुचितवित् सङ्गमयतु ॥ १० ॥

अपि च—

वासुदेवप्रसादनमपि प्रयोजनमेतस्य, कुतः,

कवेः कथं मन्मथवर्णनाभि-
र्नाराधितः स्यादरविन्दनाभ ।
यतः स्वतोऽपि स्वतनूजपूजा
सन्तोषहेतुर्महतामुदीते ॥ ११ ॥

वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध यह चार ब्रह्मखण्ड प्राकृत विकारों के कारण ब्रह्म से प्रकट हुए, यह सभी यादव वंश मे अवतीर्ण होकर इस विपन्न पृथ्वी की रक्षा कर रहे हैं ॥ ९ ॥

जो ब्रह्म वाणी से परे अगम्य था, वही ब्रह्म यदुवंश मे इन रूपो मे अवतार लेकर वाणी के समीप आगया है, उसके आचरणरूप गङ्गा को छोड़कर, औचित्य का ज्ञाता कवि अपनी सरस्वती के प्रवाह को और कहाँ सङ्गम करने के लिये प्रेरित करे ॥ १० ॥

और—वासुदेव की आराधना भी इस वाणी का प्रयोजन है, क्योंकि—

कवि द्वारा किये गये कामदेव के वर्णनों से भगवान् कृष्ण कैसे नहीं प्रसन्न होंगे । अपनी पूजा से बढ़कर पुत्र का सत्कार लोगों के सन्तोष का कारण हुआ करता है ॥ ११ ॥

न केवलमेतावन्मात्रमपि यतः—

संख्यावद्भिः सकलजगतीजित्वरैर्दूरदृष्ट-
दर्पात् कष्टादधिकमधिकं तर्कमुत्थापयन्तः।
श्रान्ताः सार्द्धं किमपि कविना ये सतीर्थ्याः सुखार्थी
स्तेषामेषा शिशिरमधुरा भारती प्रादुरास ॥ १२ ॥

नटः—(सबहुमानम्) एवमेतत्। तत्सुखमनेन प्रबन्धेनाराधिता परिषत्।

सूत्रधारः—एवमेतत्, परन्तु—

यद्यप्येष विशेषवित्कवयिता शिक्षासु दक्षा वयं
नाट्ये शम्बरगर्वडम्बरहरो देवः स्मरो नायकः।
रङ्गेऽस्मिन्निपुणं तथापि भरतैरेतैरुपक्रम्यतां
यन्नाकामति दुर्जनस्य रसनारङ्गस्थली दुर्यशः ॥ १३ ॥

अपि च—

कविना निपुणं गिरां गरिम्णा
चरिते शम्बरवैरिणः प्रणीते।

इतनी ही बात नही है, क्योंकि—

सकल विश्वविजयी जो विद्वगण क्लेश कर के तर्क की उद्भावना करते-करते श्रान्त हो गया है, प्रकृत कवि के साथ वह सुख की कामना करता है उन्ही सवर्ग कवियो को यह शीतल मधुर कविता प्रकट हुई है ॥ १२ ॥

नट—(सादर) यही बात है। तब तो इस प्रबन्ध से परिषद् भलीभाति प्रसन्न होगी।

सूत्रधार—हाँ, ऐसी ही बात है, परन्तु—

यद्यपि इस नाटक के रचयिता कवि विशेषज्ञ हैं, हम सभी नाट्यकला प्रवीण हैं, नाटक के नायक भी शम्बर के गर्व को दूर करने वाले कामदेव हैं, फिर भी भरतगण अभिनय मे पूर्ण सतर्कता बरतें, जिससे दुर्जन की जीभरूप रङ्गस्थल मे दुर्यश न नाचने लगे ॥ १३ ॥

और—भरतगण वाणी की गरिमा को ध्यान में रख कर कवि द्वारा

भरताः कुरुताभियुक्तमन्तः
सुखमेतेन वशीभवन्तु सन्तः ॥ १४ ॥

नटः—भाव, सतां हि वशीकरणमिति न दुष्करं, यत.—

विरलोऽपि गुणो महत्त्वभाजां
विमले हृन्मुकुरेऽनुबिम्बमेति ।
निभृतेन तिरोभवन्त्यमीषां
गरिमप्रावदरीषु दूषणानि ॥ १५ ॥

किं पुनरिदानीं नाट्यारम्भसमयसमुचितमाचरणीयम् ।

सूत्रधार—मारिष,

सांसारिकेऽस्मिन् व्यापारे धावतोऽहर्निशं हृदः ।
संगीतभित्तिस्थगनान्न स्थिरीकरणं परम् ॥ १६ ॥

(स्थिरे चाधिकरणे स्थेमानमावहन्ति विन्यस्तानि वस्तूनि, तदादेशय गृहिणीं सङ्गीताय ।)

नटः—भाव, कं समयमाश्रित्य सम्प्रति सङ्गीतमुपक्रम्यताम् ।

निमित्त इस नाटक के अभिनय में पूर्ण सावधान होकर काम करें जिससे सज्जनगण अनायास वशीभूत हो जांय ॥ १४ ॥

नट—मित्र, सज्जनों को वश में करना कुछ कठिन कार्य नहीं है, क्योंकि—

महान् जनों के हृदयरूप दर्पण में अल्पमात्रा में वर्तमान गुण भी प्रतिबिम्बित होता है और उनके गौरव की दरी में सारे दोष चुपचाप छिप जाते हैं । १५ ॥

इस समय नाट्यारम्भ के उपयुक्त क्या करना चाहिये ।

सूत्रधार—मारिष,

इन सांसारिक व्यापारों में अहर्निश दौड़ते हुए हृदय को संगीत की भित्ति पर निश्चल करने के सिवा दूसरा कोई स्थिर करने का उपाय नहीं है ॥ १६ ॥

नट—मित्र, किस समय को आश्रित कर के सङ्गीत प्रारम्भ किया जाय ।

सूत्रधार—साम्प्रतिक शरत्समयमेव। इह हि—

धुनीते हंसालीं हरिदनुचरीचामरमित
सितच्छत्रं धत्ते शिशिरकरमाकाशपुरुष,
इयन्तारालाजान् किरति पुरवृद्धेव रजनी
जगज्जेतुं सज्जोभवति नियतं तन्मनसिज ॥ १७॥

नट—(सविमर्शम्) भाव, कथमारभ्यता सङ्गीतकम्?

सूत्रधार—कथमिव?

नट—भावत्केन हंसाख्यानेन स्मारितोऽस्मि यन्द्य कुमारप्रद्युम्नस्य क्रीडाकमलिनीखण्ड कुतश्चिदुपनिपतितानि राजहंसमिथुनानि दैवीं वाचमुद्गिरन्तीति नागरिकाख्यानमुपश्रुत्य कुतूहलोत्तरलचेतसो भरतकुलमौलिभूता भावभार्यां पुरस्कृत्य सकला शैलूषयोषितस्तत्रैव गता नाद्यापि निवर्त्तन्त इति।

सूत्रधार—आ, जानामि शुचिमुखीप्रधान निगूढसविधान हंसकुलमेतत्।

सूत्रधार—वर्तमान शरत् समय को ही इसमें—

दिशारूप दासी हंसमालास्वरूप चामर झल रही है, आकाशरूप पुरुष चन्द्रमास्वरूप उजले छत्र को पकडे हुआ है ग्रामवृद्धा स्त्री की तरह यह रात्रि तारास्वरूप लाजा बिखेर रही है ऐसा लगता है मानो कामनृपति जगत् जीतने को तैयार हो रहे हों॥ १७।

नट—(सोचकर) मित्र कैसे सङ्गीत प्रारम्भ करें?

सूत्रधार—क्यों?

आपके हंसाख्यान से मुझे स्मरण हो आया है कि आज कुमार प्रद्युम्न के क्रीडाकमलवन मे कहीं से उतरे हुए हंस के जोडे देववाणी बोलते हैं, नागरिको की इस बात को सुन कर उत्कण्ठित होने वाली समस्त भरतनारियाँ भरताङ्गनाप्रधान आपकी पत्नी को आगे करके वहीं चली गई हैं। व अब तक वहाँ से नहीं लौट सकी हैं।

सूत्रधार—अहा, समझ गया यह वही शुचिमुखी प्रभृति हंसों का समुदाय है जो कुछ रहस्यमय कार्य में लगा है।

नट —(सकौतुकम्) भाव, भिन्नार्थमिदमाकर्णयितुमुत्कण्ठितोऽस्मि।

सूत्रधारः—श्रूयताम्, दिव्यहंसाः खल्वेते, प्रभवति चैतेषु प्रगल्भा विदग्धहंसी शुचिमुखी।

वज्रनाभस्य नगरात्सेयं द्वारवतीमिमाम्।
प्रेम्णा घटयितुं प्राप्ता प्रद्युम्नेन प्रभावतीम्॥ १८॥

(नेपथ्ये—सक्रोधम्)

आः शैलूषवर्वर, सर्वलोकसर्वस्वभूत रहस्यमिदमुद्घाट्य व्याहरन्न बिभेषि?

सूत्रधार —(आकर्ण्य सापराधमिव) अये, कथमयमस्माकं कुशीलवानां कुलमणिर्मुनिदत्तवरस्तत्रभवान् भद्रो देवप्रणिधिर्देवनीतिमुद्घाटितामाकर्ण्य क्रुद्धयति, तदेहि सम्प्रत्येतस्य दर्शनपथादपसराव। (इति निष्क्रान्तौ)

प्रस्तावना

नट—(कौतुक के साथ) मित्र, आप अपने कथन का थोड़ा अर्थ स्पष्ट कीजिये, मैं उत्कण्ठित हो रहा हूँ।

सूत्रधार—सुनिये, ये स्वर्गीय हंस हैं और इनका प्रधान है शुचिमुखी नाम की विदुषी तथा प्रौढ़ा हंसी।

यह वज्रनाभ की नगरी से द्वारकापुरी इसीलिये आई है कि वह प्रभावती के साथ प्रद्युम्न का प्रेम सबन्ध स्थापित कर सके॥ १८॥

(नेपथ्य में—सक्रोध)

अरे नटाधम, समस्त संसार का यह सर्वस्व स्वरूप रहस्य है, इसको साफ-साफ कहते हुए तुमको भय नहीं हो रहा है?

सूत्रधार—(सुनकर सापराध की तरह) अरे, क्या यह हम कुशीलवों के कुलश्रेष्ठ, नारद द्वारा वर-प्रदान से सम्मानित, देवों के गुप्तचर भद्र हैं जो देवनीति को उद्घाटित होते सुन कर कुपित हो रहे हैं, अच्छा चलो, अभी इनकी दृष्टि से अलग हो चलें। (जाते हैं)

प्रस्तावना समाप्त

(ततः प्रविशति भद्रः)

भद्र — (आ शैलूषेत्यादि पठित्वा संवरणमभिनीय) अस्तु वा निषेधमुखेनापि नायमर्थः प्रसञ्जनीयः । इदन्तु चिन्तयामि—

त्रासोत्कम्पितमत्सुरासुरशिरोरत्नाङ्कुरोद्घर्षण-
प्रोद्यत्पीठमणिप्रभाजलवलत्पादारविन्दो हरि ।
गीर्वाणान् परिभूय भूयसि मुहुर्मामादरे स्थापयन्
यस्मिन्नादिशतिस्म कर्मणि कथं स्यामस्य पारङ्गमः ॥ १६ ॥

अथवा – अगणितगरिमाणो हि ते कार्यमर्यादायाः पारतन्त्र्येण परेषु प्रवर्त्तमानाः प्राकृतमपि पुरुषं परां कोटिमारोहयन्ति, तथाहि—

कृतिमत्तामपटोरपि घटयति तेजस्विनां पुरस्कारः ।
हरति हरितामनूरुर्जगतीत्रयजाङ्घिकानि तिमिराणि ॥ २० ॥

(भद्र का प्रवेश)

भद्र—(आ शैलूषापसद, इत्यादि पढ कर फिर बन्द कर देने के अभिनय में) अथवा इस बात को निषेध करने को मुद्रा मे भी नही प्रकाशित करना है, मैं सोचता हूँ—

भय से कांपते हुए देवदानवगण के मस्तक मणि के सङ्घर्षण से जिनका पादपीठगत मणि घिसता रहता है और उसी के कारण दीप्त मणिप्रभा से जिनका चरणारविन्द प्रक्षालित होता रहता है, ऐसे हरि ने समस्त देवगण को छोड़कर मुझे जिस आदर का पात्र बनाया तथा गुरुतर कार्य मे नियुक्त किया है, मैं उस कार्य को किस प्रकार पूरा कर सकूंगा ॥ १९ ॥

अथवा उनकी महिमा अपरम्पार है, वह कार्य की महत्ता को ध्यान मे नही रख कर ही दूसरों को आदेश दे दिया करते हैं और इस प्रकार से साधारण जन को भी ऊंचा गौरव प्रदान करते हैं। जैसे—साधारण जन को भी जब तेजस्वी पुरुष गुरुतर कार्य मे नियुक्त करते हैं तब उसकी चतुरता निखर आती है, सूर्य द्वारा नियुक्त होने से ही तो अनूरु लोकत्रय मे व्याप्त तम को दूर करने मे समर्थ हो पाता है ॥ २० ॥

अपि च—

देवो द्वारवतीपतिर्वितनुते सत्कारमाराधितः
सर्वः सोदरभावमादरपरः शाम्बादिरालम्बते ।
प्रद्युम्नः परमेष यन्मयि पुनः प्राणादपि प्रीयते
तज्जानामि जयन्ति जृम्भितफलाग्रम्भारिसम्भावनाः ॥ २१ ॥

अथ च नैतावदपि निरभिसन्धि, यथा—

दूरादानकदुन्दुभेरुपगतास्तत्राश्वमेधाध्वरे
सम्भाव्याभिनयेषु तेषु मुनयस्ते ते मयोपासिताः ।
तादृक्तैरयमर्पितो मयि वर. स्वच्छन्दसञ्चारिणो
येनैतत् सचराचरं जगदपि व्यामोहयामो वयम् ॥ २२ ॥

(अग्रतोऽवलोक्य । साश्चर्यम्) कथमयं पुरुहूतदूतः सारणः,

(प्रविश्य)

सारणः—(सानन्दम्) परिस्सजम्ह पिअवअस्स । (परिष्वजामहे प्रिय वयस्यम्) । (इति परस्परमालिङ्गतः)

और—द्वारकाधीश मेरे द्वारा आराधित होकर मेरा सत्कार करते हैं, शाम्ब आदि आदर के साथ सोदर की तरह मानते हैं, यह प्रद्युम्न तो मुझ पर प्राणों से भी बढ़कर प्रेम करता है, इन सभी घटनाओं से मुझे ज्ञात होता है कि यह सब इन्द्र के द्वारा किये गये मेरे आदर का ही परिणाम है ॥ २१ ॥

और यह भी बिना गुप्त रहस्य के नहीं है, जैसे—यदुराज के अश्वमेध यज्ञ में दूर दूर के मुनिगण आये हुए थे, मैंने नाटक के अभिनय द्वारा उन्हें आराधित किया था, उन लोगों ने प्रसन्न होकर मुझे कुछ ऐसा वरदान दिया है जिससे मैं स्वच्छन्दचारी होकर चराचर जगत् को मोहित करता हूँ ॥ २२ ॥

(आगे की ओर देखकर) (आश्चर्य के साथ) क्या यह इन्द्र के दूत सारण हैं ।

(प्रवेश करके)

सारण—(सानन्द) प्रिय मित्र, आओ हम गले से लगें ।

(परस्पर आलिङ्गन करते हैं)

भद्र—वयस्य, कुशल देवराजस्य।

सारण—(सनि श्वासम्) कुदो कुसल जावदावि सा वेरिणो ण पराहुवीअन्ति। (कुत कुशलं यावतार्ऽपि ते वैरिणो न पराभूयन्ते)

भद्र—(सोद्वेगम्)कि किमप्यद्यतनमत्याहितम्।

सारण—अहइ। (अथकिम्)

भद्र—सविशेषमभिधीयताम्।

सारण—सुणादु वअस्सो, सो क्खु परक्कमावलेअ-पज्जलन्त-रोस-वेसाणरो वज्जणाहो सुणाहाधिट्ठिअदुच्चासुरसेण्णसहाओ झत्ति आअच्छिअ अमरावदीए दुआरप्पमुहे ज्जेव णिवेसिअ खन्धावारो आसि। (शृणोतु वयस्य, स खलु पराक्रमावलेपप्रज्वलद्रोषवैश्वानरो वज्रनाभ. सुनाभाधिष्ठितोच्चासुरसैन्यसहायो झटित्यागत्य अमरावत्या द्वारप्रमुखे एव निवेशितस्कन्धावार आसीत्।)

भद्र—आ शक्ति, अमरावतीमप्यवरुरोध दानवः, अथवा—किमाश्चर्यम्,

प्राक् पर्याप्ततपश्चर्यावशीकृतविरश्चिना।

भद्र—मित्र, देवराज तो सकुशल हैं।

सारण—(निश्वास छोड कर) तबतक कुशल कहाँ जबतक इन वैरियो का पराभव नही होता है।

भद्र—(उद्विग्नतापूर्वक) आज की कोई नई बात क्या है ?

सारण—और क्या ?

भद्र—स्पष्ट करके बताओ।

सारण—सुनो मित्र, पराक्रम के गर्व से रोष वह्नि को प्रज्वलित करता हुआ वह वज्रनाभ सुनाभ के आधिपत्य मे असुरसैन्य का सङ्गठन करके शीघ्र आकर अमरावती के द्वार पर सैन्यसंनिवश करके उपस्थित हो गया।

भद्र—कितनी बडी शक्ति है, उस दानव ने अमरावती को ही घेर लिया। इसमे क्या आश्चर्य है ?

पूर्वकाल मे वज्रनाभ ने प्रचुर तपस्या द्वारा ब्रह्मा को वश मे करके द्वेष

दीर्घद्वेषभृता तेन वृता देवैरवध्यता ॥ २३ ॥

ततस्ततः ।

सारण—तदो तेण तक्खणमणुप्पेसिदो समग्गासुरवग्गाणं गुरु भअवं भग्गवो सुरणाहसमीवं समागच्छिअ गव्वणिब्भरक्खराक्खेव महाराअवज्जणाहो वाहरदित्ति। (ततस्तेन तत्क्षणमनुप्रेषित समग्रासुरवर्गाणां गुरुर्भगवान् भार्गव. सुरनाथसमीपं समागत्य गर्वनिर्भराक्षराक्षेप महाराजवज्रनाभो व्याहरतीति ।)

मित्र—

पूर्णा दिङ्नागरत्नाकरकनकमणिप्रायरत्नैस्त्रिलोकी
पित्र्यं नः काश्यपानां स्वमिति समतया संविभज्योपभोग्या ।
तत्ते यावन्ति यातान्यमरपरिवृढस्वर्गमर्या युगानि
व्यावल्गत्खड्गमस्मद्भुजभुजगपतिस्तावदेनां प्रशास्तु ॥ २४ ॥

किं बहुना—

उर्वी दुर्वारदैत्याक्रमणपरवशा दुर्दशां यात यूयं
स्वर्लोकेऽस्मत्प्रतापप्रतिनवतरणि प्रज्वलन्नाविरस्तु ।

वश उनसे वरदान ले लिया है कि वह देवों से वध्य नहीं होगा ॥ २३ ॥

इसके बाद क्या हुआ ?

सारण—इसके बाद उसने तत्काल समस्त दानवों के गुरु शुक्र को इन्द्र के पास भेजा, शुक्र ने आकर गर्व तथा अपमान के व्यञ्जक शब्दों में वज्रनाभ का संदेश कहा—

मित्र,

यह दिग्गजों, सागरों, स्वर्णों और मणियों से पूर्ण पृथ्वी हम लोगों की बपौती सम्पत्ति है, उचित है हम काश्यप की सन्तानें उसका समभाग करके उपभोग करें। अतः, देवराज, आपने जितने दिनों तक स्वर्ग का उपभोग किया है उतने दिनों तक अब यह हमारा वज्ररूप सर्पराज से युक्त बाहु उसका भोग करेगा ॥ २४ ॥

अधिक क्या ? दुर्धर्ष दैत्यों के आक्रमण से परवश होकर आप लोग पृथ्वी पर चले जाँय, और स्वर्ग में हमारे प्रतापरूप सूर्य की प्रखर किरणें प्रकट हों।

नो चेद् दम्भोलिदम्भज्वरमुपचरतु त्वद्भुजस्तम्भभाजं
त्वत्सेवाविघ्नदेवासुरसमरचरो निष्कृपो न कृपाणः ॥ २५ ॥

एत्तिअ भणिअ तुण्हिक्को आसि। (एतावद् भणित्वा तूष्णीक आसीत्।)

भद्रः—अहो दुरवलेपो दैत्यहतकस्य! अहो दुर्विनयगर्भता भार्गवगिराम्! अहो प्रमादः प्रसीदतः परमेष्ठिनः!। ततः परमभिधीयतां किं प्रतिपन्नममरावतीपतिना।

सारणः—तदो तक्काल पज्जलन्त कोहकालाणलजालाहिं विअ णिस्सरन्तीहिं आरत्तीकिदलोअणसहस्स पुणो पुणो भीसण कुलिस-प्फालिअकरअल महेन्द चिन्ता-णिसण्णहिअअ अ देव्वपरिसद चित्तलिहिअ विअ पलोइअ देव्वाण उअज्झाओ बिहप्पई झत्ति उट्ठिअ महेन्द मुत्तरिअञ्चले घेत्तूण सुधम्माए बाहिर मन्तिदु ओसरिओ। (ततस्तत्कालप्रज्वलत्कोधकालानलज्वालाभिरिव निःसरन्तीभिरारक्तीकृतलोचनसहस्रं पुनः पुनर्भीषणकुलिशस्फालितकरतलं महेन्द्रं चिन्तानिषण्णहृदयां च देवपरिषदं चित्रलिखितामिवावलोक्य देवानामुपाध्यायो बृहस्पतिर्झटिति उत्थाय महेन्द्रमुत्तरीयाञ्चले गृहीत्वा सुधर्माया बहिर्मन्त्रयितुमपसृतः)।

भद्रः—युक्तमेतत्, ततस्ततः।

अगर आप ऐसा नही करते तो देवासुरसग्राम विहारी हमारा यह निर्दय कृपाण आपके दम्भरूप ज्वर का उपचार करने को प्रस्तुत हो जायगा ॥ २५ ॥

इतना कहकर शुक महाराज चुप हो गये।

भद्र—*दैत्याधम का गर्व आश्चर्यकर है, और शुक की वाणी भी अविनय* से भरी हुई है। इसके बाद इन्द्र ने क्या किया, यह बताइये।

सारण—इसके बाद बृहस्पति ने देखा कि तत्काल प्रज्वलित कोपरूप कालानल की ज्वाला सी उगलती हुई इन्द्र की आँखें लाल हो रही हैं, और वह बारबार करगत वज्र का स्पर्श कर रहे हैं, इधर देवगण चिन्ता मे मग्नहृदय हो रहे हैं, वह शीघ्र उठ गये और इन्द्र को चादर की छोर पकड कर देवसभा से बाहर मन्त्रणा के लिये बुला लाये।

भद्र—यह तो ठीक किया। इसके बाद ?

सारणः—तदो विव्वुढाए मन्तणाए आअच्छिअ देव्वगुरुणा आअ- ण्णिदं, जुत्तं ज्जेव वज्जणाहो वाहरदि, करीअदि ज्जेव एव्व जइ पिदरो उवरदा होन्ति जमन्तीअदि—(ततो निर्व्यूढायां मन्त्रणायामागत्य देवगुरुणा भणितं युक्तमेव वज्रनाभो व्याहरति, क्रियत एव यदि पितरौ उपरतौ भवतः, यन्मन्यते—)

पितर्युपरते पुत्रा विभजेयुर्यथायथम् ।
जीवन्पुनः स एव स्यात् स्वेच्छया विभजेत्सुतान् ॥ २६ ॥

इतत्थ भरद्दोअस्सरस्सज्जेव सआसं गच्छध, सो जं आणवेदि तं ज्जेव अम्हाणं पमाणन्ति । (इतः भरद्वाजसरस एव सकाशं गच्छत, स यदाज्ञापयति तदेवास्माकं प्रमाणम् इति ।)

भद्रः—साधु, मन्त्रिमहत्तरगीर्वाणगुरो, साधु, यतः—

अनधीतप्रतीकारे शिरोवर्तिनि वैरिणि ।
समयं क्षिपता क्षिप्ताः पुरुषेण विपत्तयः ॥ २७ ॥

ततस्ततः,

सारणः—तदो सुक्कोदीरिद वक्कोवण्णास उज्जुअं वुज्झिअ अत्तणो

सारण—इसके उपरान्त मन्त्रणा करने के बाद देवगुरु आये और उन्होंने कहा कि वज्रनाभ का कथन ठीक है, ऐसा ही किया जायगा यदि पिता का देहान्त हो जाय, जैसा कि कहा गया है :—पिता की मृत्यु के बाद पुत्र उसकी सारी सम्पत्ति बाँट लें, परन्तु जीवितावस्था में पिता ही अपनी इच्छानुसार विभाग कर दे ॥ २६ ॥

अतः आप लोग भरद्वाज सरोवर के पास चले जाइये, वरुण महाराज की जैसी आज्ञा होगी वह हम लोगों को मान्य होगी ।

भद्र—साधु, मन्त्रिश्रेष्ठ बृहस्पति, साधु । जिसका कोई प्रतीकार नहीं हो ऐसा दुश्मन जब सिर पर चढ़ बैठे, तब जो पुरुष समय टाल जाता है वह विपत्ति को पार कर जाता है ॥ २७ ॥

इसके बाद क्या हुआ ?

सारण—इसके बाद गुरु ने आकर सारी कथा सुनाई जिसमें कुटिलता के

उअरि पिदुलो अणुउलतुण मण्णमाण महासुरसेण्ण सणाह वज्जणाह पुरोक्दुअ भअवदो मारीअस्स सआस गदो। (तत शुक्रोदीरित वक्रोपयाम ऋजुर्क बुद्वा आत्मन उपरि पितु अनुकूलत्व मन्यमान महासुरसैन्यसनाथं वज्र नाभ पुरस्कृत्य भगवतो मरीचे सकाश गत ।)

भद्र—ततस्तत ।

सारण—तदो ताण सुरलोअलुद्धाण ताइ ताइ विण्णविआइ आअण्णिअ भअवदा मारीएण चिन्तिउण भणिअ अम्ह एतस्सिं अद्धावसिठ्ठे वारहवारसिए सत्ते समत्ते तुम्हे अप्पत्तमणोरहा ण चिठिठस्सध त्ति वज्ज णाहो वि पिन्र पमाणीक्दुअ परावुत्तो वज्जउर। (ततस्तेषा सुरलोकलुब्धाना तानि तानि विज्ञपितानि आकर्ण्य भगवता मरीचिना चिन्तयित्वा भणितम्—अस्मिन्नर्धावशिष्टे द्वादशवार्षिके सत्रे समाप्ते यूयम् अप्राप्तमनोरथा न स्थास्यथ इति वज्रनाभोऽपि पितर प्रमाणीकृत्य परावृत्तो वज्रपुरम्।)

भद्र—साधु साधु, यूयमप्राप्तमनोरथा न स्थास्यथेति विशिष्टाभार उभयथाऽप्युपपन्न, अथवा—नाद्यतन सहस्राक्षपक्षपातो दाक्षायणीनायकस्य तन्नाप्त कालो व्यवसायस्य। त्व पुन किंनिमित्तमत्रागत ।

साथ सरलता मिली हुई थी वज्रनाभ ने समझा कि पिताजी मेरे अनुकूल हैं ही अत वह बडी सी सेना को साथ लेकर आगे आगे चला देवगण भी साथ हो लिये।

भद्र—इसके बाद ?

सारण—उन स्वर्गलोलुपों की सारी बातें सुन कर भगवान् मरीचि ने कहा कि हमारे इस अर्धावशिष्ट द्वादश वर्षों में समाप्य यज्ञ के समाप्त होने पर तुमलोग अपूर्ण मनोरथ नहीं रह जाओगे। वज्रनाभ ने भी पिता की वाणी को प्रमाण मान लिया और वह अपने नगर को लौट गया

भद्र—साधु साधु। आप लोग अप्राप्त मनोरथ नही रह जायेंगे इसमे दोनो तरह से नजय ठीक बैठता है अथवा—भगवान् मरीचि आज से ही इन्द्र का पक्षपात नही करने लगे हैं उद्योग करने का समय मिल गया। यह तो कहो कि तुम यहा क्या करने आये थे ?

सारण.—मए इध आअच्छिअ एसो महेन्दसन्देसो वासुदेवगोअरीकदो (*मया इत आगत्य एष महेन्द्रसन्देशो वासुदेवगोचरीकृतः ।*) (इति कर्णे कथयति)

भद्रः—कथमङ्गीकृतमेतद् भगवता ।

सारणः—अध इं । (अथ किम् ।)

भद्र —(सानन्दम्) तर्हि सर्वतोमुखी सम्प्रति देवदण्डनीतिः ।

सारणः—तुम्हे उण किंवावारा । (त्वं पुनः किंव्यापारः ?)

भद्रः—(*समन्तादवलोक्य*) *विजन एवायं प्रदेशः, श्रूयतां ये ननु ते दिव्य*-हंसा भगवता महेन्द्रेण—

> काश्यपा यूयमस्माकं बन्धवो यद्यपि स्तिन ।
> वज्रनाभपुरं प्राप्ताः साधु साधयतेप्सितम् ॥ २८ ॥

इत्येवमादिष्टाः ।

ते हि विचित्रवयसो विहङ्गमा इति वज्रपुरे प्राप्तप्रवेशाः प्रभावत्याः सखीभावे शुचिमुखीमारोप्य दनुजराजान्तःपुरदीर्घिकायामेव दीर्घकालमुषिताः ।

सारण— मैंने यहाँ आकर इन्द्र का सन्देश वासुदेव के पास पहुंचाया है ।

(कान में कहता है)

भद्र—क्या वासुदेव ने यह स्वीकार कर लिया ।

सारण— और क्या ?

भद्र—(सानन्द) तब तो देवों की दण्डनीति सब ओर से चल रही है ।

सारण— तुम क्या कर रहे हो ?

भद्र – (चारों ओर देखकर) यह स्थान तो निर्जन है । सुनिये – महेन्द्र ने जिन हंसों को यह कहा था –

हंसो, तुम भी काश्यप होने से हमारे भाई हो, अतः तुम लोग वज्रनाभ की नगरी में जाकर हमारा कार्य करो ॥ २८ ॥

वे नाना तरह की बोली वाले हंस हैं अतः उनका वज्रनाभपुर में प्रवेश सुलभ हो गया, उन्होंने अपने दल की हंसी शुचिमुखी को प्रभावती की सखी बना दिया, और वे दानवराज के अन्तःपुर में चिरकाल तक रह गये ।

सारणः—अह इं सुइमुहीए ववसिदं। (अथ किं शुचिमुख्या व्यवसितम् ?)

भद्रः—तया हि पुरस्तात् त्रिभुवनकथाकर्णनकुतूहलिनीषु प्रभावती-प्रमुखासु दनुजकन्यकासु भारतवर्षोपवर्णनप्रसङ्गेन द्वारवतीप्रस्तावे वृष्णिवंशवर्णनायामनुवर्तिता यथावन्मन्मथावतारः कुमारः प्रद्युम्नः। अथैकदा रहसि प्रियसखीभावेन तासु तासु प्रणयगर्भिता सुप्रवृत्तासु वार्त्तासु—

किमपि तरुणिमा तवाविरास्ते
तरुणि तनौ रमणीयतानुरूपः।
इह गहनतरः स्मरादुदीते
प्रतिपदलब्धभयोऽदयोऽभियोग ॥ २९ ॥

तेन हि—

कति कति न कुलेषु जन्मभाजो
जगति जयन्ति गुणोज्ज्वला युवानः।
स्मरपरवशतामुपेत्य कस्मि-
न्नपि करभोरु, कुरु प्रसन्नमन्तः ॥ ३० ॥

सारण—और शुचिमुखी ने क्या किया ?

भद्र—शुचिमुखी ने पहले त्रिभुवनकथा-श्रवणोत्सुक दनुजकन्याओं के आगे भारतवर्ष के वर्णनक्रम मे द्वारवती-प्रसङ्ग मे मन्मथावतार कुमार प्रद्युम्न की अवतारणा की। फिर एक समय एकान्त मे नानाविध प्रणयकथा के सिलसिले में उसने प्रभावती से कहा—

हे तरुणि, तुम्हारी देह मे सौन्दर्य के अनुरूप यौवन का उदय हो रहा है, इस अवस्था मे पगपग पर भय उत्पन्न करनेवाला काम का आक्रमण हुआ करता है ॥ २९ ॥

इसलिये—

अच्छे-अच्छे वंशो मे बहुत से गुणवान् युवकों ने जन्म लिया है, तुम काम-परवश होकर उन्हीं मे से किसी युवक पर अपना अन्तःकरण प्रसन्न कर दो ॥ ३० ॥

इत्याख्यातवत्यां शुचिमुख्यामुन्मुक्तहृदयग्रन्थिः प्रभावती–प्रियसखि, यदि प्रथमं सर्वथैव मन्मथपराधीनता पुरन्ध्रीणान्तर्हि पुरुषान्तरप्रसङ्गे सत्यभङ्गः इत्युपहसितवती ।

सारण—(सकौतुकम्) साहु उवक्कमो, तदो तदो । (साधूपक्रमः । ततस्ततः ?)

भद्र—ततश्च शुचिमुखी सोत्प्रासहासं प्राह, आः,

तन्निर्णीतं भवति भवती रौक्मिणेयानुरक्ता
व्यक्तानुकाप्यतिचिरमियं चोरिता चित्तवृत्तिः ।
किं त्वेतस्मिन्नहह गहने त्वामहं नानुमन्ये
पुण्येनास्मिन्नपि जयिनी जायसे वा न वेति ॥ २१ ॥

इत्युपक्रमेण सा विदग्धदूती पौरन्दरीमन्तर्निगूढां प्रीतिमुज्जीवयन्ती तथा तथा व्यवसितवती यथा हि सम्प्रति—

ध्वनति मधुरमस्याः कोकिले कर्णबाधा
समुदयति सुधांशौ शोणता लोचनस्य ।

शुचिमुखी ने जब इस प्रकार कहा तब प्रभावती के हृदय की गाँठ खुल गई, उसने कहा कि हे प्रियसखि, यदि स्त्रियाँ नियमपूर्वक पहले कामपराधीन हुआ करती हैं तब यदि उनका दूसरे पुरुष पर अनुराग होगा तब तो सतीत्व-भङ्ग होगा, ऐसा कह कर हँस दिया ।

सारण—(कौतुक से) उपक्रम तो बड़ा अच्छा है, इसके बाद क्या हुआ ?

भद्र—इसके बाद शुचिमुखी ने हँसकर कहा—ओ, मैं समझ गई, तुम प्रद्युम्न पर अनुरक्त हो, तुमने आज तक अपनी मनोदशा को गुप्त रखा था, वह व्यक्त हो गई, परन्तु मैं तुम्हें इस गहन कार्य में अग्रसर होने की राय नहीं दे सकूँगी, हो सकता है अपने प्राक्तनपुण्यों के बल पर तुम इसमें सफल हो जाओ यह भी संभव है कि न भी सफल होओ ॥ २१ ॥

इस प्रकार उस चतुर दूती ने इन्द्र की गूढ़प्रीति को उज्जीवित करते हुए ऐसा प्रयत्न किया कि अब, कोयल की मधुर आवाज से उसके कान बाधा का

अपि हृदयनिदाघोद्दाहमेवार्प्यमाणः
प्रगुणयति मृणालस्यूतशैवालजालः ॥ ३२ ॥

ततः पुनरद्यैव ते विहङ्गमाः समागताः सन्ति ।

सारणः—(सानुशयम्) वअस्स किंति उण एत्तिओ पवन्धो पसारिअदि । उज्जुअं ज्जेव किण्णपज्जुण्णो वज्जणाहस्स णिग्गहे णिउज्जीअदि । (वयस्य, किमिति पुनरेतावान् प्रबन्धः प्रसार्यते, ऋजुकमेव किन्न प्रद्युम्नो वज्रनाभस्य निग्रहे नियुज्यते ।)

भद्रः—विमूढोसि, न खल्वेवमेवाक्रम्यते वज्रपुरम् ।

सारणः—तदो किं ? (ततः किम् ?)

भद्रः—

वीरवर्त्मविधुरेण केनचित्
कैतवेन दनुपुङ्गपत्तनम् ।
कः प्रवेशयतु केशवात्मजं
स्मारमोहनमहास्त्रमन्तरा ॥ ३३ ॥

तदेहि यावत्कुमारागारमुपगत्यावगच्छामि शुचिमुख्या विलिख्यार्पिते

अनुभव करते हैं, चन्द्रमा के उदित होते ही उसके नयन लाल हो उठते हैं, मृणाल मे गुंथे हुए शैवाल भी उसके शरीर पर डाले जाने पर हृदयदाह ही उत्पन्न करते हैं ॥ ३२ ॥

वहाँ से वे पक्षी आज यहाँ आए हुए हैं।

सारण—(पश्चात्ताप के साथ) मित्र, इतना प्रबन्ध क्यो किया जा रहा है, सीधे सीधे प्रद्युम्न को वज्रनाभ के ऊपर आक्रमण करने को क्यो नही कह दिया जाता है ?

भद्र—तुम मूर्ख हो, वज्रपुर पर यों ही आक्रमण नहीं किया जा सकता है।

सारण—तब फिर क्या होगा ?

भद्र—वीरजन विरुद्ध किसी प्रकार के छल से कुमार प्रद्युम्न को वज्रपुर में कन्दर्प मोहन मन्त्र के अतिरिक्त कौन प्रविष्ट करा सकता है ॥ ३३ ॥

अत आओ, कुमार के आवास में चलकर पता लगावें कि शुचिमुखी द्वारा

सारण —एवमेवेदम् । (एव न्विदम् ।)

भट्ट —(निरूप्य) अहो दुर्निवारता कामकार्मुकप्रहारस्य, यत्प्रहर्त्तारमपि लक्ष्यीकरोति । तथाहि—

अन्तश्छिन्नावतारं कथयति वितथम्मारिताम्मेरनेत्रं
स्फारयन्ति श्वासमालामलिनितदशनोद्द्योतमेतस्य वक्त्रम् ।
किञ्च स्मार विकारं विदलितकदलीगर्भकाण्डातिपाण्डु
ब्रूते बाधासमाधाविकलमविरलोत्कम्पलोल कपोल । ३५ ॥

अपि चास्य—

अनाकलितनीरसं किमपि मन्दमालोकितं
पर विधुरिताधर श्वसितमुद्धुरं सर्पति ।
पुन पुनरुदीरिते प्रतिपदं पुरोगामिना
चिरेण चरणार्पणे भवति वा नवोपक्रम ॥ ३६ ॥

(प्रत्यक्षवदाकाशे लक्ष्य बद्ध्वा)

विजितजगतीयोषिद्रत्नं त्वमेव जगत्त्रये
किमपि वचसा पारे पुण्य प्रभावति तावकम् ।

सारण—यही बात है ।

भट्ट—(देखकर) आश्चर्य कामबाणो की दुर्निवारता पर जो प्रहार करने वाले को भी अपना लक्ष्य बनाते हैं क्योंकि—व्यर्थ फैली हुई आख बता रही है कि भीतर चि ता प्रवश कर गई है बढी हुई साथ से इसके मु ह की कान्ति मलिन कर दी गई है कटे हुए कदली काण्ड की तरह पाण्डु तथा कम्पमान इसके कपोल बताते हैं कि बाधा का समाधान नही हो पा रहा है ॥ २५ ॥

और इसका—

अस्पष्ट नीरस देखना है, अधर क मलिन बनानवाला श्वास है, बारबार कहने पर आगे चलन पर भी यह आगे की ओर कभी पैर उठाता कभी न भी उठाता है ॥ ३६ ॥

(प्रत्यक्ष की तरह आकाश की ओर देखकर) हे प्रभावति समस्त ससार की रमणीरत्नो को पराजित करनेवाली स्त्री तुमही हो, तुम्हारा पुण्य वाणी

नवजलधरस्निग्धश्यामं वपुर्लवलीफलं
तुलयितुमलं जातं यस्याः कृते नु मनोभुवः ॥ ३७ ॥

तत्सखे सारण, सुधर्मामुपगत्य देवराजगोचरीक्रियतामेतावान् वृत्तान्तः।

सारण.—जं वअस्सो वाहरदि त्ति। (निष्क्रान्तः) (यद् वयस्यो व्याहरति।)

भद्र—अहमित प्रमदवनं प्रविशतः कुमारस्य समीपमुपसरामि।

(इति परिक्रामति)

(तत. प्रविशति प्रतीहारेणोपदिश्यमानमार्गो यथानिर्दिष्ट कुमारः प्रद्युम्नः)

कुमारः—(सचिन्तम्) निर्विवेकतानुरागस्य. यतः—

किं जातु वज्रनगरेऽप्यपरे विशन्ति
दूरे सरोरुहदृशः प्रणयप्रसङ्गः।

से परे है, क्योंकि कामदेव ने भी तुम्हारे लिये अपने नवजलधर-श्याम शरीर को लवलीफल की तरह पाण्डुवर्ण कर रखा है ॥ ३७ ॥

अत सखे सारण देवसभा मे जाकर यहा तक के समाचार से देवराज को अवगत करा दो।

सारण—मित्रवर की जैसी आज्ञा। (जाता है)

भद्र—मैं यहाँ से प्रमदवन मे प्रवेश करते हुए कुमार प्रद्युम्न के पास चलता हूँ।

(आगे चलता है)

(प्रतीहार द्वारा निर्दिश्यमान-मार्ग कुमार प्रद्युम्न
का यथानिर्दिष्ट रूप मे प्रवेश)

कुमार—(सचिन्तभाव से) प्रेम कितना निर्विवेक होता है? क्योंकि—
क्या वज्रपुर मे दूसरे लोग पैठ सकते हैं? फिर कमलनयनी प्रभावती के

वाञ्छामि तामहमथापि मनोरथानां
पन्थाः प्रसर्पति समे विषमे समानः ॥ ३८ ॥

(इति परिक्रामति)

कुमार —(उपविश्य) गान्धारि, चित्रं चित्रम् ।

प्रतीहारी—(चित्रमुपनीय दर्शयति)

कुमारः—(विलोक्य)

ध्वान्तश्यामलकान्तकुन्तलचयं स्फीतायताक्षिद्वयं
शोणस्निग्धतराधरं भुजलतालीलादलीयत्करम् ।
उत्तुङ्गस्तनमुग्धमध्यमुदितश्रोणीकमूरुद्वयी-
रम्भाबद्धसरोजसुन्दरपदं निर्माणमेणीदृशः ॥ ३९ ॥

(चिरञ्च निर्वर्ण्य)

नियतमिह तनीयः नास्ति मध्यो यदत्र
स्मरलिखितमिवैषा रोमलेखा प्रमाणम् ।
स्फुटमथ विरुणद्धि स्फीतकान्तेः समीप
स्थित चिकुरतमस्त्वं चन्द्रमसस्त्वं मुखस्य ॥ ४० ॥

प्रणय की बात कैसी ? ऐसी स्थिति मे भी मैं उसे चाहता हूँ। मनोरथ का मार्ग सम तथा विषम मे समान नही हुआ करता है ॥ ३८ ॥

(आगे चलता है)

कुमार—(बैठकर) गान्धारी चित्र दो चित्र ।

प्रतीहारी— (चित्र लाकर दिखलाती है)

कुमार—(देखकर) इस सुन्दरी का निर्माण अति विलक्षण है, अन्धकार-सदृश श्यामल रमणीय इसके बाल हैं, लाल लाल ओठ हैं, बाहुरूप लता के पत्र सदृश हाथ हैं, ऊँचे स्तन से रमणीय मध्य, जङ्घारूप कदली स्तम्भ मे लग्न कमल सदृश पैर हैं ॥ ३९ ॥

(देर तक देखकर)

निश्चय ही इसकी पतली कमर विद्यमान है, उसकी सत्ता मे कामदेव के लेख की तरह दीखनेवाली रोमरेखा ही प्रमाण है। बाल अन्धकार हैं, फिर वे मुखचन्द्र के पास कैसे विद्यमान हैं, यह बात परस्पर विरुद्ध लग रही है ॥४०॥

(रूपातिरेक निरूप्य) अहह,

चैत्रीचन्द्रद्युतिमतितरां दूरतः कारयित्वा
जित्वा जाम्बूनदनवकणासारसंभारशोभाम् ।
चित्रोन्नीता मदयति मनः कान्तिरम्भोरुहाक्ष्या
साक्षादस्यान्नयनमिलने स्यान्नयत्तन्न विद्म ॥ ४१ ॥

(इति भूयोऽपि निर्भरानुरागमालोकयति)

भद्र —(विलोक्य) अहो चित्रार्पितायामपि मनोरथप्रियायामयमभि निवेशः,

तथा ह्येतस्य—

विचित्य प्रागस्या करचरणहृत्कुवलयनिकरं
निमज्ज्यान्तः कान्तिप्रकरसरसो लोचनमुनिः ।
समाक्रम्य स्वैरं ललितवलिसोपानमधुना
ऽधिरूढो हृद्वेदीं स्तनशिवसपर्यां रचयति ॥ ४२ ॥

(साश्चर्यम्)

(रूप गौरव को देखकर) अहह !

चित्र मे लिखित इस कमलनयनी सुन्दरी की कान्ति चैत्र की चादनी को परास्त करके और स्वर्ण कण की कमनीयता को भी विजित करके मेरे मन को मतवाला बना रही है इसके साथ साक्षात् नयन मिलन होने पर क्या होगा सो मैं नही समझ पा रहा हूँ ॥ ४१ ॥

(फिर स्नेहपूर्वक उसी चित्र को देखता है)

भद्र – (देखकर) अहो चित्रलिखित होने पर भी इस प्रियतमा के प्रति इनका इतना मनोबन्ध है ।

देखो—इनके लोचनरूप मुनि ने पहले हाथ पैर तथा नयनरूप कमल पुष्प चुनकर रख लिये फिर कान्ति सरोवर के अभ्यन्तर प्रवेश कर अवगाहन किया अनन्तर त्रिवलिरूप सोपान मार्ग से हृदयरूप वेदी पर आरोहण किया, अब वह लोचन मुनि स्तन स्वरूप शिव की पूजा कर रहा है ॥ ४२ ॥

(आश्चर्य भाव से)

चित्रमेतदनुचिन्तयन्नयं
चित्रतामतितमां किमागतः ।
यद्विचिन्तनघनो मनोलय-
स्तन्मयत्वमथवा किमद्भुतम् ॥ ४३ ॥

यावदुपसर्पामि (इत्युपसृत्य)
जयति जयति कुमार ।

कुमार —(अनाकलयन्) अहह ॥

अप्युज्झितोचितचमत्कृतिचेष्टितानि
चित्रे कयापि कलयोल्लिखितानि तानि ।
अङ्गानि चेत्परिचितानि विलोचनाभ्या-
मेतावताप्यभिमतानि मयार्जितानि ॥ ४४ ॥

साशसञ्च—

लीलादोलद्भुजबिसलतालोलचेलाञ्चलान्त-
श्चञ्चद्वक्षश्चपलकुररीशिक्षितानीक्षितानि ।
आस्यं हास्यामृतसमुदयस्निग्धदन्ताधरान्तं
को जानीते कुवलयदृशः कस्य नेत्रातिथि स्यात् ॥ ४५ ॥

यह प्रद्युम्न इस चित्र को देखते हुए क्या स्वयं चित्र बन गया है। चिन्ता करने से इसका मन अतिलीन हो रहा है, यह तन्मयता तो अद्भुत है ॥४३॥

जब तक समीप जाता हूँ। (समीप जाकर) जय हो, कुमार की जय हो।

कुमार—(नहीं सुनते हुए) अहह !

उचित चमत्कृतचेष्टा से रहित होने पर भी चित्र में इस सुन्दरी के अङ्ग इस चतुरता से अङ्कित हैं कि मेरी आखों ने उन्हें उचित रूप में पहचान लिया है और इतने से ही मैंने अपना अभिमत प्राप्त कर लिया है ॥ ४४ ॥

(आशंसा के साथ)

कौन जानता है कि इस सुन्दरी का लीलासञ्चालित भुजलता से चञ्चल अञ्चल में किलकारियां भरनेवाला वक्षःस्थल, चपल मृगी से शिक्षित दर्शन, और हास्य रूप अमृत से स्निग्ध अधरवाला मुख किसे देखने को मिलेंगे ॥४५॥

भद्र.—

नेत्रातिथिस्त्वदन्यस्य रूपमेतादृशं कुतः ।
अम्भोजिन्यनुभावस्य भानुरेव हि भाजनम् ॥ ४६ ॥

कुमार —(विलोक्य) कथं वयस्यो भद्रः, वयस्य, इत आस्यताम् ।

भद्र.—(उपविशति)

कुमार —(आत्मगतम्) अहो सवाक्समुग्धोऽभिलाप. । तत्किमनेना-चगतं स्यात् । भवत्वेवं तावत् । (प्रकाशम्) वयस्य, अपि तर्कयसि केयं रामणीयकनिधि' ? (इति चित्रफलकं दर्शयति)

भद्र:—(चिरं निरूप्य) अनया रामणीयकमुद्रया
नारायणादाविरभूत्स्वर्वशीकर्तुमुर्वशी ।

(अथवा) न सम्यगवधारयामि अभिनवनिर्माणरमणीयेयं मान्मथी-सुकृतपरिणति', तेन हि:—

इयत्या रूपसम्पत्त्या संप्रतीमः प्रभावतीम् ॥ ४७ ॥

भद्र— यह रूप तुम से अतिरिक्त किसे देखने को मिलेगा ? क्योंकि कमलिनी के स्नेह का पात्र भानु ही होता है ॥ ४६ ॥

कुमार—(देखकर) क्यो, मित्र भद्र हो मित्र, इधर बैठो ।

भद्र—(बैठता है)

कुमार—(स्वगत) यह अभिलाष तो कुछ इसके कथन से सुफल प्रतीत होता है । तो क्या यह जानता है । अच्छा तब तक ऐसा होवे । (प्रकट) मित्र, क्या तुम अन्दाज लगा सकते हो ? यह कौन सी सुन्दरी है ? (चित्र दिखलाता है)

भद्र—(देरतक देखकर) इस सुन्दरता से तो—

उर्वशी स्वर्ग को वश में करन के लिये नारायण से पैदा हुई थी ।

अथवा—ठीक समझ नहीं रहा हूँ यह कन्दर्प के पुण्यों को परिणति-स्वरूपा रमणी नवीन निर्माण रमणीय है, इससे तो मैं समझता हूँ कि—

इतनी रूपराशि के कारण यह प्रभावती ही है ॥ ४७ ॥

कुमार —आश्चर्यं कुतोऽयं तर्कः ?

भद्र —श्रूयताम्—

प्रसादितासीत् प्रियया सुरारे
पुरा चिरादर्धहरा हरस्य।
तस्या समासादि वरस्वरूप्या
कन्या किलेयं प्रतिमा रमायाः ॥ ४८ ॥

सेव सम्प्रति सकललोकाभरणभूता सुन्दरीणां सीमन्तमणिरिति श्रूयते।

कुमार —(सपरितोषम्) सत्यं सत्यं त्वमेवास्य रहस्यावेदनस्य पात्रमसि प्रियवयस्य प्रभावत्याः प्रतिकृतिमेतामुपनीतवती सुरलोकहंसी शुचिमुखी।

भद्र —(सबहुमानस्मितम्) सदृशमेवैतत्—

हरति सरसि पद्मश्रेणिरेव द्विरेफं
तरलयति पयोधेरन्तरं चन्द्रिकैव।
रमयतु कतमा त्वां धीरलावण्यलक्ष्मीं
त्रिजगदुपरिभूतां तादृशीमन्तरेण ॥ ४९ ॥

कुमार—आश्चर्य यह तर्क किस आधार पर ?

भद्र—सुनिये—

राक्षसराज की स्त्री ने अर्धनारीश्वर शिव की प्रेयसी पार्वती को प्रसन्न किया था उन्हीं से उसने वर रूप में लक्ष्मी की प्रतिमास्वरूपा यह कन्या प्राप्त की है । ४८ ॥

वह इन दिनों विश्वसुन्दरी तथा समस्त संसार का अलङ्कार हो रही है, ऐसा सुना जाता है।

कुमार—(सन्तोष के साथ) सचमुच तुम्हीं इस रहस्य को कहने के पात्र हो। सुरलोक हंसी शुचिमुखी प्रभावती का यह चित्र ले आई है।

भद्र—(आदर तथा मुस्कुराहट के साथ)

कमलमाला ही भ्रमर को आकृष्ट करती है समुद्र के अन्तर को चान्द्रका ही तरङ्गित करती है। हे धीर त्रिलोक रमणीया लावण्यलक्ष्मीस्वरूपा वैसी रमणी के सिवा कौन स्त्री तुम्हें आकृष्ट करेगी ॥ ४९ ॥

कुमारः—परन्तु वयस्य, कस्मिन्नपि सुजन्मनि यूनि जातानुरागतां प्रभावत्याश्चित्रन्यस्तेयमवस्था कथयति। तथा हीयम्—

अस्याम्भोजनिवेशनिश्चलदृशः सख्याः समुद्गीजनात्
पीनोत्तुङ्गकुचोत्तरङ्गबिसिनीपत्रोद्गताङ्गद्युतिः ।
शेते शैवलशालिशीतलशिलातल्पे तदल्पेतरः
कस्यायं कृतिनो वयस्य तपसामादकप्रसादोदयः ॥ ५० ॥

भद्र—(विहस्य) प्रायस्तवैव तपसामय प्रसादः। यतस्तस्या हृदयङ्गमा प्रियसखी शुचिमुखीति श्रूयते, चित्रञ्चैतत्तयोपनीतमिति।

कुमार—उक्तमेतावत्तयापि मदनुयुक्तया—

विघत्स्यकपटात्कथामपरथा मया प्रस्तुतां
प्रसञ्जयति पौरुषं तव तटस्थतामाश्रिता।
अथैतदुपवर्णने पुलकिता कपोलस्थली
स्फुटं कथयति त्वयि स्मरनिवेशमेणीदृश ॥ ५१ ॥

कुमार—परन्तु मित्रवर, प्रभावती की यह चित्र लिखित अवस्था कह रही है कि वह किसी युवक पर अनुरक्त है। क्योंकि यह—

मुख कमल पर निनिमेष नयनों से देखती हुई सखी पङ्खा झल रही है, स्तन पर निहित कमलिनी पत्र व्यजन वात से हिल रहे हैं, उसपर उसके अङ्गों की द्युति चमक रही है, वह सेमार से पूर्ण शीतल शिलातल पर पड़ी हुई है, यह किस भाग्यवान् युवक की तपस्या का उदय है ? ॥ ५० ॥

भद्र—(मुस्कुराकर) प्राय यह तुम्हारी ही तपस्या का परिणाम है। इसका कारण यह है शुचिमुखी प्रभावती की हृदयसखी है और वही यह चित्र लाई है।

कुमार—मेरे पूछने पर उसने भी इतना कहा था कि:—

मैं दूसरी कथा कहती रहती हूँ तो वह उस कथा की कड़ी को तोड़कर तटस्थभाव से तुम्हारी वीरता का प्रसङ्ग बना देती है, जब मैं तुम्हारी वीरता का वर्णन करने लगती हूँ तो उसके कपोल रोमाञ्चित हो उठते हैं, वही रोमाञ्चित कपोल उस मृगनयनी के तुम्हारे विषय में कामभाव का स्पष्ट कथन करते हैं ॥ ५१ ॥

भद्र—(सबहुमानम्) उपपद्यते, प्रायश पौरुषैकपरितोषैव योषितांश्चित्तवृत्ति, विशेषेण तादृशवीरवंशप्रसूतानाम्। तत्रापि च पराक्रमनिर्भरपुरुषप्रकाण्डोपभोग्या प्रभावती, तन्न किञ्चिदपरं वज्रपुरप्रवेशप्रकारपरिकल्पनादवशिष्यते।

कुमार—(सोत्कण्ठम्)

पतगनृपतिवन्निपत्य दूरा
दमृतमिवापहरामि तामिदानीम्।
(सचिन्तश्च)
कथमथ तदभङ्गुरं विरिञ्चे
र्वचनकपाटविधानमुत्क्षिपामि ॥ ५२ ॥

वयस्य सम्भवत्यत्रापि कश्चिदुपाय ?

भद्र—किन्न सम्भवति।

प्राप्तु रत्नान्यम्बुराशौ कराभ्या
क्रीडन्नक येन चक्रे प्रकार।
ईषत्प्राय कुर्वता दुर्लभ्यं

भद्र—(सादर) यह ठीक है। प्राय स्त्रियों की चित्तवृत्ति पौरुषमात्र से परितोष प्राप्त करती है खास कर उस तरह के वीरवश मे उत्पन्न स्त्रियों की। उसमे भी प्रभावती तो पराक्रमी पुरुष के ही उपभोग का पात्र है। वज्रपुर मे प्रवेश के प्रकार की कल्पना के सिवा अब और कुछ शेष नही है।

कुमार (उत्कण्ठित भाव से)

पतगराज ने जैसे दूर से झपट कर अमृत उड़ा लिया था उसी तरह उसे उड़ा लाऊ ?

(चिन्तापूर्वक) ब्रह्मा के उस अभङ्गुर वरदानरूप कपाट को कैसे दूर करू ॥ ५२ ।

मित्र क्या इसका भी कोई उपाय हो सकता है ?

भद्र—क्यों नही हो सकता है ?

नक्र-समुदाय से व्याप्त सागर में हाथ से रत्नों को पकड़ने का उपाय जिसने कर दिया है उसके लिये अलभ्य वस्तु को आसानी से प्राप्त कराने का

किन्तेनास्मिन्निमितो नाभ्युपायः ॥ ५३ ॥

मनागनाकलन हि मोहमावहति ।

ईदृशेषु दुरूहेषु नीतिमार्गेषु मुह्यताम् ।
एकान्तसेवितस्वान्ता चिन्ता चिन्तामणीयति ॥ ५४ ॥

कुमार—एवमेतत्, परन्तु चिरमपि चिन्तयन् मनोरथपथेषु प्रस्खलत्येवान्तरात्मा ।

भद्र—सत्यमेतत्, केषुचित्स्वकीयेषु कर्त्तव्येषु बाहुल्येन विमुह्यन्ति महान्त, तदस्माभिरेवायमवधार्य कार्यक्रम । परन्त्वविज्ञाप्य वासुदेवं विचिन्तयितुमपि नेतादृश साहस समुत्सहामहे ।

कुमार—(सव्रीडम्) कथ ज्ञातव्यमेव तत्र भवता वासुदेवेनापि ।

भद्र—अस्त्यत्रापि वक्रता व्याहारस्य ।

उद्वेजयन्ति दैतेया देवानपि दिवानिशम् ।
तद्देवकार्यव्याजेन बोधनीयो महाहरिः ॥ ५५ ॥

उपाय करना कितना कठिन है ॥ ५३ ॥

थोडी देर समय मे नही आने से घबराहट होती है ।

इस तरह दुरूह कर्त्तव्यमार्ग मे घबडाहट मे पडने वालों के लिये एकान्त बैठकर चिन्ता करनाही सफल उपाय है ॥ ५४ ॥

कुमार—यही बात है परन्तु चिरकाल तक चिन्ता करने पर भी मनोरथ पथ पर आत्मा फिसलती ही है ।

भद्र—यह बात सत्य है । खास करके कुछ आत्मकर्त्तव्य मे बडे लोग भी घबडा जाते हैं अत हम लोगो को ही कार्यक्रम निर्धारित करना है । एक बात है कि वासुदेव को सूचित किये बिना इस तरह के साहसकार्य मे चिन्ता करने का भी साहस नहीं करता हूँ ।

कुमार—(सलज्जभाव से) क्या यह बात वासुदेव को भी जतानी ही होगी ।

भद्र—इसम भी उक्ति वक्रता रहेगी ।

दैत्य लोग देवों को दिन रात तङ्ग किया करते हैं, अत वासुदेव को हम देव कार्य के व्याज बनाकर सूचना देंगे ॥ ५५ ॥

कुमारः—यथा जानासि। (ऊर्ध्वमवलोक्य) कथं गगनमध्यमध्यारूढो भगवानुष्णभानुः, तन्नूनमेतावत्कालेन तानि हंसमिथुनानि वज्रनगरान्तःपुरदीर्घिकायामुपनिपतितानि भविष्यन्ति।

ततः तस्याम्—

प्रत्येकं नलिनीदलावलितलच्छायाविनीतश्रमं
लीलोत्पातमृणालिकाकवलनव्याधूतचञ्चूपुटम्।
तोयोत्तीर्णतटावतीर्णतरुणीमञ्जीरमञ्जुध्वनीन्
बद्धस्पर्द्धमघोऽनुकूजति कलं प्रायेण हंसीकुलम्॥ ५६॥

भद्र—अहो निदाघसमयादपि शारदोऽयं तीव्रकरस्तिग्मकरः, तथाहि—

माध्याह्निकैर्मिहिरवह्निकरालकीलैः
काष्ठोत्करादिव परिज्वलतः पतद्भिः।
अङ्गारकैरिदमपूरि जगत् किमन्यत्
तेजोऽपि नायनमिहायनमुज्जहाति॥ ५७॥

कुमार—तुम जैसा उचित समझो। (ऊपर देखकर) क्यों, सूर्य आकाश के मध्य में आगये, निश्चय ही इतनी देर में वे हंस के जोड़े वज्रपुर की अन्तःपुर-दीर्घिकाओं में पहुँच चुके होंगे।

तब उस दीर्घिका में—

वे हंस के जोड़े नलिनी-दल की छाया में थकान दूर करेंगे, मृणाल उखाड़ कर चोंच में डालेंगे और पानी में स्नानार्थ उतरती हुई रमणियों की मञ्जीर-ध्वनि से लय मिलाकर शब्द करेंगे॥ ५६॥

भद्र—अहो, निदाघ के सूर्य से भी शरद्ऋतु का सूर्य अधिक तेजवाला होता है—क्योंकि—

मध्याह्नकालिक सूर्य के अग्निसदृश करों से जलते हुए दिशा रूप काष्ठ से निकलने वाले अङ्गारों से संसार परिपूर्ण हो रहा है, नयन का तेज भी चिलमिला रहा है॥ ५७॥

अपि च—

नीरावैर्विहगैस्तिरोहितगिरो निर्वातनिःस्पन्दता
मध्याह्ने मिहिरातपेन तरवस्तप्ता इवोन्मूर्च्छिताः ।
शोकोन्मादभरेण पादपतितास्तेषां तु जाया इव
च्छायाः सङ्कुचितोपतप्ततनव क्रोशन्ति झिल्लीरवैः ॥ ४८ ॥

कुमार—वयस्य, माध्याह्निकीं क्रियामनुतिष्ठाव ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

केसरवीथी नाम प्रथमोऽङ्कः

और—

पक्षिगण नीरव हो रहे हैं, निर्वात होने से वृक्ष निश्चल हो गये हैं, ऐसा लगता है मध्याह्न में सूर्य किरण से सन्तप्त हो कर वृक्षसमूह मूर्च्छित हो रहे हों। उन मूर्च्छित वृक्षों की पत्नी सी लगने वाली छाया उनके पैरों पर पड़ी है उनके शरीर सन्तप्त हैं, और वे झिल्लीरव के व्याज से आक्रोश कर रही हैं ॥ ४८ ॥

कुमार—मित्र, अब हम लोग मध्याह्न-कृत्य करें ।

(सभी का प्रस्थान)

केसरवीथी नामक प्रथम अङ्क समाप्त

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति कञ्चुकी)

कञ्चुकी—(जरावैक्लव्यं नाटयन् , सनिर्वेदम्)

नेदीयस्यपि नेक्षमक्षमतमं क्षीणं श्रुतेः पाटवं-
वाचो विस्खलिताः स्खलन्ति गतयो भूयो वपुर्वेपते ।
येरेतैर्व्यवहारभारमितरे मुञ्चन्ति सांसारिकं
माहक्तैरधिकाधिकं व्यवहरन्नन्त पुरे सीदति ॥ १ ॥

अपि च—

राज्ञामाज्ञामहमुदवहं नित्यशो मूर्ध्नि गुर्वीं
तत्सघर्षादिव कचभरः सर्व एव व्यरसीत् ।
भूयोभूयः प्रतिनृपवचो नम्रनामाचरम्मे
कायोऽभ्यासादिव समभवद् वक्र एव क्रमेण ॥ २ ॥

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—(बुढ़ापे की असमर्थता का अभिनय करता हुआ)

(विरक्त भाव से)

समीप स्थित वस्तु मे भी नयन दर्शन सामर्थ्यहीन हो रहे हैं, वाणी लड़खड़ा रही है, चाल भी लड़खड़ाने लगी है, शरीर काँपता है, जिस स्थिति मे दूसरे लोग सांसारिक भार को उतार फेंकते हैं, मेरे जैसा आदमी उस दशा मे अन्त पुर का पूरा भार सिर पर उठाये हुए कष्ट उठाता रहता है ॥ १ ॥

और—मैं सदा से राजाओ की आज्ञा को सिर पर उठाता रहा हूँ, उसी संघर्ष मे मेरे सारे केश गिर गये, राजा के प्रत्येक आदेश पर अपनी नम्रता प्रदर्शित करते रहने के कारण झुकने के अभ्यास से मेरा शरीर, वक्र होता गया ॥ २ ॥

(समन्तादवलोक्य) अहो देवस्य दानवपतेरप्रतिहतानि प्रभुत्वानि, तथाहि :—

एते भूपतयो भुजार्गलजिताः कारागृहे शेरते
सेवायै स्पृहयन्ति सन्ततमहो दीना दिशामीश्वराः।
किञ्चान्यत्पुरुहूतदूतनिवहाः सन्धानबद्धस्पृहाः
प्राप्ता न प्रभवन्ति हन्त नगरी-सीमा समुल्लङ्घने ॥ ३ ॥

किं बहुना—

केलिश्रमस्विन्नतमं समन्तात्
संवीजयन्तोऽपि शरीरमासाम्।
त्रासेन नान्तःपुरसुन्दरीणां
चेलाञ्चलं सञ्चलयन्ति वाताः ॥ ४ ॥

अपि च—

केलीशिखण्डिताण्डवपण्डितपटहा यदृच्छया जलदाः।
परिपूरयन्ति वारिभिरुद्यानलतालवालवलयानि॥ ५ ॥

(चारों ओर देखकर) अहा, दानवराज का प्रभुत्व अव्याहत है— देखिये—

बाहुबल से पराजित ये राजागण कारागार में पड़े हैं, दिक्पालगण सेवा करने को लालायित रहते हैं और कितना कहा जाय, ये इन्द्र के गुप्तचर पता लगाने के लिये व्यग्र रहते हैं फिर भी दैत्यराज की नगरी की सीमा पार करने में भी समर्थ नही हो पाते ॥ ३ ॥

अधिक क्या कहे,

रतिश्रमजनित स्वेद से आर्द्र शरीर पर हवा करने वाले यह वायुदेव भय के मारे दैत्यराज के अन्त पुर की स्त्रियों के वस्त्रप्रान्त को सञ्चालित तक नहीं करते हैं ॥ ४ ॥

और—यह मेघगण दैत्यराज के केलीमयूर को नृत्यतत्पर करने के लिये वाद्य का काम करते हुए अपने पानी से इनके उद्यान में अवस्थित लताओं के आलवाल को पूर्ण किया करते हैं ॥ ५ ॥

(विस्मरणमभिनीय) कुतोऽस्मि प्रचलितः ?

(सखेदम्)

अहह चिकुरा इवातिविरलाः श्वासा इव कष्टमाकृष्टाः।
स्मृतिरन्तः स्थविराणां गतिरिव कतिधा न विस्खलति ॥ ६ ॥

(चिरेण स्मृत्वा) आं, आज्ञापितोऽस्मि कश्यपाश्रमात् प्रतिनिवृत्तेन महाराजवत्सनाथेन, यथा, वात्स्यायन, जानीहि देवी वसुमती किंव्यापारेति ? तदेतदन्तःपुरद्वारम् , यावत् प्रविशामि । (प्रविष्टकेन पुरोऽवलोक्य) किमियं सैरन्ध्री सुवदना इत एवाभिवर्तते ?

(प्रविश्य)

सुवदना—अज्ज वन्दामि । (आर्य, वन्दे ।)

कञ्चुकी—भद्रे ! कल्याणिनी भूयाः । अथ सुवदने, जानासि किंव्यापारा देवी वसुमती ?

सुवदना—(निःश्वस्य) अज्ज जाणामि । (आर्य, जानामि ।)

(भूलने का अभिनय करते हुए) मैं कहाँ चला था ?

(खेद के साथ)

हाय, मेरे बालों की तरह विरल, श्वास की तरह कठिनाई से खींची *जाने वाली स्मृति मेरी चाल की तरह बार बार स्खलित होती रहती है ॥६॥*

(चिरकाल पर याद करके) हाँ, कश्यपाश्रम से लौटे हुए महाराज ने मुझे आज्ञा दी थी कि वात्स्यायन, पता लगाओ कि देवी वसुमती क्या कर रही हैं ? यही तो अन्तःपुरद्वार है, जब तक प्रवेश करता हूँ। (प्रवेश की मुद्रा में—आगे की ओर देखकर) क्या यह परिचारिका सुवदना इधर आ रही है ?

(प्रवेश करके)

सुवदना—आर्य, प्रणाम करती हूँ।

कञ्चुकी—भद्रे, कल्याण हो, अरी सुवदने जानती हो देवी वसुमती इस समय क्या कर रही हैं ?

सुवदना—(निःश्वास छोड़कर) आर्य, जानती हूँ।

कञ्चुकी—आः किमयमतिविस्लवो व्याहारः ?

सुवदना—किण्ण जाणादि अज्जो भट्टिदारिआए पहावदीए अदिमहन्तो सरीरसन्तावो सअलं ज्जेव अन्तेउरं परिहअदि। (किन्न जानात्यार्यो भर्तृदारिकायाः प्रभावत्या अतिमहान् शरीरसन्तापः सकलमेवान्त पुरं परिभवति।)

कञ्चुकी—हुं। कथितमेव मे प्रभावती प्रियसख्या तरलिकया, यथा हि—

सुप्ता शैवलशीतलेऽपि शयने लिप्ता चिरं चन्दनै-
रान्दोलद्वलयावलीभिरभितोऽप्यालीभिरुद्वीज्यते।
तापोऽस्यास्तदपि प्रकम्पितहृदो हा दीप्तदावायते
को हेतुः किमिहोचितं न खलु तज्जानाति मादृग् जनः॥ ७॥

सुवदना—एव ण्णेदम्, ण जाणीअदि को एत्थ हेदू। किं उण ववसिदव्वं, विआधणिदाण अजाणिअ अणवसरो पदीआरस्स। (एवं न्विदम्, न ज्ञायते कोऽत्र हेतुः। किं पुनर्व्यवसितव्यं व्याधिनिदानमज्ञात्वाऽनवसरः प्रतीकारस्य।)

कञ्चुकी—अहा, यह व्यथापूर्ण उद्गार कैसा ?

सुवदना—क्या आप नहीं जानते हैं कि राजपुत्री प्रभावती का महान् शरीर-सन्ताप समस्त अन्त पुर को तबाह किये हुए है।

कञ्चुकी—हाँ, प्रभावती की प्रिय सखी तरलिका ने मुझसे कहा था कि—

प्रभावती सेमार से शीतल शयन पर पड़ी हुई चन्दन से लिप्त होकर चञ्चलवलया सखियों द्वारा वीजित होती रहती है फिर भी उसका हृदय सदा कम्पित होता रहता है और सन्ताप प्रदीप्त दावानल की तरह बढ़ता ही जाता है। इस सन्ताप का क्या कारण है और इस स्थिति में क्या करना ठीक है इन सारी बातों को हमारे जैसा आदमी क्या जान॥ ७॥

सुवदना—यही बात है। पता नहीं चलता है कि इस सन्ताप का क्या कारण है ? व्याधि के निदान को जाने विना प्रतिकार करना कठिन होता है।

कञ्चुकी—अयि किमन्यन्निदानम् ?

निशि निशि मदयन्ति स्फीतशीतांशुभासः
प्रतिलतिकमधीराः सञ्चरन्ति द्विरेफाः ।
किमधिकमविनीते यौवने जृम्भमाणे
रतिरमणशराणां दुर्निवारः प्रहारः ॥ ८ ॥

सुवदना—साहु सभाविदं, मए उण अन्तेउरवुत्तन्तो त्ति तुम्हाण पि पुरदो न फुडं भणिदं । (साधु सभावितम् , मया पुनरन्तःपुरवृत्तान्त इति युष्माकमपि पुरतो न स्फुटं भणितम् ।)

कञ्चुकी—अयि स्फुटमप्यतिनिगूढमन्तःपुरवृत्तमस्मादृशेषु, पश्य—

पश्यन्तोऽप्यनिरीक्षिणः शृण्वन्तोऽपि न शृण्वन्ति ।
न स्मरन्ति स्मरन्तोऽपि नृपान्तःपुरचारिणः ॥ ९ ॥

तत्सुवदने, न किञ्चिदत्याहितम् , यतो देवेन स्वयंवरेति स्थापिताया भर्तृदारिकाया मनोरथस्थानं युवानमवधार्य देव्येव प्रमाणमिति ।

सुवदना—हिअअङ्गमं ज्जेव देवीए आअक्खदि अज्जो किं उण एदं

कञ्चुकी—अरी और क्या निदान होगा ? प्रत्येक रात्रि में खुली चाँदनी मादकता लाती है, अधीर भ्रमर हर लता पर सञ्चार करते हैं, और क्या कहा जाय जवानी के आने पर कामबाण का प्रहार दुर्निवार हो उठता है ॥ ८ ॥

सुवदना—आपने ठीक अनुमान किया है । हमने तो आप से भी इस लिये नहीं कहा था कि यह अन्तःपुर का रहस्य वृत्तान्त है ।

कञ्चुकी—अरी अतिगुप्त अन्तःपुर वृत्तान्त भी हम लोगों को ज्ञात रहता है, देखो—राजाओं के अन्तःपुर के कर्मचारी देखकर भी नहीं सुनते एवं याद करके भी नहीं याद करते हैं ॥ ९ ॥

इसलिये सुवदने, घबडाने की कोई बात नहीं है । महाराज ने प्रभावती को स्वयंवरा करार दिया है, फिर राजकुमारी के अभिलषित युवक का पता लगाकर देवी अनुकूल व्यवस्था करने में समर्थ है ।

सुवदना—अभिलषित युवक का ही तो देवी पता लगा रही हैं । इसी

ज्जेव जाणिदु देवीए भट्टिदारिआसआसं एक्कदिअह अह अणुप्पेसिदा।
(हृदयङ्गममेव देव्या आलक्ष्यते आर्य, किं पुनरेतदेव ज्ञातु देव्या भर्तृदारिकाश-काशमेकस्मिन् दिवसेऽहमनुप्रेषिता ।)

कञ्चुकी—ततस्तत ।

सुवदना—तदो मए गदुअ णलिणीदलसअणुव्वत्तमाणतणुलदाए ताए पासे उअविसिअ कुलसिलवत्तविज्जाहिं सणाहा (लज्जा) के के ण पत्थूदा दाणवकुमारा त क्खु सोऊण तक्खण विउणवड्ढमाणवेअणा-विआरवहुअरविच्छुरिदमुह्मी मीलत्तणेत्तणीलुप्पला पहावदी सभमविसं-ठुलेहि सहीअणेहिं झत्ति आआच्छिअ सहि पहावदि णम्भणामि सहि पहावदि त्ति विलंविअवअणचन्दम्मि चन्दणसलिलचुणुएहिं आसि-ञ्चिअ णअणुप्पलम्मि कप्पूरचूण्णाइ णिक्खिविअ अङ्गेसु अ सीअलजलो क्खिदकमलिनीपत्तेहिं वीजिअ कह कह पि पतिवोधिना । (ततो मया गत्वा नलिनीदलशयनोद्वर्तमानतनुलतायास्तस्याः पार्श्वे उपविश्य कुलशीलवृत्त विद्याभि सनाथा के के न प्रस्तुता दानवकुमारा । तत्खलु श्रुत्वा तत्क्षण द्विगुण-वर्धमानवेदनाविकारबहुलविच्छुरितमुखा मीलन्नेत्रनीलोत्पला प्रभावती सभ्रमवि-सष्ठुलै सखीजनैर्झटित्यागत्य सखि प्रभावति, ननु भणामि सखि प्रभावतीति विल-म्बितवदनचन्द्रे चन्दनसलिलचुलुकैरासिच्य नयनोत्पले कर्पूरचूर्णानि निक्षिप्य अङ्गेषु च शीतलजलोक्षितकमलिनीपत्रैर्वीजयित्वा कथ कथमपि प्रतिबोधिता ।)

का पता लगाने के लिये तो देवी ने एक दिन मुझ राजकुमारी के पास भेजा था।

कञ्चुकी—तब क्या हुआ ?

सुवदना—इसके बाद मैं कमलदलपर करवटें लेती हुई उस राज कुमारी के पास जाकर बैठी, कुल-शील तथा विद्या से युक्त कित २ राजकुमारों को मैंने चर्चा मे उपस्थित नहा किया पर तु उस पर उसकी वेदना दुगुनी हो उठी, वह व्याकुल हो गई उसकी आंखें मुंद गई, सखियाँ घबडाकर दौड़ीं, सखियों ने प्रभावती का नाम लेकर बारबार पुकारा, लटकते हुए चेहरे पर पानी के छींटे दिये आखों मे कर्पूरचूर्ण डाला, शरीर पर शीतल जल से सिक्त कमलदल से पङ्खा किया, तब किसी प्रकार वह होश म आई।

कञ्चुकी—(सचिन्तम्) हन्त, महतोऽनर्थस्यायमङ्कुरप्ररोहः।

सुवदना—(सविषादम्) किं क्खु एदं भणिदं भादि। (किं खल्वेतद् भणितं भवति।)

कञ्चुकी—अयि सरले, बहुदर्शितायाः सहचरीचिरजीवितेयं मुखरयति, पश्य, नूनमेव कस्मिन्नपि विपक्षपक्षवर्त्तिनि परोक्षानुरागो भर्तृदारिकाया पितृपक्षानुसारिषु महासुरकुमारेषु चित्तवृत्तिमन्यथयति। नहि मिहिरमरीचिप्रणयपरिचियादपरमपि किञ्चित् समुदितेषु सकललोकलोचनानन्दमन्दिरेषु चन्द्रकरकन्दलेषु विनिमीलयति कमलवनीम्।

सुवदना—तदो किं (तत किम् ?)

कञ्चुकी—अयि किन्न जानासि, प्रभावत्या त्रिभुवनातिशयिता रूपसम्पत्तिर्नेतादृशश्च परोक्षानुरागमवगत्यास्याः प्रणयिना जीवितव्ययेनापि सगमाय यतनीयम्।

सुवदना—अज्ज, तदो वि किं, सअंगाज्जेर भट्टिदारिआ तस्सज्जेव

कञ्चुकी—(चिंतित भाव से) यह तो बड़े भारी अनर्थ की जड़ है।

सुवदना—(विषादपूर्वक) आप क्या कह रहे हैं।

कञ्चुकी—अरी सरले, बहुत दिनों तक जीने के साथ मैंने बहुत कुछ देखा है जो मुझे कहने को प्रेरित कर रहा है। देखो—निश्चय किसी शत्रुपक्षीय युवक पर राजकुमारी का परोक्ष अनुराग है जो पितृपक्षवर्ती असुर—कुमारों पर उसकी चित्तवृत्ति को टिकने नहीं द रहा है। सूर्याकरण सपर्क के अतिरिक्त और कोई वस्तु सभी लोगों को आंखों को आनन्दित करनेवाली चन्द्रिका के सामने कमलकुल को आंखें बन्द करने को प्रेरित नहीं कर सकती है।

सुवदना—इससे क्या ?

कञ्चुकी—अरी क्या तुम नहीं जानती है कि प्रभावती के अलौकिक सौन्दय तथा इस प्रकार के परोक्षानुराग को देखकर उसका प्रणयी युवा जानगवाकर भी संगम का प्रयास करेगा।

सुवदना—उससे भी होगा क्या ? राजकुमारी तो स्वयंवरा है हो, उसी

हिअअट्ठिअस्स वरस्स देव्वेण पडिवादणीअत्ति। (आर्य, ततोऽपि किम्, स्वयंवरैव भर्तृदारिका तस्यैव हृदयस्थितस्य वरस्य देवेन प्रतिपादनीयेति।)

कञ्चुकी—आ किमेवमुदीर्यते ?

चरमशिखरिशीर्षे नोदितः स्निग्धधामा
सघनगिरिसमुद्रा नापवृत्ता धरित्री।
कथय कथमिवायं मानिनीमौलिरत्नं
वितरतु परपक्षे कन्यकां वज्रनाभः ॥ १० ॥

सुवदना—ना परोप्परविरुद्धं क्खु एदं णहु एआरिसीओ कुलकण्णआओ अण्णस्सिं हिअअं णिवेसिअ अण्णपरिणीदाओ होन्ति। (ननु परस्परविरुद्ध खल्विदम्, न खल्वेतादृश्यः कुलकन्यकाः अन्यस्मिन् हृदयं निवेश्य अन्यपरिणीता भवन्ति।)

कञ्चुकी—अतएव दुरवधारणीयोदर्कमेतत्। वत्से, त्वया चातिनिगूढमेतदन्तःपुरकौलीनं धारणीयम्।

सुवदना—ण केवलं एत्थ अज्जस्स णिओओ किं चण महाराअदारुणत्तणसङ्किदाए देवीए वि। (न केवलमत्रार्यस्य नियोगः किं पुनर्महाराजदारुणत्वशङ्किताया देव्या अपि)।

हृदयस्थित वर को महाराज राजकुमारी सौंप देंगे।

कञ्चुकी—आ, ऐसा क्यों कहती हो, अभी अस्ताचलपर से चन्द्रोदय नहीं हुआ है, और न अभी वन पर्वत तथा सागरों से युक्त यह पृथिवी ही उलट गई है। अभिमानियों में अग्रगण्य वज्रनाभ अपनी कन्या को विपक्षी वर के हाथों में किस प्रकार सौंप देंगे, तुम्हीं कहो॥ १०॥

सुवदना—यह बात परस्पर विरुद्ध है। ऐसी कुलकन्यायें दूसरे को दिल देकर तीसरे के हाथो नहीं सौंपी जाती हैं।

कञ्चुकी—इसीलिये तो इसका फल अनिश्चित है। बेटी, तुम इस अन्तःपुरापवाद वृत्त को खूब छिपाकर रखना।

सुवदना—यह केवल आप का ही आदेश नहीं है, महाराज की कठोरता से शङ्कित देवी का भी यही आदेश है।

कञ्चुकी—तदावेदय किंव्यापारा देवी ?

सुवदना—कइमो वि खणो कीडाकमलिनीसओवआसण्णसीअला-मन्दचन्दमासीलावेदिआसणाह माहवीमण्डवट्ठिदाए भट्टिदारिआए सुह उच्छल करदु देवी गता आसि। (कस्मिन्नपि क्षणे क्रीडाकमलिनी सरोवरासन्नशीतलामन्दचन्द्रम शिलावेदिकासनाथमाधवीमण्डपस्थिताया भर्तृदारिकायाः सुखप्रश्न कर्तुं देवी गताऽऽसीत्।)

कञ्चुकी—ततस्ततः ?

सुवदना—तदो तत्थन्तरे एव्वेव दिव्वहसउल इन्दिअसमूह निअ चित्तवतीए सुइमुहीए मग्गतगागदो वि आअच्छिअ तहिं ज्जेव उवणिवडिअं तक्खण उण दीहसन्दावदुम्मिअसरीराए भट्टिदारिआए झत्ति उट्ठिअ अन्तरानन्दपरिघुम्मिरतारएहि लोअणेहि पलोइअ इदो एदु पिअसहि त्ति सुइमुहि सद्दाविअ तक्काल खण्डिदोवणीद बिसिणीवत्तासणे उअवेसिअ सहि बलअ परिसन्ताविदासि त्ति आसिञ्चिदा चन्दणपकिलेहिं कप्पूरसलिल चुलुएहिं उवणीदाइ अ कोमलसेवालमुणालङ्कुराइ। (ततस्तत्रान्तरे तदेव दिव्यहसकुलम् इन्द्रियसमूह इव चित्तवत्या शुचिमुख्या मार्गमाण कुतोऽप्यागत्य तत्रैवोपनिपतित तत्क्षण पुनर्दीर्घसन्ताप दु स्थित शरीरया भर्तृदारिकया झटित्युत्थाय अन्तरान दपरिघूर्णमानतारकैर्लोचनै विलोक्य इत एतु प्रियसखीति शुचिमुखी

कञ्चुकी—अच्छा यह तो बताओ देवी क्या कर रही हैं ?।

सुवदना—कुछ समय हुआ है कि क्रीडाकमलिनीसरोवर के पास वर्तमान शीतल चन्द्रशिला से युक्त माधवी मण्डप में अवस्थित राजकुमारी से कुशलपूछने के लिये देवी वहाँ गई थीं।

कञ्चुकी—उसके बाद ?

सुवदना—उसके बाद वहाँ दिव्य हंसकुल उतरे जो चित्तवती शुचिमुखी नामक हंसी के इन्द्रिय समूह से लगते थे वह हंसदल कुछ खोजते खोजते वहाँ आ गया था। तत्काल राजकुमारी ने झट से उठकर—यद्यपि राजकुमारी के अङ्ग दीर्घ सन्ताप से कष्ट मे थे तथापि—आन्तरिक आनन्द से घूमती कनीनिका वाले नयनो से उन्हे देखा, फिर राजकुमारी ने प्रियसखी शुचिमुखी,

शब्दायित्वा तत्कालघटितोपनीतबिसिनीपत्रासने उपवेश्य सखि बलवान् परिसन्तापितासीति आसिक्ता चन्दनपङ्किलैः कर्पूरसलिलचुलुकैः, उपनीताश्च कोमलशैवालमृणालाङ्कुरा ।)

कञ्चुकी—(सबहुमानम्) अस्त्येव हृदयङ्गमा सखी शुचिमुखी प्रभावत्या । पश्य,

> अन्त स्थिरानुरागो वा यदि वा कार्यगौरवम् ।
> एतदेव पराधीनं जनं जनयति द्वयम् ॥ ११ ॥

सुवदना—अज्ज, कज्जगोरवं वि सभावीअदि । (आर्य, कार्यगौरव अपि सभाव्यते)।

कञ्चुकी—(सनिरोधम्) अस्त्विदमपि कथितप्रायम् , ततस्तत ।

सुवदना—तदो तरलिका मेत्त परिवारा पहावदी वीसम्हजम्पिदेहिं अत्ताणअ विणोदेत्ति त्ति तक्खण ज्जेव ताए सआसादो उट्ठिअ विहारमन्दिर आअछिअ देवी उअरिअलिन्दए आरूढत्ति । (ततस्तरलिकामात्रपरिवारा प्रभावती विसम्भजल्पितैरात्मानं विनोदयतीति तत्क्षणमेव तस्याः सकाशादुत्थाय विहारमन्दिरमागत्य देवी उपर्यलिन्दके आरूढेति ।)

इधर आओ कह कर शुचिमुखी को पुकार लिया, तत्काल तोड़कर लाये गये कमलपत्ररूप आसन पर उसे बैठाया, फिर कहा कि तुम्हें बहुत सन्ताप हो रहा है ऐसा कहकर राजकुमारी ने चन्दन कर्पूर मिश्रित जल से उसे सींचा और कोमलमृणालखण्ड खाने को दिये ।

कञ्चुकी—(सादर) शुचिमुखी तो प्रभावती की प्रियसखी है ही। देखो—हृदय म स्थिर अनुराग अथवा कार्य-गौरव यही ऐसी दो वस्तुएं हैं जो मनुष्य को पराधीन कर देती हैं ॥ ११ ॥

सुवदना—आप, कार्यगौरव तो है ही ।

कञ्चुकी—(रोकते हुए) जाने दो यह कथित सा हो है । इसके बाद ?

सुवदना—इसके बाद तरलिकामात्र के साथ प्रभावती विश्वस्त वार्तालाप से अपना मन बहलाये—ऐसा कहकर देवी उसके पास से उठकर विहार मन्दिर में चली आई और ऊपर चढ़ गई ।

कञ्चुकी—तज्ज्ञातमेतावदावेदयामि देवाय। त्वमपि समीहित सम्पादय। (इति निष्क्रान्तौ)

विष्कम्भकः

(ततः प्रविशति विरहावस्थोपविष्टा प्रभावती शुचिमुखी-तरलिके च)

प्रभावती—(सोच्छ्वासानन्दम्) सहि, सच्चक ज्जेव तस्स महाभाअस्स हत्थ पाविदा तए मज्झ पडिकिदी। (सखि सत्यमेव तस्य महाभागस्य हस्त प्रापिता तया मम प्रतिकृति ?)

शुचिमुखी—अयि कोऽयमप्रत्ययः ? (सस्मितञ्च शरीरमस्याः निर्दिशन्ती) किं बहुना—

प्रतिकृते प्रियपाणिसमागमं
तव शरीरमुदीरयति स्फुटम्।
सपदि सात्त्विकभावभरस्फुर-
ज्जडिम जातमिदं कथमन्यथा ॥ १२ ॥

कञ्चुकी—अच्छा, जितना जान सका हूँ वह महाराज से निवेदित कर दूँ, तुम भी अपने मन की करो। (दोनों का प्रस्थान)

(विष्कम्भक समाप्त)

(इसके बाद विरहावस्था में बैठी प्रभावती के साथ शुचिमुखी तथा तरलिका का प्रवेश)

प्रभावती—(उच्छवास तथा आनन्द के साथ) सखि, क्या तुमने सचमुच हमारा चित्र उस महाभाग के हाथ मे पहुँचा दिया ?

(स्वेदादि सात्त्विक विकार प्रकट करती है)

शुचिमुखी—यह कैसा अविश्वास ? (मुस्कुराकर) (उसके शरीर को दिखलाती हुई) और क्या कहा जाय।

तुम्हारा यह शरीर ही स्पष्ट कह रहा है कि तुम्हारा चित्र तुम्हारे प्रियतम के पास पहुँच गया है। अन्यथा यह शरीर तत्काल सात्त्विक भावो के उदय से जड क्यो हो गया है ॥ १२ ॥

प्रभावती—(लज्जते)

शुचिमुखी—किञ्च, प्रियसखि, न केवलं तवैव कृते प्रतिकृतेः कुमारहस्तप्रापणं किन्तु तत्तादृगनेक-सहस्रवासुदेवान्तःपुरदुर्ललित-जन्मनो रुक्मिणीनन्दनस्य तस्यापि मनोरथोन्मादमेदुरित-मदन-वेदनावसन्नमनुपेक्षणीयं शरीरसौकुमार्यमिति।

तरलिका—(सानन्दम्) पिअण्णो पिअण्णो। (प्रियज्ञः, प्रियज्ञः)

प्रभावती—(निःश्वस्य) समासासणं पि एदं णिव्वावेदि कन्दप्प-कप्पाणलजालावलीकवलिदाइं अङ्गाइं। (समाश्वासनमप्येतन्निर्वापयति कन्दर्पकल्पानलज्वालावलीकवलितानि अङ्गानि।)

शुचिमुखी—किमाश्वासनमात्रमेतदित्याशङ्कया। शृणु सुभगे, प्रागेव प्रणयप्रसङ्गोद्घाटनप्रसङ्गस्य स सङ्घटितत्वदीयरामणीयकगुणाकर्णनकुतूहलेन परवानिवासीत्, अनन्तरञ्च—

आक्षिप्तः क्षितिपतेर्दुहितुर्दुरूह-
स्त्वय्यम्बुजाक्षकुलनन्दन, पक्षपातः।

प्रभावती—(लज्जित होती है)

शुचिमुखी—प्रियसखि, मैंने तुम्हारे चित्र को कुमार के हाथ तक पहुँचाया, उसको तुम केवल अपना हित मत समझो वह तो इसलिये भी आवश्यक था कि अनेक सहस्र कृष्ण की स्त्रियों के दुलारे प्रद्युम्न का मनोरथ-जनित उन्माद से वेदनाग्रस्त शरीर-सौकुमार्य अनुपेक्षणीय है।

तरलिका—(आनन्द से) बड़ी सुखी, बड़ी सुखी।

प्रभावती—(निःश्वास छोड़कर) यह आश्वासन भी कामरूप प्रलया-नल की ज्वाला से दग्ध मेरे अङ्गों को शीतलता प्रदान कर रहा है॥

शुचिमुखी—यह आश्वासनमात्र है ऐसी आशङ्का क्यों? सुनो सुन्दरि, पहले सही प्रेम-प्रसङ्ग के उद्घाटन के पूर्व, तुम्हारे प्रख्यात सौन्दर्य गुन को सुनने के कुतूहल से प्रद्युम्न पराधीन से थे, बाद में—

जब मैंने एकबार एकान्त में प्रद्युम्न से कहा कि हे यदुनन्दन मैंने

इत्येकदा रहसि वाचि मयेरितायां
तस्याविरास मनसोऽतिरसो विकार ॥ १३ ॥

ततः प्रभृति—

निःश्वासान् बहुशो विमुञ्चति निशोन्निद्रारुणे लोचने
शून्ये क्वापि मुधा निधाय बहुधा संमीलयन् ध्यायति ।
म्लायन्मन्मथबाणविश्लथपरिक्षामालसैरङ्गकै-
रन्योपक्रम एव किञ्चिदनुपक्रान्तान्वयं जल्पति ॥ १४ ॥

किञ्च प्रियसखि, यथा तमुन्माथिना मन्मथव्यथाव्यतिकरेण निघेयीकृतमपश्य तथावधारयामि कियद्भिर्वासरैर्दनुजपुरान्त पुर प्राप्त एव प्रद्युम्न इति ।

प्रभावती—(आत्मगतम्) अवि णाम एदं हुविस्सदि । (अपि नाम एतद् भविष्यति)।

तरलिका—एदं भोदु, परतु पिअसहि, वज्जपुरं क्खु एदं असभाविदो एत्थ परपक्खमनुवत्तमाणाण पवेसो । (एव भवतु परन्तु प्रियसखि, वज्रपुरं खल्वेतद्, असभावितोऽत्र परपक्षमनुवर्तमानाना प्रवेश')।

देखा है कि राजकुमारी प्रभावती गुप्तरूप से तुमपर स्नेह करती है तब उनके मन की स्थिति विचित्र हो गई थी ॥ १३ ॥

उसके बाद से—

वह लम्बी साँसें लिया करते हैं, रात मे जगे रहने से निद्रारुण नयनों को व्यर्थ भाव से कहीं लगाकर या आँखें मूदकर ध्यान किया करते हैं, कन्दर्पबाणकृत पराभव से म्लान अङ्गों से युक्त प्रद्युम्न अन्य प्रकरण मे अन्य कथा असम्बद्ध रूप मे कहने लगते हैं ॥ १४ ॥

प्रियसखि, मैंने जिसतरह की कामवेदना से वशीकृत प्रद्युम्न के दर्शन पाये थे, उससे तो मैं समझती हूँ कि कुछ ही दिनो मे राक्षसराज के अन्तःपुर मे प्रद्युम्न आये ही हुए हैं ॥

प्रभावती—(स्वगत) क्या यह भी होगा ?

तरलिका—ऐसा ही होवे । परन्तु—प्रियसखि, यह वज्रपुर है, इसमें विपक्षवर्ती का प्रवेश असभावित है ।

प्रभावती—(सोद्वेगम्) (आत्मगतम्) सच्चं तरलिआ वाहरदि। (सत्यं तरलिका व्याहरति)।

शुचिमुखी—(सावलेपम्) यत् किञ्चिदेतत्।

तरलिका—(साभ्यर्थनम्) अत्थि कोवि एत्थ वि णीतिमग्गो। (अस्ति कोप्यत्रापि नीतिमार्गः)।

शुचिमुखी—श्रूयताम्, कथितमिदमेकदा भर्तृदारिकयैव केनचित् कुतूहलेन, महाराजवज्रनाभस्य पुरतः।

प्रभावती—सच्चं, सहि, कहिदं ज्जेव मए तादस्स अग्गदो जं जाणादि पण्डिअहंसी विअड्ढमहुरं देसंतरवुत्ताइं मंतिदुं त्ति। (सत्यं सखि, कथितमेव मया तातस्याग्रतो यत् जानाति पण्डितहंसी विदग्धमधुरं देशान्तरवृत्तान्तं मन्त्रयितुमिति)।

शुचिमुखी—तेनैव प्रत्ययेनैकदा क्रीडाकमलिनी-षण्डतीर-मण्डलशैवलं स्वैरं चरन्तीमाहूयमामपृच्छन्महीपतिः।

तरलिका—होन्ति ज्जेव कोतूहलपिआइं राअहिअआइं। (भवन्त्येव कौतूहलप्रियाणि राजहृदयानि)।

प्रभावती—(उद्विग्न भाव से) (स्वगत) तरलिका ठीक ही कह रही है।

शुचिमुखी—(सगर्वभाव से) यह कुछ कह रही है।

तरलिका—(अभ्यर्थना के साथ) क्या इसमें कुछ राजनीति है ?

शुचिमुखी—सुनो, राजकुमारी ने महाराज वज्रनाभ के सामने एकबार मेरे प्रसङ्ग में कहा था—

प्रभावती—हाँ सखि मैंने पिताजी के सामने मे कहा था कि यह पण्डित-हंसी चतुरतापूर्ण एवं मधुर देशान्तरवृत्त निवेदित करना जानती है।

शुचिमुखी—उसी परिचय से एक बार क्रीडासरोवर-स्थित शैवाल-मण्डलपर यथेच्छभाव से भ्रमण करती हुई मुझको पुकार कर महाराज ने पूछा था।

तरलिका—राजाओं का हृदय कौतूहलपूर्ण हुआ ही करते हैं।

प्रभावती—सहि कीस पुच्छिदासि तादेण। (सखि कीदृश पृष्टासि तातेन।)

शुचिमुखी—

द्वीपान्तरेषु रुचिराणि सरोवराणि
स्वच्छन्दचारसुलभानि चिरं चरन्त्या।
यानि त्वयातिशयितानि किलाद्भुतानि
संवीक्षितानि वद तानि विदग्धवाणि ॥ १५ ॥ इति।

तरलिका—एत्तिओ ज्जेव वज्जणाभपरिसन्तताण णरेन्दाण वीसामो ज विचित्ताओ कथाओ सुणीअन्ति। (एतावानेव वज्रनाभपरिसन्तप्तानां नरेन्द्राणां विश्रामो यत् विचित्राः कथाः श्रूयन्ते।)

प्रभावती—तदो तदो। (ततस्ततः।)

शुचिमुखी—ततश्चाहमवाप्तप्रसरा किमपरमद्भुतं यन्न युष्मन्नगरे, परन्तु यत्किञ्चिदाख्याय पूरयामि प्रभूणां कुतूहलमित्युपक्रम्य तानि तान्यद्भुतान्यावेदितवती। तस्मिन्नेव प्रस्तावे स्तुतो मया महाद्भुतनिधिर्भद्रो नाम नटः।

प्रभावती—सखि, पिताजी ने क्या पूछा था ?

शुचिमुखी—महाराज ने पूछा था कि हे चतुरभाषणशीले, तुम द्वीपान्तर के मनोहर सरोवरों मे स्वच्छन्दगामी होने के कारण सदा घूमती रहती हो, अतः तुमने जो कुछ अत्यद्भुत देखा हो, वह बताओ ॥ १५ ॥

तरलिका—वज्रनाभ द्वारा सताये गये राजगण के लिये इतना ही तो विश्रामस्थान है कि उन्हें विविध कथाएं सुनने को मिल जाया करती हैं ॥

प्रभावती—इसके बाद क्या हुआ ?

शुचिमुखी—इसके बाद मुझे अवसर मिल गया और मैंने महाराज से कहा कि ऐसा कौनसा अद्भुत है जो आप के नगर मे नहीं है फिर भी मैं कुछ सुनाकर आप का कौतुक पूर्ण करती हूँ। इस प्रकार से भूमिका बनाकर मैंने कुछ अद्भुत वस्तुओं की चर्चा की। उसी प्रसङ्ग मे मैंने अद्भुतनिधि भद्रनामक नट की भी चर्चा की।

प्रभावती—(सबहुमानाद्भुतम्) जो तए पज्जत्तसिणिद्धो सहअरो त्ति आअक्खिदो आसि। (यः त्वया पर्याप्तस्निग्धः सहचर इति आख्यात आसीत्।)

शुचिमुखी—एवम्, ततस्तन्नाट्यावलोकनकुतूहली महाराजस्तदानयनाय मामभ्यर्थितवान्, अहमपि तदङ्गीकृतवती।

तरलिका—तदो किं। (ततः किम्?)

शुचिमुखी—अयि किमद्यापि नावगतो नीतिमार्गः पश्य—

विद्यासु क्रमशिक्षितासु भरतान्नाट्यागमाधीतिनः
स्वाधीनादथ नारदादपि मुनेः संगीतपारङ्गमाः।
वाक्पीयूषपयोधयोऽतिमधुराकाराः कुमारा नट-
व्यापारव्यपदेशतः सुखमिहानेयाः पुरे वृष्णयः ॥ १६ ॥

समधिगतसर्वमायासम्प्रदायापारपौरुषव्यापारे, च कुमारे सर्वमीषत्करम् इति।

प्रभावती—(सानन्दमात्मगतम्) अहो णीदिणिउणत्तणं पण्डिअ-

प्रभावती—(आदर तथा आश्चर्य के साथ) जिसे तुमने अपना अत्यन्त स्नेही तथा सहचर कहा था?।

शुचिमुखी—हाँ, इसके बाद उसके नाट्य को देखने की उत्कण्ठा रखने वाले महाराज ने मुझे उसको बुला लाने को कहा, मैंने भी स्वीकार कर लिया।

तरलिका—इससे क्या हुआ?

शुचिमुखी—अरी, क्या अभी भी तुमने राजनीति नहीं समझी? देखो—

क्रमपूर्वक विद्याओं का अध्ययन करके भरत से नाट्यशास्त्र का अध्ययन करने वाले, स्वतन्त्रविहारी नारद से सङ्गीतशास्त्र की शिक्षा प्राप्त करने वाले एवं मधुर भाषी सुन्दर-मूर्ति यादव कुमारगण नट-व्यापार के बहाने से बिना कष्ट के यहाँ लाये जा सकते हैं ॥ १६ ॥

सभी तरह की माया के ज्ञाता तथा अपारपौरुष प्रवीण कुमारों के लिये यह सर्वथा अनायास साध्य है।

प्रभावती—(सानन्द, स्वगत) आश्चर्य है इस पण्डितहंसी की नीति-

हंसीए। (प्रकाशम्) सरिसं क्खु मन्तिदं पिअसहीए किं उण जइ देव्वं एत्थ अणुऊलं भवे। (अहो नीतिनिपुणत्वं पण्डितहंस्या। सदृशं खलु मन्त्रितं प्रियसख्या किं पुनः यदि दैवमत्रानुकूलं भवतु।)

शुचिमुखी—किमनध्यवसितासि।

अनुकूलमेव दैवं जगति विचित्रस्वभावेऽपि।
यूनोरन्योन्यगुणानुरूपविन्यासमाचरति॥ १७॥

एवञ्च—

कलानाथो राकामिव सहचरीं शम्बरहरः
प्रियामम्भोजालीमिव किरणमाली रमयतु।
जनं क्षोणीरत्नं समुचितगुणे संघटयतो
यशो लब्धादद्वैतं त्रिजगति विधातुर्विलसतु॥ १८॥

प्रभावती—(आत्मगतम्) अहो सवणसुहं सुहासिअं सुइमुहीए। (प्रकाशम्) सहि कत्थ एव्वं सभावीअदि। (अहो श्रवणसुखं सुभाषितं शुचिमुख्या। सखि कथमेवं सभाव्यते।)?

निपुणतापर। (प्रकट) प्रियसखी ने तो ठीक कहा है, यदि भाग्य इसमें साथ दे।

शुचिमुखी—क्यों अधीर हो रही हो?

भाग्य जब अनुकूल होता है तभी इस विचित्र विश्व मे दो—युवक-युवति के हृदयो मे अनुराग की सृष्टि करता है॥ १७॥

इस प्रकार—

जैसे चन्द्रमा रात के साथ तथा सूर्य कमलिनी के साथ विहार करते हैं उसी तरह कामदेव हमारी प्रियसखी के साथ विहार करें और भूतलरत्न सुन्दरी को उपयुक्त युवक से मिलाने वाले ब्रह्मा का अखण्ड यश तीनो भुवन में प्रख्यात हो॥ १८॥

प्रभावती—(स्वगत) प्रभावती के वचन बडे ही श्रवणप्रिय हैं। (प्रकट) किस प्रकार यह सभावना करती हो?

शुचिमुखी—(सरोषम्) अपि कीदृशोऽयमनाश्वासः

प्रभावती—(निःश्वस्य) अप्पणो ज्जेव भाअधेअस्स दोसो जेण अत्ताहीणा विअ दुल्लहजणाणुराअमणोरहेहिं उम्मादिअ एआरिसिं अवत्थन्तरं पाविदा म्हि। (आत्मन एव भागधेयस्य दोषो येनात्माधीनेवात् दुर्लभजनानुरागमनोरथैरुन्माद्य एतादृशमवस्थान्तरं प्रापितास्मि।)

नवलिका—किं क्खु एदं भणासि। साहीणा ज्जेव तुमं दुल्लहो उण जणो उवाएण सुलहो ज्जेव करीअदि। (किं खल्वेतद् भणसि स्वाधीनैव त्वं दुर्लभः पुनर्जन उपायेन सुलभ एव क्रियते।)

प्रभावती—(सरोषम्) अइ सच्छन्दचारिणि, कुलकण्णआओ क्खु मादापिदरेहिं पराहीणाओ होन्ति। (अयि स्वच्छन्दचारिणि, कुलकन्यकाः खलु मातापितृभ्यां पराधीना भवन्ति।)

शुचिमुखी—अस्त्येव तथापि—

अयं लोकाचारः प्रभुरिह कुमारीजनयिता
गुणोपेक्षाकृष्टं क्वचिदपि जने संघटयति।

शुचिमुखी—(क्रोधपूर्वक) यह अविश्वास कैसा ?

प्रभावती—(निःश्वास छोड़कर) यह मेरे भाग्य का दोष है जिसने मुझ पराधीन कन्या को दुर्लभजन में अनुरक्त करके मनोरथों से उन्मादिनी बनाकर इस स्थिति में पहुँचा दिया है।

नवलिका—ऐसा क्यों कहती हो, तुम स्वाधीन ही हो, और दुर्लभजन को भी उपायों से सुलभ किया जाता है।

प्रभावती—(क्रोधपूर्वक) अरी स्वच्छन्दचारिणी, कुलकन्यायें माता-पिता से पराधीन हुआ करती हैं।

शुचिमुखी—बात तो ऐसी ही है कि उत्पन्न करने वाला कुमारी कन्या का अभिभावक होता है, वह गुणों की उपेक्षा करके अपनी कन्या को किसी के साथ जोड़ देता है। यदि युवती कन्या एवं युवक वर एक दूसरे के

अथाऽप्यन्य यूनोरुचितगुणलोभाद्दनद्धरो
प्रभुत्वेन प्रेम्ण परमरमणीय परिणय ॥ १९ ॥

प्रभावती—(वारयन्ती) विरम विरम ण क्खु तुम्हाण साहसो पण्णासाइ सुणिस्स । (विरम विरम न खलु युष्माक साहसोपन्यासान् श्रोष्यामि ।)

तरलिका—सहि सुइमुही, सच्च पहावदी भणादि कि सुणाविदेण, जइ फलेण ज्जेव ण दसेसि । (सखि शुचिमुखि स य प्रभावती भणति किं श्रावितेन यदि फलेनैव न दर्शयसि ।)

शुचिमुखी—सत्य सोऽयमस्माकमत परमपराध ।

प्रभावती—(तरलिका सासूयमालोक्य) (हसी प्रति) सहि पसीद पसीद काए एत्तिओ मनोरहो, को उण एथ तुम्हाण व अवराहो । (इति बाष्पोपरोध नाटयित्वा सोपालम्भ) एत्तिअ ज्जेव तुम अवरज्झासि ज तस्स महामहग्घरूअलच्छीमणहराइ अगाइ वीसमणिब्भर पलोअन्ती वारवारमेक्कल्लिआ लोअणाणन्दमणुहविअ उण वि चित्तगदाइ वि ताइ म ण दसेसि । (सखि प्रसीद प्रसीद कस्या एतावान् मनोरथ क पुनरत्र युष्माकमप्यपराध ? एतावदेव त्वमपराद्धासि यत्तस्य महामहार्घरूपलक्ष्मी मनोहराणि अङ्गानि विस्रम्भनिर्भर प्रलोकमाना वारवारमेकाकिनी लोचनानन्द मनुभूयापि पुनरपि चित्रगतानि अपि तानि मे न दर्शयसि ।)

गुणो पर आकृष्ट होकर प्रेम के प्रभाव मे परिणयसूत्र मे आबद्ध होते हैं तो बहुत अच्छी बात होगी ॥ १९ ॥

प्रभावती—(रोकती हुई) चुप रहो चुप मैं तुम लोगों की ऐसी साहस की बातें नही सुनती ।

तरलिका—सखी शुचिमुखी प्रभावती ठीक कहती है यदि फलत दर्शन नहीं करा सकती हो तो सुनाने से क्या लाभ ?

शुचिमुखी—सचमुच यह हम लोगो का अपराध है ।

प्रभावती—(तरलिका की ओर असूया की दृष्टि से देखकर) (हंसी के प्रति) सखि क्षमा करो किसका इतना बडा मनोरथ होगा ? फिर तुम्हारा इसमे क्या अपराध है ?

तरलिका—सहि उआलम्भणिज्जं ज्जेव उआलद्धासि भट्टिदारिआए, ता दंसेहि मे पडिछ्छंदअं। (सखि, उपालम्भनीयमेव उपालब्धासि भर्तृदारिकया, तद्दर्शय मे प्रतिच्छन्दकम्।)

शुचिमुखी—दर्शयामि, समाह्रियन्तां चित्रोपकरणानि।

तरलिका—(*निष्क्रम्य, गृहीतचित्रोपकरणा पुनः प्रविश्य*), सहि, एदाइं चित्तोवअरणाइं। (इति समर्पयति) (सखि एतानि चित्रोपकरणानि)।

शुचिमुखी—(गृहीत्वा नाट्येन चिरादभिलिख्य दर्शयति)

प्रभावती—(सानन्दमवलोक्योत्कम्पते)

तरलिका—(विलोक्य) सहि, पिअसहीए दुव्वारहिअअवेअणुव्वेअणिव्वारअं वल्लहं लिहन्तीए तए णिरन्तरोपक्कन्तणिक्कदणसरणिअप्पहारदारुणो मअरद्धओ एत्थ आलिहिदो। अदो ज्जेव पिअसही वि उक्कम्पिदा। (सखि, *प्रियसख्या दुर्वारहृदयवेदनोद्वेगनिवारकं वल्लभं लिखन्त्या*

(रुलाई को रोक कर, उलाहने के स्वर में) तुम्हारा इतना ही अपराध है कि तुम स्वयं उस महानुभाव के अति महार्घ रूप-लक्ष्मी से युक्त अङ्गों को अकेली बार बार देखकर लोचनों को आनन्दित करके भी मुझे चित्र में भी उनके दर्शन नहीं कराती हो।

तरलिका—सखि, भर्तृदारिका द्वारा उचित ही उलाहना दिया जा रहा है अच्छा, तो तुम वह चित्र दिखला दो।

शुचिमुखी—दिखलाती हूँ, चित्र के साधन प्रस्तुत करो।

तरलिका—(जाकर, चित्र के साधनों को लिये हुए पुनः प्रवेश करके) सखि, ये लो चित्र के साधन। (चित्र के साधन देती है)

शुचिमुखी—(साधन लेकर, अभिनयपूर्वक चित्र बना कर दिखलाती है)

प्रभावती—(सानन्द देखकर कांप उठती है)

तरलिका—(देखकर) सखि, तुमने तो हमारी प्रियसखी राजकुमारी के हृदय में वर्तमान वेदना को निवारित करने वाले प्रियतम को चित्रित करते

त्वया निरन्तरोपन्ना-तनिष्करुणशरनिकरप्रहारदारुणो मकरध्वजोऽत्रालिखितः, अत एव प्रियसखी अपि अत्रोत्कम्पिता ।)

प्रभावती—सहि, त क्खु विहावेमि, कुदो उक्कम्पिदह्मि । (सखि, तत्खलु विभावयामि, कुत उत्कम्पितास्मि ।)

शुचिमुखी—(सस्मितम्)

उत्कम्पितानि करभोरु तवाङ्गकानि
कान्तावलोकनकुतूहलविश्लथानि ।
नोत्कम्पिनी भवति सागरवारिवीची
राकानिशाकरविलोकनमन्तरेण ॥ २० ॥

(तरलिका प्रति) अयि तरलिके, किं प्रमुग्धासि, प्रद्युम्नो मकरध्वज इत्यनर्थान्तरम् । तथाहि—

तस्मिंस्तपःपरिभवे निजनेत्रभासा
भस्मीकृतस्मरणजन्मकलेवरस्य ।
तस्याविरास करुणातरुणाभितापं
तत्कालमेव परिदेवितमिन्दुमौले. ॥ २१ ॥

हुए निरन्तर निर्दयशरवर्षाकारी भयङ्कर कन्दर्प को चित्रित कर दिया है, इसीसे तो हमारी सखी काप भी गई है ।

प्रभावती—सखि, यही तो मैं भी सोच रही थी कि मैं काप क्यो उठी हूँ ।

शुचिमुखी—(हँसती हुई) अपने प्रियतम को देखकर सात्त्विक भावात्मक तुम्हारे अङ्ग कम्पित हो उठे, पूर्णिमा के चन्द्रमा को देखे बिना सागर की तरङ्ग कभी भी नहीं काप सकती है ॥ २० ॥

(तरलिका के प्रति) अरी तरलिके, क्यो भोली बन रही है, प्रद्युम्न मकरध्वज यह तो पर्याय है.

महादेव ने अपनी तपस्या में विघ्न पड़ते देखकर कन्दर्प के शरीर को भस्मसात् कर दिया, परन्तु उनके हृदय में अपने निर्मम कृत्य पर करुणा के साथ पश्चात्ताप उत्पन्न हुआ ॥ २१ ॥

ततश्च स भगवान्—भवानीपतिर्यदुकुलजन्मनो जनार्दनादेतस्य जन्मान्तर प्रसादीकृतवान्। तमेनं पद्मनाभसद्मनि जातमात्रमजातसप्ताहमात्मनो मृत्युभूत महामुनेर्नारदादुपश्रुत्यापजहार शम्बरासुर ।

तरलिका—अच्चरिअ अच्चरिअ, कुदो उण सर्वन्तरसक्खिदाए तक्खण विण्णादतिहुअणववसिदेण णिग्गहाणुग्गहप्पहुणा हरिणा वि एद उवेक्खिद। (आश्चर्यम्, आश्चर्यम्, कुत पुन सर्वान्तरसाक्षितया तत्क्षण विज्ञातत्रिभुवनव्यवसितेन निग्रहानुग्रहप्रभुणा हरिणाप्येतदुपेक्षितम्)।

शुचिमुखी—किमाश्चर्यम्, प्राकृतेषु प्रपञ्चेषु प्रविश्य क्रीडतो भगवतो मायामानवस्य किमपीषदपि क्रीडनम्। अपि च—

लोकत्रयप्रतिभय स्वयमेव सद्यो
यद्यात्मजन्महरणे हरिणा हत स्यात्।
किन्द्वारतामपरमञ्चतु पञ्चबाणे
कैशोरशोभिनि यशोऽभिनिवेशनस्य ॥ २२ ॥

इसके बाद महादेव ने यदुकुलजन्मा जनार्दन से कन्दर्प को जन्म ग्रहण करने का बरदान दिया, इस प्रकार कन्दर्प ने जभी भगवान् कृष्ण के घर जन्म लिया, तभी नारद ने शम्बरासुर को जाकर कह दिया कि तुम्हे मारने वाला कन्दप भगवान् के घर पैदा हुआ है सुनते ही शम्बर ने कन्दर्प का अपहरण कर लिया।

तरलिका—आश्चर्य होता है कि सर्वान्तर्यामी होने के कारण त्रिभुवन के व्यवसायो से परिचित रहनेवाले निग्रहानुग्रहसमथ प्रभुनाथ कृष्ण ने भी इस बात की उपेक्षा कैसे कर दी?

शुचिमुखी—इसमे क्या आश्चर्य है। प्राकृत प्रपञ्च मे प्रवेश करके क्रीडा करनेवाले भगवान् के लिये यह एक माया का खेलमात्र है। और-लोकत्रय भयकारी भगवान् कृष्ण यदि पुत्रापहारी शम्बरासुर को स्वय मार देते तो बालक पञ्चबाण को बाल्यावस्था मे ही शम्बरासुरवधजन्य यश दिलाने का कौन सा मार्ग होता ॥ २२ ॥

तरलिका—तदो तदो। (ततस्तत)।

शुचिमुखी—ततश्चायमतिदारुणोऽपि श्लथावयवो बाल इति स्वहस्तेन हन्तुमेनमपारयन् अम्बुराशौ चिक्षेप।

प्रभावती—(सत्रासम्) दारुणा क्खु महासुरा अइदुक्कराइं करन्ति, सहि पसीद पसीद, कघेहि कध जीविदो त्ति। (दारुणा खलु महासुराः अतिदुष्कराणि कुर्वन्ति सखि प्रसीद प्रसीद कथय कथ जीवित इति।)

तरलिका—(सकरुणम्) पसारिअमुहकन्दरा महामच्छआ सोआसनिलम्मि णिवलिआइ गिलन्ति त्ति सुणीअदि। (प्रसारितमुखकन्दरा महामत्स्यका श्वासानिले निपतितानि गिलन्तीति श्रूयते।

शुचिमुखी—तदेव सवृत्तम्।

प्रभावती—(सभयोत्कम्पम्) सहि असमत्थम्हि सुणिदु पि तारिसस्स महामहग्घजन्मणो एआरिसाइ अवत्थतराइ। (सखि असमर्थास्मि श्रोतुमपि तादृशस्य महामहार्घजन्मन एतादृशान्यवस्थान्तराणि)।

तरलिका—तदो तदो। (ततस्तत)।

तरलिका—इसके बाद क्या हुआ ?

शुचिमुखी—यद्यपि शम्बर बड़ा ही निर्दय था फिर भी कोमल शरीर बालक को मारने मे असमर्थ होकर उसने कदप को समुद्र मे फेंक दिया।

प्रभावती—(डरकर) ये भयानक महासुर नितान्त निर्मम कार्य करते हैं कृपा करो यह बताओ कि फिर वह जो कैसे गये।

तरलिका—(करुणभाव से) सुना जाता है कि मुखकन्दरा फैलाये हुए महामत्स्य उन वस्तुओ को निगल जाते हैं जो उनकी श्वासवायु की सीमा मे आ जाती है।

शुचिमुखी—वही तो हुआ।

प्रभावती—(भयकृत कम्प के साथ) मैं सुनने में भी असमर्थ हूँ। वैसे महार्घ जीवन पुरुष की ऐसी अवस्थायें ?

तरलिका—इसके बाद ?

शुचिमुखी—ततश्च केनापि सागरमत्स्याहारिणा धीवरेणाहृतस्य कस्यचिन्महापाठीनस्य पाट्यमाने जठरे जीवन्नासादितो वासुदेवसूनुः।

प्रभावती—(सानन्दम्) दिठ्ठिआ पसण्णं भअवदीए भविदव्वदाए। (दिष्ट्या प्रसन्न भगवत्या भवितव्यतया ।)

शुचिमुखी—एवमेतत् ।

भवितव्यता भगवती गमयति पीतामृतानपि विनाशम् ।
क्वचिदन्तकभवनादपि जन्तूनानीय जीवयति ॥ २३ ॥

अपरं च—

निरालम्बामम्बामवनिमवतीर्णाञ्जलधिजा-
मसौभाग्यं भाग्यं यदुकुलविभूतेर्भगवतः ।
अधन्यं लावण्यं हतसमुदयं हन्त विनयं
क्व निर्वीरामुर्वीं विधिरपि विधातुं प्रभवतु ॥ २४ ॥

प्रभावती—(सप्रमोदम्) सहि जाणासि सच्चं रमणीअं च मन्तिदुं, ता अग्गदो कधेहि ! (सखि, जानासि सत्यं रमणीय च मन्त्रयितुम् , तदग्रतः कथय ।)

शुचिमुखी—इसके बाद समुद्र मे मछली पकडनेवाले किसी मलाह ने एक बडी सी मछली पकडी उसने उसका पेट चीरा तो उसमे उसे जीवित अवस्था मे वासुदेवतनय मिले ।

प्रभावती—भगवती भवितव्यता ने कृपा की ।

शुचिमुखी—यही बात है ।

भगवती भवितव्यता अमृत पीने वालो को भी समाप्त कर देती है, और कभी प्राणियों को यमराज के घर से भी ले आकर जिला देती है ॥ २३ ॥

और—ब्रह्मा भी किस प्रकार पृथ्वी पर अवतीर्ण माता लक्ष्मी को निरालम्ब, यदुकुलविभूति भगवान् कृष्ण के भाग्य को असौभाग्य, लावण्य को अधन्य, विनय को उदयरहित, एव पृथ्वी को निर्वीर बनाते ? ॥ २४ ॥

प्रभावती—सखि, सचमुच तुम सत्य तथा सुन्दर कथा कहना जानती हो । आगे की कथा सुनाओ ।

शुचिमुखी—ततश्च तेनैव तीर्थेन स बाल कालान्तरे शम्बरान्त-पुरमेव दैवतो गतवान्, तत्रैव च मत्स्योदरजात कुमार इति कुतूहलेन पालितो लालित क्रमेण प्रादुर्भूतयौवन प्राप्तापरिमेयमायासप्रदायोऽधीताखशास्त्रश्चाभूत्।

तरलिका—अच्चरिअ अच्चरिअं, ज तारिसस्स महावेरिणो घरम्मि ज्जेव सुहवड्ढिओ एआरिस अवत्थतर पत्तो। (आश्चर्यम्, आश्चर्यम्, यत्तादृशस्य महावैरिणो गृह एव सुखवर्धित एतादृशमवस्थान्तर प्राप्त ।)

शुचिमुखी—अवस्थान्तर किमुच्यते, केषुचित्कालेषु स महावीर वासुदेवगृहे जातमात्मान नारदान्मुनेर्विज्ञाय कुपितो योद्धुमाजुहाव महासुरम, कालशम्बरश्च स्वपोषितो बाल इत्यवहेलया हन्यतामित्यसुर-सैन्यमादिदेश।

प्रभावती—(सम्भ्रमम्) तदो तदो। (ततस्तत ।)

शुचिमुखी—ततश्च तेषु तेषु महासुरेषु कुमारक्रोधकालानलाहुती-

शुचिमुखी—इसके बाद वह बालक उसी उपाय से समय पर सयोगवश शबरासुर के अन्त पुर मे पहुँच गया, वहाँ पर मछली के पेट से निकला हुआ लडका है इसी कुतूहल से पलता रहा, क्रमश युवा हुआ और उसने माया-सम्प्रदाय तथा शास्त्रों की शिक्षा पाई।

तरलिका—आश्चर्य है कि उस प्रकार के महाशत्रु के घर मे ही सुख से पला और ऐसी अवस्था प्राप्त की।

शुचिमुखी—अवस्थान्तर के विषय मे क्या कहें कुछ दिन बीतने पर उस वीर बालक ने नारद मुनि के मुख से सुना कि वह वासुदेव के घर पैदा हुआ था, इस पर वह कुपित हो गया, और उसने शम्बरासुर को युद्ध के लिये ललकारा। काल स्वरूप शंबरासुर ने अपने द्वारा पोषित बालक है इसलिये अवज्ञाभाव से असुर सैन्य को उसे मारने की आज्ञा दी।

प्रभावती—(घबडाहट के साथ) तब क्या हुआ?

शुचिमुखी—तब वे महासुर सब कुमार की क्रोधाग्नि की ज्वाला मे

भूतेषु निपतितेषु स्वयमपि प्रद्युम्नद्युमणिव्यवसितविलीयमानमाया-महान्धकारेण—

क्रोधान्धेन महासुरेण मुमुचे मायामयो मुद्गरः।

प्रभावती—(सत्रासम्) हा महाभाअ, (हा महाभाग ।)

सद्यः सोऽपि गिरा स्मरेण गिरिजामाराध्य मोघीकृतः॥

प्रभावती—(सानन्दम्) दिठ्ठिआ पसण्णं भअवदीए गिरिणन्दिणीए, तदो तदो। (दिष्ट्या प्रसन्नं भगवत्या गिरिनन्दिन्या, ततस्ततः।)

शुचिमुखी—ततश्च—

एतेनातिलघूत्प्लुतिप्रणयिना विश्वासनेनासिना
दूरादम्बरचारिशम्बरशिरश्छित्वा क्षितौ पातितम्॥ २५॥

तरलिका—(सानन्दम्) दिठ्ठिआ हदो दुठ्ठदुज्जादो। तदो तदो। (दिष्ट्या हतो दुष्टदुर्जातः ततस्ततः।)

शुचिमुखी—अनन्तरञ्च शाम्बरमयं विमानमारुह्य द्वारवतीमुपगतः सम्प्रति जगदाधिपत्ययौवराज्यलक्ष्मीमलंकरोति।

आहुति बन गये तब शम्बरासुर ने स्वयं—प्रद्युम्नरूप सूर्य की किरणों से मायारूप अन्धकार के विलीन हो जाने पर—कुपित होकर मायामय मुद्गर से प्रहार किया।

प्रभावती—(भय से) हा महाभाग, तत्काल प्रद्युम्न ने गिरिजा की आराधना द्वारा शम्बर के मुद्गर को व्यर्थ कर दिया।

प्रभावती—(सानन्द) भाग्यवश भगवती गिरिनन्दिनी ने प्रसन्नता प्रकट की। इसके बाद ?

शुचिमुखी—इसके बाद प्रद्युम्न ने वेग से कूद कर विभासन नामक खड्ग से आकाशचारी शम्बर का सिर काट कर पृथ्वी पर गिरा दिया॥ २५॥

तरलिका—(सानन्द) भाग्यवश दुष्ट असुर मारा गया, इसके बाद क्या हुआ ?

शुचिमुखी—इसके बाद प्रद्युम्न शम्बरासुर के विमान पर चढ़कर द्वारका आ गये, इन दिनों वह सधारस्वामी के युवराज पद को अलङ्कृत कर रहे हैं।

तरलिका—दिठ्ठिआ महाकुलप्पहवे महामहग्घपुरिसत्थे भअवदि कुसुमाउहे ज्जेव पिअसहीए परोक्खाणुराओत्ति। (दिष्ट्या महाकुलप्रभव महामहार्घपुरुषार्थे भगवति कुसुमायुध एव प्रियसख्या परोक्षानुराग इति)।

शुचिमुखी—किमधिकम्, हिमगिरिशिखरशिलोद्भवापि भागीरथी सागरमेवावतरति।

तरलिका—साहु सुहासिदं, एत्तिअं उण सङ्कणिज्जं ज असुरावक्खन्ददारुणा दे देवजम्माणो त्ति। (साधु सुभाषितम् एतावत्पुनः शङ्कनीयं यदसुरावस्कन्ददारुणास्ते देवजन्मान इति)।

शुचिमुखी—अयि तरलिके, श्लाघनीयमेव पितृकुलादुन्नतं पतिकुलं पुरन्ध्रीणाम्।

प्रभावती—(आत्मगतम्) हिअअगमं ज्जेव सुइमुही वाहरदि, (प्रकाशम्) (निःश्वस्य) पिअसहि, किं पुणो वि पहादम्मि तहिं ज्जेव तुमं गमिस्ससि। (हृदयङ्गममेव शुचिमुखी व्याहरति प्रियसखि किं पुनरपि प्रभाते तत्रैव त्वं गमिष्यसि ?)

तरलिका—भाग्यवश हमारी प्रिय सखी का परोक्षानुराग ऐसे ही पुरुष पर है जो महाकुलप्रसूत महापौरुषशाली एवं स्वयं कामदेव हैं।

शुचिमुखी—अधिक क्या कहूँ, हिमालय से निकली गङ्गा सागर में ही उतरती है।

तरलिका—बहुत अच्छा कहा तुमने। इतनी ही शङ्का है कि वे देवीजन असुरों पर आक्रमण करने में बहुत निर्दय हुआ करते हैं।

शुचिमुखी—अरी तरलिका, स्त्रियों का पतिकुल पितृकुल से उन्नत हो, यह तो चाहिये ही।

प्रभावती—(स्वगत) शुचिमुखी दिल की बात ही बताती है। (प्रकट) (सांस छोड़कर) प्रिय सखी, क्या कल सवेरे तुम फिर वहाँ जाओगी ?

शुचिमुखी—(विहस्य) किमबद्धपरिकरा तव शुचिमुखी प्रियसखी निदेशेषु। (स्मयते)

प्रभावती—(व्रीडावैचित्र्यं नाटयति)

(नेपथ्ये)

अस्तोर्वीधरमन्दिरं दिनमणौ प्राप्ते प्रिये दूरतो
रक्तं सत्वरमम्बरं परिदधे स्मेरानना वारुणी।
अन्यासां सहसा दिशामथ मुखान्यालम्बते नीलिमा
मीलन्नीरजलोचना किमधुना पाथोजिनी मुह्यति॥ २६॥

अपि च—

दैवादस्तमुपेयुषि प्रियतमे देवे दिवानायके
मीलद्वारिजलोचनाम्बुजवनी दीर्घामगान्मूर्च्छनाम्।
तामुज्जीवयितुं विरौति विकलं चक्री विमुच्य प्रियं
शोचन्तो विपिनैकनाथ विहगा निर्यान्ति निर्वेदिनः॥ २७॥

शुचिमुखी—तुम्हारी शुचिमुखी ने क्या तुम्हारे आदेश की कभी उपेक्षा की है ? (मुस्कुराती है)

प्रभावती—(लज्जा का अभिनय करती है)

(नेपथ्य मे)

दूर देश से प्रियतम सूर्य के अस्ताचलरूप मन्दिर मे जाते ही वारुणी दिशारूप नायिका ने मुस्कुरा कर रक्त अम्बर धारण कर लिया अन्य दिशाओं के मुख एकाएक मलिन हो उठे और कमलिनी तत्काल कमलरूप नेत्र मूंद कर मूर्च्छित हो गई॥ २६॥

और—भाग्यवश प्रियतम दिनकर के अस्त होते ही कमलवनी नायिका कमलरूप नयन बंद करके दीर्घकालिक मूर्च्छा को प्राप्त हो गई, चक्रवाकी उसे पुनर्जीवित करने के लिये अपने प्रिय का परित्याग करके चिल्ला रही है, और चिन्तामग्न पक्षीगण विषण्ण होकर चिल्लाते हुए इधर उधर भटक रहे हैं॥ २७॥

तरलिका—(आकर्ण्य) कध परागदो उजेव संज्झासमओ । (इति सर्वे समुत्तिष्ठन्ति) (कथ परागत एव सन्ध्यासमय. ।)

शुचिमुखी—तदादेशय तरलिके भर्त्तृदारिकायाः कन्यान्तःपुरमार्गम् ।

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

माधवीमण्डपो नाम द्वितीयोऽङ्कः ।

तरलिका—(सुनकर) क्यों, सन्ध्यासमय हो गया ।

(सभी उठ जाते हैं)

शुचिमुखी—तरलिके तुम राजकुमारी को कन्यान्तःपुर का मार्ग दिखलाओ ।

(सभी का प्रस्थान)

माधवीमण्डप नामक द्वितीय अङ्क समाप्त

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी—(पुरोऽवलोक्य) सहि सालभञ्जिए, (सखि शालभञ्जिके ।)

(प्रविश्यापरा चेटी)

सहि वासन्तिए, कहिं आगदासि ? (सखि वासन्तिके, कुत्रागतासि ?)

वासन्तिका—पेस्सिदह्मि देवीए रुक्मिणीए इमेसु दिअहेसु कुदोवि कारणादो सन्तत्तसरीरस्स कुमारपज्जुण्णस्स पउत्तिणिमित्तं । (प्रेषितास्मि देव्या रुक्मिण्या एषु दिवसेषु कुतोपि कारणात् सन्तप्तशरीरस्य कुमारप्रद्युम्नस्य प्रवृत्तिनिमित्तम् ।)

शालभञ्जिका—किंवावारा दाणीं देवी ! (किंव्यापारेदानी देवी ।)

वासन्तिका—अज्जवि कुदो वि तं ज्जेव दिव्वहंसउणं अन्तेउरदीहिआपरिसरे परावदिदं अत्थि । (यद्यपि कुतोपि तदेव दिव्यहंसकुलम् अन्तःपुरदीर्घिका परिसरेपरापतितम् अस्ति ।)

शालभञ्जिका—(सकौतुकम्) तदो तदो । (ततस्ततः ।)

(चेटी का प्रवेश)

चेटी—(आगे की ओर देखकर) सखि शालभञ्जिके,

(प्रवेश करके, दूसरी चेटी)

सखि, वासन्तिके, कहाँ चली हो ?

वासन्तिका—देवी रुक्मिणीने भेजा है कि इन दिनों किसी अज्ञात कारणवश सन्तप्त-शरीर कुमार प्रद्युम्न का समाचार ज्ञात करो ।

शालभञ्जिका—देवी रुक्मिणी क्या कर रही हैं ?

वासन्तिका—आज भी वही दिव्यहंसकुल अन्तःपुरसरसीतट पर कहीं से आकर उतरा है ।

शालभञ्जिका—(कौतुकपूर्वक) इसके बाद ?

वासन्तिका—तदो सा पण्डिदहसी सुइमुही भद्देण भादुणा बलभद्देण सहोवासीणस्स भअवदो वासुदेवस्स समीवमाणीता वाहारिदा अ विवित्ते किंपि किंपि रहस्स तदो सा भअवदा विसज्जिदा सच्चभामापहुदीणं सवत्तीण मज्झे समासीणाए देवीए सआस समागदा। त क्खु दाणि देवी भअवदीए इन्द्राणीए सोहग्गाइ पुच्छदि। तुम उण कहिं आगदा असि। (ततः सा पण्डितहंसी शुचिमुखी भद्रेण भ्रात्रा बलभद्रेण सहोपासीनस्य भगवतो वासुदेवस्य समीपमानीता व्याहारिता च विविक्ते किमपि किमपि रहस्य, तत सा भगवता विसर्जिता सत्यभामाप्रभृतीना सपत्नीना मध्ये समासीनाया देव्या सकाश समागता। ता खलु इदानी देवी भगवत्या इन्द्राण्या. सौभाग्यानि पृच्छति। त्व पुन कुत्रागतासि ?।)

शालभञ्जिका—अह क्खु जहिं ज्जेव तुम पत्थिदासि तदो ज्जेव परावुत्ता ह्मि। (अह खलु यत्रैव त्वं प्रस्थितासि ततएव परावृत्तास्मि।)

वासन्तिका—ता किं वहूए माआवदीए तत्थ तुम अणुप्पेसिदा। (तद् किं वध्वा मायावत्या तत्र त्वमनुप्रेषिता ?)

शालभञ्जिका—अध इं। (अथ किम् ?)

वासन्तिका—किं त्ति। (किमिति ?)

वासन्तिका—इसके बाद वही पण्डितहंसी शुचिमुखी भद्र भाई बलभद्र के साथ बैठे हुए वासुदेव के पास बुलाई गई, एकान्त मे उसने कुछ रहस्य बातें कहीं, भगवान् ने उसे जाने की अनुमति दी, फिर वह सत्यभामा आदि सपत्नियो के साथ बैठी हुई देवी रुक्मिणी के पास आई।

इस समय देवी उससे इन्द्राणी के सौभाग्य के विषय मे पूछ रही हैं। तुम कहो कि किधर चली हो ?

शालभञ्जिका—मैं तो वहां से आरही हूँ जहाँ से तुम आती हो।
वासन्तिका—तो क्या बहू मायावती ने तुम्हे वहाँ भेजा है ?
शालभञ्जिका—और क्या ?
वासन्तिका—क्या बात है ?

शालभञ्जिका—(निःश्वस्य) सहि किं कहेमि, केत्तिआ अवि दिअहा कुमारमणवलोअन्तीए माआवदीए अदिवाहिदा । अज्ज उण उत्तम्ममाणाए ताए विसआदभरिअम्पि हिअअं अवट्ठम्भिअ 'हञ्जे सालभञ्जिए मम कारणादो तुमं पि गदुअ अज्जउत्तं' त्ति भणिअ अणुप्पेसिदह्मि । (सखि, किं कथयामि कियन्तोऽपि दिवसा कुमारमनवलोकयन्त्या मायावत्या अतिवाहिता । अद्य पुनरुत्ताम्यन्त्या तया विषादभरितमपि हृदयमवष्टभ्य 'हञ्जे सालभञ्जिके मम कारणात् त्वमपि गत्वा आर्यपुत्रम्' इति भणित्वानुप्रेषितास्मि ।

वासन्तिका—ता किं तए पलोइदं । (तत् किं त्वया प्रलोकितम् ?)

शालभञ्जिका—किं पलोएमि काए वि महामहग्घभागधेआए कए सरीरसन्तावेण पराहीणो विअ पलोइदो । अह उण झत्ति ससम्भमं पडिहारपडिसिद्धा तक्खणं उव्वेदिअ प्पासादादो णिक्कन्तह्मि । (किं प्रलोकयामि, कस्या अपि महामहार्घभागधेयाया कृते शरीरसन्तापेन पराधीन इव प्रलोकित । अहं पुनर्झटिति ससम्भ्रमं प्रतिहारप्रतिषिद्धा तत्क्षणमेवोत्थाय प्रासादान्निष्क्रान्तास्मि ।)

वासन्तिका—ता तहिं कहं अम्हाण पवेसो तदो इदो ज्जेव पडिणिउत्ता एत्तिअं गदुअ णिवेदेमि देवीए, तुमम्पि सम्पदं दाहगत्तम्मारिअं माआवदिं गदुअ समासासिदं करेहि त्ति। [निष्क्रान्ते] (तत्र कथ

शालभञ्जिका—(निःश्वास छोडकर) सखि क्या कहूँ ?

मायावती ने कितने दिन कुमार को बिना देखे बिता दिये, अपने विषादपूर्ण हृदय को कड़ा कर के उन्होंने आज मुझ से कहा है कि सखि शालभञ्जिके, मेरी ओर से आर्यपुत्र के पास जाकर तुम कहो ।

वासन्तिका—तो तुमने वहाँ क्या देखा ?

शालभञ्जिका—क्या देखती ? मैंने देखा कि किसी भाग्यशालिनी ललना के लिये कुमार सन्तप्त शरीर तथा पराधीन हो रहे हैं । मैं शीघ्र घबड़ाए हुए प्रतीहार से रोकी जाकर उस प्रासाद से निकल गई । वहाँ जाकर देखो से

मस्माकं प्रवेश', तत इत एव प्रतिनिवृत्ता एतावद् गत्वा निवेदयामि देव्यै, त्वमपि साम्प्रत दुर्भगत्वमारिता मायावती गत्वा समाश्वासिता कुरु–इति ।)

(प्रवेशकः)

(तत प्रविशति विरहावस्थः कुमारः)

कुमारः—अहो निरवलम्बनो मनोरथः, तथाहि—

प्रतिनवरसोत्सिक्ताप्यन्तर्मनोरथकन्दली
कथमपि कृतैर्द्वित्रैः पत्रैः परं परिशुष्यति ।
मदनदहनज्वालाजालावृतोऽपि रतोद्गतः
सुखमिह शत शाखाः सूते विषादविषाङ्कुर. ॥ १ ॥

यतः—

विश्वोपश्रुतवैरधारिणि महावीरो यदूनां कुले
जीवन् दास्यति दानवः स्वतनयां सम्भावनेयं कुतः ।

निवेदन करती हूँ । तुम भी इस समय दुर्भाग्य से पीड़ित मायावती के पास जाकर उन्हें आश्वस्त करो ।

(दोनो का प्रस्थान)

(प्रवेशक)

(विरहावस्था मे कुमार का प्रवेश)

कुमार—आश्चर्य है, मनोरथ कितना निरवलम्ब हुआ करता है ? क्यों कि—

मनोरथ की जड में नये रस का सेक करते रहने पर भी उसके जब दो-तीन पत्ते निकलते हैं तभी वह शुष्क हो जाता है, और विषादरूप विष का अङ्कुर कामाग्नि की ज्वाला से घिरे रहने पर भी रति मे उत्पन्न होने के कारण अनन्त शाखायें उत्पन्न किया करता है ॥ १ ॥

जगत् प्रसिद्ध वैर धारण करनेवाले यदुवंश में महावीर दानवराज अपनी जीवनावस्था मे अपनी कन्या देगा, यह सभावना कैसे की जाय और ब्रह्मा द्वारा दिये गये बरदान से जिसका द्वार बन्द कर दिया गया है उस नगरी में प्रवेश

किञ्च ब्रह्मचरावरुद्धगमनद्वारे पुरे प्रेयसीं
नास्मि द्रष्टुमपि क्षमस्तदिह मे चेतो मुधा मुह्यति ॥ २ ॥

तत्र क प्रकार ?

(प्रविश्य)

दौवारिक —एष भद्दो । (एष भद्र ।)

कुमार —प्रवेशय ।

दौवारिक —ज कुमारो आणवेदि त्ति । (यद् कुमार आज्ञापयति ।)

(तत प्रविशति भद्र)

भद्र —(सानन्दम्) अहो भवितव्यता देवकार्यस्य, यत —

हंस्याहं समुदाहृत स्मयजुषामिन्द्रद्विषामग्रत-
स्तेषामर्थनयाऽनया निपुणया तत्राद्य नेया वयम् ।
प्राप्तेयं सुखमासुरे यदि पुरे प्रावेशिकी पद्धति
स्तत्कालैरमरावतीं कतिपयैर्द्रष्टास्मि नष्टापदम् ॥ ३ ॥

करके मैं अपनी प्रेयसी को देखने मे भी अक्षम ही हूँ हे मेरे हृदय तुम व्यर्थ उतावलापन दिखला रहे हो ॥ २ ॥

इसमे उपाय ही क्या है ?

(प्रवेश करके)

दौवारिक—यह भद्र उपस्थित है ।

कुमार—बुला लाओ ।

दौवारिक—कुमार की जैसी आज्ञा । (जाता है)

(भद्र का प्रवेश)

भद्र—(सानन्द) देवकार्य की भवितव्यता पर आश्चर्य होता है । क्योकि —

हंसी ने मुझ से कहा है कि गर्वीले राक्षसों के सामने—उनके आग्रह पर—वह चतुर हंसी हम लोगों को ले जायगी इस प्रकार जब असुरपुर में आसानी से प्रवश का माग मिल जाता है तब मुझ आशा है कि मैं कुछ ही समय में स्वर्ग को निरापद रूप में देख सकूगा ॥ ३ ॥

किञ्च—

देवा यत्र दिवानिशं व्यवसिता विश्वं यदाशंसते
यस्मै शम्बरवंशदावदहनो वीरः समुत्कण्ठते ।
यत्रायं भगवाननादिनिधनः साक्षी सरोजेक्षण-
स्तत्कृत्यं कथमन्यथा घटयितुं धातापि धत्तां मनः ॥ ४ ॥

तदयं कुमारः । यावदुपसर्पामि । (उपसृत्य) जयति जयति कुमारः ।

कुमारः—वयस्य, इत आस्यतां भद्र !

भद्रः—(उपविश्यावलोक्य च) कुमार, निर्भर प्रहरता पराभूतोऽसि मन्मथेन । तथाहि तव—

परिस्रस्तं हस्तात्कनकवलयं म्लायति पुरः
परिक्षिप्तं चक्षुः क्वचिदपि च शून्ये निवसति ।
धुनीते निःश्वासः सततमतिदीर्घं समुदयन्
परिक्षुब्धं वक्षस्तरिमिव तरङ्गव्यतिकरः ॥ ५ ॥

और—जिस कार्य के सम्बन्ध में देवगण अहर्निश प्रयत्नशील हैं, जिसे संसार चाहता है, जिसके लिये शम्बरकुलसंहारक वीर प्रद्युम्न उत्कण्ठित है, जिसमें अनादि निधन भगवान् कृष्ण साक्षी हैं-उस कार्य के प्रसङ्ग में अन्यथा करने का विचार ब्रह्मा भी कैसे करें ॥ ४ ॥

यही तो कुमार हैं, जब तक उनके पास चलूं ।

(समीप जाकर)

जय हो, कुमार की जय हो ।

कुमार—मित्र भद्र, इधर बैठो ।

भद्र—(बैठकर तथा देखकर) कुमार जबर्दस्त प्रहार करनेवाले कामदेव ने आपको पराधीन कर दिया है । आपके—

हाथ से गिरा सोने का वलय म्लान हो रहा है, आखें शून्य भाव से देख रही हैं, जैसे तरङ्ग-समुदाय नौका को चलायमान कर देता है उसी तरह आपका दीर्घनिश्वास सतत निर्गत होकर आपकी छाती को चलायमान कर रहा है ॥ ५ ॥

कुमारः—(निःश्वस्य) एवमेतत्—

जनयति जडिमानं मन्मथोन्माथजन्मा
चिरमविरतदेहोद्दाहदाही विकारः।
हतहृदयमपीदं हन्त चिन्तादुरन्त
ज्वरपरिचयजातज्वालमूर्च्छालमास्ते ॥ ६ ॥

भद्रः—दुस्सहमपि युक्तमेवैतदनुरूपजनप्रणयाभिनिवेशिनो वैदग्ध्यनिधेः कुमारस्य।

कुमारः—किमुच्यते—

विधुरविधिविधेयीभूतमस्यामकस्मा-
दगणितपरितापप्रासमासक्तमन्तः।
अशरणमिदमुच्चमाहदीर्घामिदानी
मनुभवति विषादव्याधिबाधामगाधाम् ॥ ७ ॥

(सखेदञ्च)

मलयजरसोत्सिक्तं सद्य स्मरज्वरजर्जरं
ज्वलयति वियोद्गारी गात्रं सरोजसमीरण।

कुमार—(निःश्वास छोड़कर) ऐसी ही बात है, कामपीडा जनित सतत देह को दग्ध करनेवाला विकार जड़ता उत्पन्न करता है, यह हृदय भी दुरन्त चिन्ता से सन्ताप ज्वर कृत मूर्च्छा मे पड़ा रहा करता है ॥ ६ ॥

भद्र—यद्यपि यह दुःसह है तथापि कुमार ने युक्त पात्र में प्रणय किया है सब तो ठीक ही है।

कुमार—क्या कहा जाय ?

कष्टप्रद भाग्य के वशीभूत होकर हमारे हृदय ने अकस्मात् परिताप कष्ट को बिना सोचे इस नायिका में आसक्ति कर ली, अब वह मोह दीर्घ तथा अनन्त विषाद व्याधि को अशरण होकर भोग रहा है ॥ ७ ॥

(खेद युक्त स्वर में)

चन्दनलिप्त होने पर भी सन्ताप जर्जर हमारे शरीर को विषवमन करने वाली कमल वन से आनेवाली वायु दग्ध किया करती है, संयोगवश यदि

यत्र निपतितं दैवादेतत्सुधाकरमण्डले
सपदि नयनं तस्माङ्गारस्थलीषु निलीयते ॥ ८ ॥

धिक् प्रमादो यद्देवादिभिरपि वामता सम्प्रतिपद्यते, अथवा—

अकरुणरसोद्दामो वामो विधिर्न कलानिधि
र्न किल पवनोऽप्यम्भोजालीपरागभरालसः।
विधिरपि न वा वाच्यो वाच्या वयं यदयं स्वा-
न्मणिरिव निरालम्बे सिन्धौ ममज्ज मनोरथः ॥ ९ ॥

भद्र—(साश्चर्यमात्मगतम्) किमेतन्मन्मथोऽपि मान्मथेन प्रहारेण पराभूयते। अथवा—

जगदशरणमेतत्केवलं मोहमूलं
हरति हरिणनेत्रा कारणं कुत्र कामः।
यदयमुदयदन्तःसन्ततोन्मादखेदः
सपदि विपदमेतामेति देवः स एव ॥ १० ॥

हमारी आँखें चन्द्रमण्डल पर पड जाती हैं तो ऐसा लगता है मानो वे तप्त अङ्गार से छू गई हों ॥ ८ ॥

खेद है कि देवगण भी प्रतिकूल हो रहे हैं। अथवा—

कमल परागवाही पवन हमारा विरोधी नहीं है और न चन्द्रमा हमारा विरोधी है, हमारा विरोधी तो है निर्दयता से भरा ब्रह्मा। अथवा ब्रह्मा भी निन्दनीय नहीं है, निन्दनीय हम ही हैं, क्यों कि हमने समुद्र में मणि की तरह इस निरालम्ब-पथ में मनोरथ डाल दिया है ॥ ९ ॥

भद्र—(आश्चर्य, स्वगत) यह क्या बात है कि कामदेव भी कामकृत प्रहार से पराभव में पडा हुआ है। अथवा इस मोहमूल अशरण जगत् को मृगाक्षी ही आकृष्ट किया करती है, इसमें कन्दर्प कहाँ कारण है। यदि यह बात नहीं होती तो सतत उन्माद तथा खेद से व्यथित यह कुमार क्यों विपन्न होते ? ॥ १० ॥

कुमार—(सोन्मादम्) अयि राजपुत्रि, इयमियमालोक्यसे ।

(सोपालम्भञ्च)

भ्रमसि नयनालोके लग्ना निषीदसि सन्निधौ
स्वपिषि शयनोपान्ते स्वान्ते विलासिनि ! लीयसे ।
तदिति यदि मां सान्द्रस्नेहा जहासि न हा प्रिये !
किमिति न मनागालापोऽपि प्रसादरसादरः ॥ ११ ॥

भद्र—कुमार, कतमोऽयं तमोमयो भाव, न खलु दुष्प्रापस्तवाय प्रियालाप ।

कुमार—(सानन्दम्) किमुक्तवानसि ?

भद्र—ननु कथयामि, अचिरेण पाणौ गृहीतेयमालपिष्यति ।

कुमार—(सोच्छ्वासम्)

अपीयमाश्वासनवागुदारा मनोविकारान् विरलीकरोति ।

कुमार—(उन्माद की अवस्था में) हे राजपुत्रि, मैं तुम्हें देख रहा हूँ ।

(उलाहने के स्वर में)

तुम आँख की परिधि में घूमा करती हो, मेरे पास बैठती हो, मेरे बगल में सोती हो, हे विलासिनि, तुम मेरे हृदय में लीन हो जाती हो । हे प्रिये, मेरे ऊपर प्रगाढ़ प्रेम रखती हुई तुम यदि इस प्रकार मेरा सामीप्य नहीं छोड़ती हो, तो फिर थोड़ा ही सही, वार्त्तालाप का रस क्यों नहीं अनुभव कराती हो ॥११॥

भद्र—कुमार, आपका यह कैसा मनोभाव है ? आपके लिये प्रिया का वार्त्तालाप दुर्लभ नहीं है ।

कुमार—(सानन्द) तुमने क्या कहा ?

भद्र—यही तो कह रहा हूँ शीघ्र ही परिणीत होकर आपकी प्रेयसी आप से वार्त्तालाप करेगी ।

कुमार—(उच्छ्वासके साथ) यह वाणी आश्वासनवचन होकर भी मेरे मनोविकारों को न्यून कर रही है ।

अथवा—

न चान्धकारो नयनापहर्त्ता प्रदीपवार्त्ता विनिवर्त्तनीयः ॥ १२ ॥

भद्रः—केन पुनर्निवर्त्तते ?

कुमारः—प्रदीपेन।

भद्रः—(विहस्य) तर्हि प्रदीपमुपकल्पयामि । प्रतिष्ठस्व प्रभावतीपाणिग्रहाय।

कुमारः—एष प्रस्थितोऽस्मि, कतरः पुनर्वज्रपुरप्रवेशप्रकारः।

भद्रः—नटवेषः।

कुमारः—सविशेषमभिधीयताम्।

भद्र.—श्रूयताम्, प्रागेव प्रसङ्गतो वज्रनाभस्याग्रतः शुचिमुख्याऽहमाख्यातः। ततश्च कुतूहलिना दैत्याधिपतिना मदानयनार्थमभ्यर्थितया पूर्वमेव निमन्त्रितोऽहमासम्। सम्प्रति समागता एव देवहंसा मदुपदेशेन कुमारमानेतुमिति।

अथवा—नयन के तेज को पराहत करनेवाला अन्धकार प्रदीप की वार्ता से नहीं हटाया जा सकता है ॥ १२ ॥

भद्र—फिर वह अन्धकार हटता किससे है ?

कुमार—प्रदीप से।

भद्र—(हँसकर) अच्छा तो मैं प्रदीप प्रस्तुत करता हूँ। प्रभावती से विवाह करने के लिये प्रस्थान कीजिये।

कुमार—यह मैं चला, परन्तु यह तो बताओ कि वज्रपुर-प्रवेश का क्या उपाय होगा ?

भद्र—नटवेष।

कुमार—साफ करके बताओ।

भद्र—सुनिये, वज्रनाभ के आगे शुचिमुखी ने पहले ही मेरी प्रासङ्गिक चर्चा की थी उसपर कौतुकी दैत्यराज ने शुचिमुखी से मुझे लाने की इच्छा प्रकट की थी, तदनुसार शुचिमुखी ने मुझे निमन्त्रित किया उस क्रम में मेरे छल से आपको लेने देवहंस आचुके हैं।

कुमारः— अपि नाम वृत्तमेतत्तातयोरपि ज्ञातं स्यात् ।

भद्रः— किमन्यत्, आज्ञापितोऽस्मि बलदेववासुदेवाभ्यां यथा गद-शाम्बप्रमुखैः कियद्भिर्नाट्यवेदवेदिभिर्यदुभिः परिवारितं कुमारं नटोपकरणेन प्रापयोदीचीपन्थानम् इत्याकर्ण्य कुमारः प्रमाणम् ।

कुमारः— तर्हि जातमवलम्बनं मनोरथस्य (सविचिकित्सञ्च) कथं नटवेषेण परपुरं प्रवेष्टव्यम् ।

भद्र— न किञ्चिदेतत् । यतः—

कार्यापेक्षी जनः साक्षात् प्रतिरुद्धपराक्रमः ।
उपायेनाभिसन्धाय प्रवर्त्तयति पौरुषम् ॥ १३ ॥

कुमार— (साटोपम्) भवतु वा,

आरादस्त्राम्बुधारानिकरनिपतनैर्दानवोद्दीप्तदावान्
सर्वान्निर्वाप्य तेषामपचयभसितैः सम्भृतैर्भृष्टभृष्टम् ।

कुमार— तब तो यह समाचार पिताजी तथा चाचाजी को भी ज्ञात हो गया होगा ।

भद्र— और क्या ? बलदेव तथा वासुदेव ने मुझे आज्ञा दी है कि गद, शाम्ब आदि कुछ नाट्यवेदज्ञ यदुकुमारों के साथ कुमार प्रद्युम्न को नटोपकरण के साथ उत्तर के मार्ग से ले चलो । इसे सुनकर आप जैसा कहें ।

कुमार— तब तो मनोरथ को अवलम्बन मिल गया । (सशय के साथ) नटवेष मे दूसरे की नगरी मे कैसे प्रवेश करेंगे ? ।

भद्र— यह कोई बात नही है । क्योकि—

कार्यार्थी जन जब देखता है कि उसकी साक्षात् शक्ति प्रतिरुद्ध हो रही है तो वह उपाय लगाकर नाना छलो के बल पर पराक्रम प्रकट करता है ॥१३॥

कुमार— (गर्व के साथ) अथवा—

शीघ्र अस्त्ररूप मेघ की धारा से दानवरूप दावाग्नि शमित होगी, उनके भस्म से मैं अपने नटवेषग्रहणकृत कलङ्क को मलमल कर छुड़ाऊंगा, नवीन

तव्याद् वैधव्यखेदव्यसनसमुदयाद् सुरीणां वधूनां
बाष्पाम्भोभिः पतद्भिर्निटकपटकृतं लाञ्छनं क्षालयिष्ये ॥१४॥

भद्र —कथं प्रतिज्ञात एवासुरक्षय कुमारेण ।

कुमार —प्रागेव प्रतिज्ञातमेतत् प्रभावतीं प्रार्थयमानेनान्तरात्मना । पश्य—

नास्मासु जन्मावधिबद्धवैरो वीरोऽनुमन्ता दनुजस्तनूजाम् ।
तत्सर्वथा दुर्विषहाभिमानः क्षन्ता न मे क्रोधघनः कृपाणः ॥ १५ ॥

(सक्रोधम्) तदेष —

तत्पैतामहमोहदत्तवितबलव्यामूढदुर्दानव-
व्यूहत्रासितगोत्रभृत्पुरपरित्राणाय संजायताम् ।
हस्तः स्रस्तसमस्तवैरिवलयव्यालोलमूर्द्धावलि-
व्यावल्गन्मणिकुण्डलाल्लसदसिव्यापारपारङ्गमः ॥ १६ ॥

(नेपथ्ये)

वैधव्यरूप हुई असुर स्त्रियों के नेत्रजल उस कलङ्क प्रक्षालन-कार्य में उपयोगी सिद्ध होंगे ॥ १४ ॥

भद्र—क्यों कुमार ने असुर वध की प्रतिज्ञा भी करली।

कुमार—प्रभावती की कामना करनेवाले मेरे हृदय ने पहले ही यह प्रतिज्ञा करली थी, देखो—

हम लोगों पर जन्म से ही वैर भाव रखनेवाला दानववीर अपनी कन्या को हमारे साथ विवाह करने की अनुमति नहीं देगा, और इस अपमान को हमारा कोपन कृपाण-जिसका अभिमान असह्य है—किसी प्रकार सहन नहीं करेगा ॥ १५ ॥

(क्रोध से) यह मेरा-वैरीमण्डल के चञ्चल मूर्द्ध समुदाय में नाचते हुए मणिकुण्डलों को प्रेरित करनेवाले असि को चलाने में पारङ्गम हाथ पितामह के मोहवश दिये गये वरदान से गर्वित दानवों के भय से त्रस्त इन्द्रपुर का परित्राणकारी होवे ॥ १६ ॥

(नेपथ्य में)

भो भो द्वारवतीवासिनः शैलूषाः, अद्य खलु दूरदेशान्तरपर्यटनकुतूहली तत्र भवान् भद्रः सर्वानपि युष्मान् प्रास्थानिकोपकरणेषु नियोजयति, तत् त्वर्यताम् त्वर्यताम् ।

भद्रः—(आकर्ण्य) कथमस्मत्पारिपार्श्विकोऽस्मदादिष्टमनुतिष्ठति ।

(पुनर्नेपथ्ये)

जं अज्जो आणवेदि तं ज्जेव अम्हेहिं अणुचिट्ठीअदि । जदो एदे णवणिविलजलहरामन्दगम्भीरसद्दसन्दर्भसुन्दरा मिअङ्गा पडिसवीअन्ति । इमे अ अणदिचिरसमव्वूढजोव्वणा णिवारिजन्त-चञ्चलत्तण-सञ्चरन्त-सुन्दरीचरणझणझणन्तमञ्जु-मञ्जीरमुहरा सावीअन्ति कंसताला । इमासु अ समुच्छलन्त-मुच्छणामसिण-सरस-सरल-सञ्चार-धुरीणासु बीणासु णिवेसिअन्ति तन्तिआओ । इमाइं अवुट्ट-वगगन्धद्धमिद्धुहंसमहिसगिद्धलुद्धअचक्कमक्कडाण पडिसीसआइ सज्जीअन्ति । एदे असिअपीअहरिअणीलरत्त चित्तङ्गराअ-समुग्गआ सम्भाविअन्ति एदाइं अ मञ्जीर-केयूर-कङ्कण-किङ्किणी-मउल-कुण्डलप्पमुहाइ विहूसणाइ समाहरीअन्ति । इमाइं अ विविहवण्ण-विण्णासाइ वसण-समुच्चआइं समुच्चीअन्ति । (यदार्य आज्ञापयति तदेवास्माभिरनुष्ठीयते । यत एते नवनिबिडजलधरामन्दगम्भीरशब्दसन्दर्भसुन्दरा मृदङ्गाः प्रतिश्रूयन्ते । इमे च अनतिचिर-समुव्यूढयौवन–निवार्यमाण–चञ्चलत्व–सञ्चरत्सुन्दरीचरणझणझणायमानमञ्जुमञ्जीर–

हे द्वारकावासी नटगण, आज दूरदेश-पर्यटन के लिये उद्यत भद्र आप सभी को यात्रोचित तैयारी करने का आदेश दे रहे हैं वे, अतः आप शीघ्रता करें ।

भद्र—(सुनकर) क्या, मेरा पारिपार्श्विक मेरे आदेश का पालन कर रहा है ?

(फिर नेपथ्य में)

आर्य का आदेश ही हमारा कर्त्तव्य है । वही हम कर रहे हैं । नव जलधर की तरह मन्द गम्भीर शब्दकारी मृदङ्ग प्रस्तुत किये जा रहे हैं । अभी अभी यौवनावस्था में पद-न्यास करनेवाली चञ्चल-चरण सुन्दरियों के चरणों में बंधे हुए मञ्जीर की तरह शब्द करनेवाले झाल बजाकर देखे जा रहे हैं ।

मुखरा श्रूयन्ते कास्यतालाः। आसु च समुच्छलन्मूर्च्छना मसृण-सरससरलसञ्चार-धुरीणासु वीणासु निवेश्यन्ते तन्त्रिकाः। इमानि च वृत्त-वर्ग-ऋक्ष-भिक्षु हस महिष-गृद्ध-लुब्धक चक्र मकराणि प्रतिसीसकानि सज्ज्यन्ते। एते असितपीतहरितनील रक्तचित्राङ्गरागसमुद्गकाः सभाज्यन्ते। एतानि च मञ्जीरकेयूर कङ्कणकिङ्किणी-मुकुट कुण्डलप्रमुखानि विभूषणानि समाह्रियन्ते। इमे च विविध वर्णविन्यास-वसनसमुच्चया समुच्चीयन्ते।)

कुमार —(आकर्ण्य-सकौतुकस्मितम्) वयस्य, सम्पन्ना तवेय सम-ग्रापि सामग्री, तन्न किमपि कालक्षेपकारणम्।

भद्र—एवमेतत्।

चिरं विचारेण विलम्बवन्ति कर्माणि कालेन लघूभवन्ति।
तदुद्यमं नीतिविनीतशीलाः शुभस्य शीघ्रं समुदाहरन्ति ॥ १७ ॥

कुमार.—एवमेतत्, विशेषतस्तु—

स्फीतस्फारित-शीतदीधितिकरे दुर्दर्शनीयेऽम्बरे

मूर्च्छना से भरे सरसवादिनी वीणाओं पर तन्त्री चढाई जा रही है। वृत्ताकार, वर्गाकार तथा भिक्षु, ऋक्ष, हस, महिष, गृद्ध, चक्र, मकर, आदि आकारवाले सीसे सजाये जा रहे हैं। काले, पीले, हरे, नील रक्त, तथा चित्रवर्ण के अङ्गराग से पूर्ण डिब्बे सभालकर रखे जा रहे हैं। मञ्जीर, केयूर, कङ्कण, करधनी, मुकुट, कुण्डल आदि गहने इकट्ठे हो रहे हैं। वर्ण मे नाना तरह के वस्त्र जमा किये जा रहे हैं।

कुमार—(सुनकर, कौतुकपूर्ण हँसी के साथ) मित्र, तुम्हारी सारी सामग्री प्रस्तुत हो गई अतः विलम्ब का कोई कारण नहीं है।

भद्र—यही बात है।

चिरकाल तक विचारते रहने से विलम्बित कार्य हलके हो जाते हैं अतः नीतिवेत्ताजन उद्यम के सम्बन्ध में 'शुभस्य शीघ्रम्' कहते हैं ॥ १७ ॥

कुमार—यही बात है, खास करके—

शीत किरण की चादनी से आकाश दुर्दर्शनीय हो रहा है जाती पुष्पो पर

जातीजालकसञ्चरन्मधुकरश्रेणीघने कानने।
विश्लेषज्वर विश्लथैरवयवैर्नो मनोजन्मना
को नाम क्षमते क्षणं कलयितुं कालातिपातं जनः॥ १८॥

अथ कथय वयस्य, किम्मिमाख्यातवती शुचिमुखी।

भद्र—शृणु श्रोतव्यम्,

सहचरीनिवहेन सरोजिनी-
दलमृणालसरोरुहशैवलैः।
सपदि शून्यतराणि सरोवरा-
ण्यपि कृतानि कृते हरिणीदृशः॥ १९॥

(सकरुणम्) अथवा—

कस्तां तां कथयेददीर्णहृदयो युष्मत्कृते यादृशीं
हंसी शंसति मान्मथीमुदयिनीमेणीदृशो दुर्दशाम्।
एतत् किन्तु निवेदये यदुकुलालङ्कार, शङ्काकुलो
जीवन्ती तव लाचनातिथिरपि प्रायेण जायेत सा॥ २०॥

सञ्चरण परायण भ्रमरों के समुदाय से वन-प्रान्त पूर्ण हो रहा है ऐसे समय में वियोगजनित सन्ताप से काम पीडित जन क्षण भर का भी विलम्ब किस प्रकार से सहन कर सकता है॥ १८॥

मित्र यह तो बताओ कि शुचिमुखी और क्या कहती थी।

भद्र—सुनने योग्य बात सुन लीजिये।

हरिण नयना प्रभावती की सखियों ने सारे कमलिनी के पत्ते, मृणाल तथा शैवल को लेकर प्रभावती के विरहकृत सन्ताप को दूर करने में लगा दिया है जिससे वहाँ के सरोवर सून लगते हैं॥ १९॥

(करुणापूर्ण स्वर में) अथवा—

हंसी ने आपके वियोग में होनेवाली प्रभावती की जैसी दशाओं का वर्णन किया, उसे अपनी छाती को बिना फाड़े कौन कह सकता है? हे यदुकुलभूषण मुझे इतना ही कहना है कि वह सुन्दरी जीवित अवस्था में आपके द्वारा देखी जा सकेगी, मुझे इसमें भी सन्देह है॥ २०॥

कुमारः—(वैचित्य नाटयन्) विरम विरम, नैतानदाकर्णयितुमप्युत्सहे। तत्किमतः परं क्षणमपि विलम्बेन प्रियायाः सापराधमात्मानं करोमि। कः कोऽत्र ?

(प्रविश्य)

दौवारिकः—कुमार, एसो म्हि। (कुमार, एषोऽस्मि।)

कुमारः—मञ्जीरक, आहूयतामार्यगदः शाम्बश्च।

दौवारिकः—जं कुमारो आणवेदित्ति (निष्क्रान्तः) (यत् कुमार आज्ञापयति।)

कुमारः—वयस्य, अस्मासु नटत्सु कस्य का भूमिका ?

भद्रः—सुघटित इह नाट्यनायकस्त्वं
तव गुणवान् गद एव पीठमर्दः।
हसनरसनिवेशपेशलोऽयं
विशतु विदूषकतामुपेत्य शाम्बः॥ २१॥

कुमारः—(सव्रीडम्) कथमस्मदर्थमेतयोरप्येतादृशो व्यापारः।

कुमार—(मोह का अभिनय करते हुए) रुको रुको, मैं इन बातों को सुनने का भी साहस नहीं रखता हूँ। क्या इतना सुनने के बाद भी क्षण भर का भी विलम्ब करके प्रियतमा के प्रति अपने को अपराधी बनाऊ ? कौन है यहाँ जो ?

(प्रवेश करके)

दौवारिक—कुमार, यही मैं उपस्थित हूँ।

कुमार—मञ्जीरक, आर्य गद तथा शाम्ब को बुलाओ।

दौवारिक—कुमार की जो आज्ञा। (जाता है)

कुमार—मित्र, हम लोग जो नाटक करेंगे, उसमे किस को क्या बनना है ?

भद्र—आप उस नाट्य के नायक होंगे, गद आपके गुणवान् पीठमर्द सहायक होंगे, शाम्ब हास्य कला मे अधिक प्रवीण हैं अतः वह विदूषक बनकर प्रवेश करेंगे॥ २१॥

कुमार—(लज्जित भाव से) क्यों, हमारे लिये इन लोगो को भी ऐसा व्यापार करना पड रहा है।

भद्रः—अस्त्यत्रापि कौतुकम्,

तयोः कृते भूतलरत्नभूते
सुते सुनाभस्य महासुरस्य ।
प्रभावतीवाग्गनतीतकृत्ये
निःशङ्कमङ्गीकुरुते विहङ्गी ॥ २२ ॥

कुमारः—(सस्मितम्) अहो सविधानवैदग्ध्य विहङ्गमाया ।

(प्रविश्य)

दौवारिकः—कुमार, एदे गदसम्बप्पमुहा जदुकुमारा दुआरदेसोपत्थिदा कुमारस्स विजयपत्थानमवेक्खन्ति । (एते गदसाम्बप्रमुखा यदुकुमारा द्वारदेशोपस्थिता कुमारस्य विजयप्रस्थानमपेक्षन्ते ।)

कुमार —(सोल्लासम्) एष प्रस्थितोऽस्मि । (इत्युत्तिष्ठति)

(नेपथ्ये वैतालिक)

जयति जयति कुमारः ।
त्रैलोक्यत्राणलक्ष्मीः शतमखकुलिशं श्रीपतेश्चापि चक्रं
काले काले श्रयन्ती क्वचिदपि न पदं कुर्वती निर्वृताऽभूत् ।

भद्र—इसमें भी रहस्यमय कौतुक छिपा है, गद तथा साम्ब के लिये भी भूतलरत्नभूता दो कन्यायें शुचिमुखी द्वारा ठीक कर ली गई हैं, वे दोनों सुनाभ की लड़कियां हैं, उन्हें प्रभावती की आज्ञा नहीं टालनी है ॥ २२ ॥

कुमार—(हँसकर) शुचिमुखी की गोटी बैठाने की कला पर आश्चर्य होता है ।

(प्रवेश करके)

दौवारिक—कुमार, गद, साम्ब आदि यदुकुमार द्वार देश में उपस्थित होकर कुमार की विजय यात्रा की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

कुमार—(प्रसन्नता से) यह मैं चला । (उठते हैं)

(नेपथ्य में वैतालिक)

कुमार की जय हो ।

त्रैलोक्य त्राणलक्ष्मी कभी इन्द्र के वज्र में तथा कभी कृष्ण के चक्र में रहकर कहीं एक जगह नहीं रह पाने के कारण शान्ति से नहीं रह सकी थीं,

एषा शेषाहिभोगोद्भटभुजभजनश्रीभरभ्राजमाने
स्थाने युष्मत्कृपाणे स्थिरतरवसतिर्वीतद्वैतमास्ते ॥ २२ ॥
अपि च—
श्रुत्वा मन्मथजन्मनस्तव नवं लावण्यमुत्कम्पिनी
पौलोमी पुलकाङ्कुरेण कुरुते गण्डस्थलीमण्डनम् ।
प्रस्तुत्याथ भयानकाद्भुतमिदं युष्मद्भुजोष्मायितं
व्याजात्तत्पुरतस्तया सुरपतेरङ्गाय निह्नूयते ॥ २३ ॥

भद्रः—(आकर्ण्य) अभिनन्दनीयमेतत्, तथाहि :—
यत्राद्भुते कर्मणि साहसैक-
चित्ताः प्रवृत्ताः पुरुषा भवन्ति ।
पुराविदो निर्भरतैकमूलं
तत्रानुकूलं शकुनं स्मरन्ति ॥ २४ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

प्रद्युम्नप्रयाणं नाम तृतीयोऽङ्कः

वह अब शेषनाग के सदृश आपके विशाल बाहु मे आश्रय पाने के कारण शोभाशाली आपके कृपाण मे निवास पाकर हार्दिक दुविधे से रहित हो रही है ॥ २२ ॥

और—काम ने आपके रूप मे जन्म लिया, आपके रूप को सुनकर उगनेवाले रोमाञ्च से इन्द्राणी के कपोल भर उठते हैं, तब इन्द्राणी किसी भयानक या अद्भुत बात का प्रसङ्ग छेड देती हैं और उसी बहाने से अपने रोमाञ्चित कपोल को इन्द्र की दृष्टि से छुपा लेती हैं ॥ २३ ॥

भद्र —(सुनकर) यह खुशी का विषय है । क्योंकि—

साहसी पुरुष जिस अद्भुत कार्य मे प्रवृत्त होते हैं उसमें आत्म-निर्भरता को शकुन माना जाता है ।

(सभी जाते हैं)

प्रद्युम्नप्रयाण नामक तृतीय अङ्क समाप्त

चतुर्थोऽङ्कः

[ततः प्रविशति दौवारिकः]

दौवारिकः—(समन्तादवलोक्य) कधं मिलाअन्तदीविआ पहादा विहावरी विअ रङ्गभूमी ? कधं अन्तरिदो ज्जेव विमुकभूमिएहिं लोअलोअणमणहरेहिं चन्दकरेहिं विअ नड़ेहि ? कधं विमुक्कं ज्जेव सदोमण्डलं गअणं विअ तारआणिअरेहिं अज्जविअड्ढमिस्सेहिं। हीणामहे महाराअ-वज्जणाहस्स कौदूहलपूरणुम्मुहीए सुइमुहीए दूरदीवन्तरादो आणिदा रङ्गोवजीविणो साहाअणवेपु अछवी आणे अवसाणुबन्धाइं पबन्धाइं अहिणअन्तित्ति सुणिअ कोदूहलाकट्टिएहिं पोरजाणपदेहिं तत्थ तत्थ ज्जेव गदुअ णच्चणालोअणुम्माएण येत्तिआओ रत्तिआओ उण्णिदूदेण गमअन्तेहिं अप्पिदाइं अत्तणो णिरवसेसाइ घणवसणविहूसणाइ। संपदं उण कोदूहलपरव्वसेण राइणा वज्जणाहेण सबहुमाणमाहूदेहिं तेहिं णड़ेहिं एत्थ एक्कं ज्जेव संकरसरासणारोवणं नाम पवन्ध अहिणीअ तहा सहावओ परवसीकदो जधा तेण मोहमुद्दिअहिअएण गअतुरअभूसण-

---

(दौवारिक का प्रवेश)

दौवारिक—(चारो ओर देखकर) क्यो, जब दीप म्लान होने लगते हैं ऐसी प्रभात रात्रि की समता को रङ्गभूमि प्राप्त कर रही है ? लोगो के नयनों को आकृष्ट करनेवाले चन्द्रकिरण के सदृश नटगण छिप गये क्या ? जैसे आकाश के तारे प्रात काल मे दूर चले जाते हैं उसी तरह यह सभासद् गण दूर चले गये। हाय ! धिक्कार है, महाराज बज्रनाभ के कौतूहल को पूर्ण करने में तत्पर शुचिमुखी द्वारा दूरवर्त्ती द्वीपान्तरो से लाये गये अभिनयजीवी नटगण साधारण वेष मे भी समस्त प्रबन्ध का अभिनय करते हैं इस बात को सुनकर कुतूहलपरवश नगरवासियों ने वहाँ जाकर कुछ रात्रि जागरण द्वारा बिता दीं, इस समय उन लोगो ने अपने सारे धन-वस्त्र आभूषण (नटों को देकर) खाली कर दिये हैं। अब द्वितीय बार उत्पन्न कौतुक से पराधीन होकर महाराज बज्रनाभ ने उन नटो को सादर बुलाया है। बुलाने पर आये हुए उन नटों ने 'शङ्कर-शरारोपण' नामक

वसणाइ पारितोसिआइ पसादीकरन्तेण ताण पडिवादिआ विरलावसेसा-रज्जलच्छी, अग्गदो उण जाणामि रम्भाहिसरणादीनि पबन्धाइ दसअन्तेहिं णिरवसेस समाहरिदा दानवलच्छी। (कथ म्लायद्दीपिका प्रभाता विभावरीव रङ्गभूमि । कथमन्तरितमेव विमुक्तभूमिकैर्लोकलोचनमनोहरै चन्द्रकरैरिव नटै । कथ विमुक्तमेव सदोमण्डल गगनमिव तारकानिकरै आर्यविदग्धमिश्रै । हा धिक् , महाराजवज्रनाभस्य कौतूहलपूरणोन्मुखया शुचिमुखया दूरद्वीपान्त-राद्दानीता रङ्गोपजीविन साधारणवेषा अपि सानुबन्धान् प्रबन्धान् अभिनयन्तीति श्रुत्वा कौतूहलाकृष्टै पौरजानपदैस्तत्र तत्रैव गत्वा नर्तनालोकनोन्मादेव कियती रात्रीरुन्निद्रेण गमयद्भिरपीदानीम् आत्मनो निरवशेषाणि धनवसन विभूष-णानि । साम्प्रत पुन कौतूहलपरवशेन राज्ञा वज्रनाभेन सबहुमानमाहूतैस्तै र्नटैरनेकमेव शङ्करशरासनारोपण नाम प्रबन्धमभिनीय तथा स्वभावत. पर-वशीकृतो यथा तेन मोहमुद्रितहृदयेन गजतुरगभूषणवसनानि पारितोषिकाणि प्रसादीकुर्वता तेभ्य प्रतिपादिता विरलावशेषा राज्यलक्ष्मी , अग्रत. पुनर्जानामि रम्भाभिसरणादीन् प्रबन्धान् दर्शयद्भि निरवशेष समाहृता दानवलक्ष्मी ।)

(प्रविश्य)

सुवदना—आहरन्तु आहरन्तु ।

दौवारिक —(साशङ्क स्वगतम्) किं एस विरुद्धो विअ सवादो, अहवा-पडिहदममङ्गलम् । (प्रकाशम्) सुवदणे कि विअ । (किम् एष विरुद्ध इव सवाद । अथवा प्रतिहतममङ्गलम् । सुवदने, किमिव ? ।)

एक ही प्रबन्ध का अभिनय किया है उतन ही से महाराज वज्रनाभ इस प्रकार वशीभूत हो गये हैं कि उनका हृदय मोहपरवश हो गया है, उन्होंने इतना हाथी, घोडा भूषण वस्त्र, उन लोगो को पारितोषिक मे प्रदान किया है कि राजलक्ष्मी अल्पशेष हो रही है। आगे चलकर रम्भाभिसरण आदि प्रबन्धो का अभिनय दिखला कर उन नटो न सारी राजलक्ष्मी पा ली है अब शेष कुछ नही रहा है।

(प्रवेश करके)

सुवदना—ले आवें ले आवें।

दौवारिक—(साशङ्क भाव से, स्वगत) यह विपरीत सा लगनवाला कैसा सवाद है ? अथवा—अमङ्गल शान्त हो। (प्रकाश) सुवदने क्या है ?

सुवदना—आहरन्तु पडीहारा एदाइं अन्तेउराहरणाइं। (आहरन्तु प्रतीहारा एतान्यन्तःपुराभरणानि।)

दौवारिक—कस्स? (कस्य?)

सुवदना—नडस्स। (नटस्य)।

दौवारिक—कहं अन्तेउरेहिं पि नच्चण पलोइदं। (कथमन्तःपुरैरपि नर्तनं प्रलोकितम्।)

सुवदना—अह इ, आएसेण भट्टिणो वादाअणगदाहिं वसुमदीप्पमुहाहिं महिसीहिं पहावदीसणाहाहिं च भट्टिदारिआहिं सव्वं समालोइदं। तदो उण सुइमुहीवअणुल्लासिदाहिं ताहिं ताण कुसिलवाण पसादीक्आइं एदाइं तक्कालघरिआइं आहरणाइं। (इत्याभरणभृतं पेट्टलकमर्पयति) (अथ किम्, आदेशेन भट्टिन्या वातायनगताभिर्वसुमतीप्रमुखाभिर्महिषीभिः प्रभावतीसनाथाभिश्च भर्तृदारिकाभिः सर्वं समालोकितम्। ततः पुनः शुचिमुखी वचनोल्लासिताभिस्ताभिस्तेषां कुशीलवानां प्रसादीकृतान्येतानि तत्कालधृतान्याभरणानि।)

दौवारिक—(परितोऽवलोक्य) कहं उज्जागरणीसहा सुवन्ति सअला वि पडीहारा, एक्को ज्जेव अहं जग्गेमि, ता कहं सुण्णं राअदुआरं परिट्ठइ

सुवदना—प्रतीहारगण अन्तःपुर के आभरण ले आवें।

दौवारिक—किसके लिये?

सुवदना—नटों के लिये।

दौवारिक—क्यों, अन्तःपुर के लोगों ने भी नाचना देखा है?

सुवदना—और क्या? महारानी के आदेश से वसुमती आदि देवियों ने और प्रभावती आदि राजकुमारियों ने सारा नर्तन देखा है। अनन्तर शुचिमुखी के वचन से उत्साहित होकर उन लोगों ने तत्काल पहने गये अपने सारे आभरण उन नटों को इनाम में दे दिया है। (आभरण का बक्सा दिखलाता है)

दौवारिक—(चारों ओर देखकर) क्यों, रात्रि जागरण से श्रान्त सारे प्रतीहार सो रहे हैं, मैं ही अकेला जाग रहा हूँ। फिर किस प्रकार से मैं राजद्वार को

गमिस्सं, मा कोवि एत्थ वारणिज्जो पवेसं लहेदित्ति। (कथमुज्जागरनि सहा' स्वपन्ति सकला अपि प्रतीहाराः, एक एवाहं जागर्मि। तत्कथं शून्य राजद्वार परित्यज्य गमिष्यामि मा कोपि वारणीयोऽत्र प्रवेश लभेतेति।)

सुवदना—गच्छ, ण किम्पि एदं एत्थ अणिवारिदो सच्छन्दभमरो जइ पविसइ को अण्णो दुव्विणीदो वज्जणाहस्स घर पविसदु। अहम्पि डान्नुदिआ गदुअ सुवामि। (गच्छ न किमप्येतद् अत्र अनिवारित स्वच्छन्दभ्रमरो यदि प्रविशति कोऽन्यो दुर्विनीतो वज्रनाभस्य गृह प्रविशतु। अहमपि •• गत्वा स्वपिमि।)

दौवारिक —एव भोइ। (इति निष्क्रान्तौ) (एव भवतु।)

(प्रवेशक)

[ततः प्रविशति कुसुममालाकरण्डहस्ता तरलिका]

तरलिका —सहि परहूदिए, स्खलिद रहस्स। (सखि, परभृतिके, स्खलित रहस्यम्।)

परभृतिका—सहि कि पमुद्धसि। (सखि, किं प्रमुग्धासि ?)

तरलिका—ता किम्पि अग्गतो पसाहिद पओअण। (तत्किमप्यग्रतः प्रसाधित प्रयोजनम्।)

शून्य छोड कर चला जाऊ ? कही ऐसा न हो कि कोई अनभिप्रेत पुरुष प्रवेश कर जाय।

सुवदना—जाओ, ऐसी कोई बात नहीं है। यहाँ कोई अनभिप्रेत स्वच्छन्द भ्रमर भी नहीं प्रवेश कर सकता है, दूसरा कौन अविनयी वज्रनाभ के घर मे प्रवेश करने का साहस करेगा ? मैं भी जाकर • सोती हूँ।

दौवारिक— ऐसा ही हो। (दोनो जाते हैं)

(प्रवेशक)

(इसके बाद फूलमाला की टोकरी लिये तरलिका तथा एक दूसरी दासी का प्रवेश)

तरलिका— सखि परभृतिके, रहस्य खुल गया क्या ?

परभृतिका— सखि तुम क्यो पगली हो रही हो ?

तरलिका—तो क्या कुछ आगे का काम हुआ है ?

परभृतिका—किम्पि त्ति किं कहेसि! तुम्हाण णिओएण मए तहा तहा ताण गदसवाण गुणा चन्दवदी-गुणवदीण समक्खे आअक्खिआ जहा दुल्लहाणुराअ मणोहवुम्माअ-मोहदाण एदाण, खणम्पि सम्पद मअणुव्वेअव्वअण विणेदु ण पारेन्ह। ता कधेहि अत्थि कोवि एत्थ ताण पवेसाव्वाओत्ति। (किमपीति किं कथयसि। युष्माकं नियोगेन मया तथा तथा तयोर्गद साम्बयोर्गुणाश्चन्द्रावतीगुणवत्योः समक्षे आख्याता यथा दुर्लभानुरागमनोभवो-न्मादमोहिताभ्यामेताभ्यां क्षणमपि साम्प्रतं मदनोद्वेगव्यसनं विनेतुं न पार्यते। तत्कथय अस्ति कोपि अत्र तयोः प्रवेशोपाय इति।)

तरलिका—(स्मित्वा) अह जइ सो सवुत्तो ज्जेव होइ। (अथ यदि स सवृत्त एव भवति।)

परभृतिका—(चिरं विचिन्त्य) हूं, अवगद एद। अहो सुसघडिदा णीदी। सहि ममावि एस वितक्को ज्जेव आसि णहु एआरिसी लावण्णलच्छीसणाहा महानुभावदा नडाण सभावीअदि। ता विसेसिअ कधेहि को काए। (हुं अवगतमेतत्, अहो सुसङ्घटिता नीतिः। सखि, ममापि एष वितर्क एवासीत्। न खलु एतादृशी लावण्यलक्ष्मीसनाथा महानुभावता नटाना सम्भाव्यते। तत् विशिष्य कथय कः कस्याः?)

परभृतिका—कुछ क्यों कहती हो? तुम लोगों के आदेश से हमने गद तथा साम्ब के आगे चन्द्रावती और गुणवती के गुणों का इस रूप में वर्णन किया कि वे दोनों गद साम्ब दुर्लभ प्रेम एवं कामदेव के उन्माद के वशीभूत हो उठे, इस समय वे कामवेग को रोकने में असमर्थ हो रहे हैं। अब बताओ कि उनके यहाँ प्रवेश का कोई उपाय है?

तरलिका—(हँसकर) और यदि वैसा हो ही गया हो?

परभृतिका—(देरतक सोचकर) हाँ, समझ गई। अहा नीति सफल हो गई। सखि मैं भी ऐसा ही तर्क करती थी। इतनी सुन्दरता तथा ऐसी महानुभावता नटों में नहीं हो सकती है। साफ करके बताओ कि कौन किसका हुआ?

तरलिका—सो सकर सरासणारोवओ सिरिपज्जुण्णो पहावदीए, सोमित्ति भूमिआवट्ठिदो सम्बो अ गुणवदीए। (स शङ्करशरासनारोपकः श्रीप्रद्युम्नः प्रभावत्याः, सौमित्रिभूमिकावस्थितः साम्बश्च गुणवत्याः।)

परभृतिका—अहो कज्जपरव्वसाणं सप्पुरिसाणं पि महाणुभावत्तण-विसंवादी वेसपरिग्गहो, सहि कहिं उण सा सुरलोअहंसी। (अहो कार्यपरवशानामपि सत्पुरुषाणां महानुभावत्वविसंवादी वेषपरिग्रहः, सखि, कथय क्व पुनः सा सुरलोकहंसी।)

तरलिका—सा क्खु संपदं ज्जेव पहावदी-मुद्दिआसणाहं मअणलेहं सिरिपज्जुण्णसआसादो घेत्तूण भट्टिदारिआसआसं गच्छन्ती अम्ह-मिलिदा आसि। (सा खलु साम्प्रतमेव प्रभावतीमुद्रिकासनाथां मदनलेखां श्रीप्रद्युम्नसकाशाद् गृहीत्वा भर्तृदारिकासकाशं गच्छन्ती मया मिलिता आसीत्।)

परभृतिका—ता जाणेमि मुद्दिआए ज्जेव कदो सुइमुहीए अन्तेउरेसु आहरणदाणुज्जोओ। (तद् जानामि मुद्रिकयैव कृतः शुचिमुख्याः अन्तःपुरेषु आहरणदानोद्योगः।)

तरलिका—अह इं। (अथ किम्?)

तरलिका—वह महादेव के धनुष का रोपण करने वाला प्रद्युम्न प्रभावती का, और लक्ष्मण की भूमिका करने वाला शाम्ब गुणवती का हुआ।

परभृतिका—अहा, कार्यपरवश होने के कारण वैसे सत्पुरुषों को भी अपनी महानुभावता के विरुद्ध वेष को अपनाना पड़ा। सखि, यह तो कहो कि वह देवलोकहंसी शुचिमुखी कहाँ गई?

तरलिका—वह तो अभी अभी प्रभावती की अङ्गुलीयमुद्रा से अङ्कित मदनलेख प्रद्युम्न के पास से लेकर राजकुमारी के पास जाती हुई मुझे मिली थी।

परभृतिका—तो मैं समझती हूँ कि उस अङ्गुलीयमुद्रा ने ही शुचिमुखी के लिये अन्तःपुर में ले आने तथा वहाँ ले जाने का उपाय कर दिया है।

तरलिका—और क्या?

परभृतिका—सहि, अत्थि कोवि से समक्खदंसणेण पहावदीए सरीर-सन्तावम्मि विसेसो । (सखि, अस्ति कोपि तत्समक्षदर्शनेन प्रभावत्याः शरीर-सन्तापे विशेषः ?)

तरलिका—(निःश्वस्य) अत्थि विवरीदो विसेसो जइ पिअसहिं जीआविदुं पारेम्ह दुक्करं खणान्तराइं नही अत्थि । (अस्ति विपरीतो विशेषो यदि प्रियसखीं जीवयितुं पारयामि दुष्करं क्षणान्तरे नास्ति ।)

परभृतिका—(सचिन्तम्) ता तुरिअं से समीवं गछ्छ । (तत्त्वरितं तत्समीपं गच्छत ।)

(इति परिक्रामतः)

परभृतिका—(विलोक्य) सहि एस कुसुमपरिमलहरिज्जन्तहिअओ तुमं अणुसरदि महुअरो । (सखि, एष कुसुमपरिमलह्रियमाणहृदयस्त्वामनुसरति मधुकरः ।)

तरलिका—(विलोक्य सकौतुकस्मितम्) कधं एस णिलीणो ज्जेव मालदीमालामज्झम्मि ! ता एदिणा सणाहं ज्जेव मालदीमालिकां उवणीअ भट्टिदारिआए कोतूहलमुप्पादेमि । तुमं उण परहुदिए गदुअ समीहिदं साहेहि । (कथमेव निलीन एव मालतीमालामध्ये । तदेतेन सनाथामेव मालती-

---

परतिभृका—सखि, इस प्रत्यक्ष दर्शन से प्रभावती के शरीर सन्ताप में कुछ अन्तर पड़ा है ?

तरलिका—(दीर्घ निःश्वास लेकर) विपरीत अन्तर हुआ है, यदि मैं प्रिय सखी को जीवित रख सकूं, मेरे लिये तत्काल बड़ा दुष्कर कार्य उपस्थित है ।

परभृतिका—(चिन्तित भाव से) तुम शीघ्र उसके पास जाओ ।

(दोनों का प्रस्थान)

परभृतिका—(देखकर) फूल की सुगन्ध से आकृष्ट हृदय यह भ्रमर तुम्हारा अनुसरण कर रहा है ।

तरलिका—(देखकर, कौतुकपूर्ण हंसी के साथ) क्यों, यह भ्रमर मालती-माला के भीतर छिप ही गया था ? अस्तु, इस भ्रमर से युक्त रूप में

मालिकामुपनीय भर्तृदारिकाया कौतूहलमुत्पादयामि। त्व पुन परभृतिके गत्वा समीहित साधय।)

परभृतिका—(निष्क्रान्ता) ज पिअसही आणवेदि त्ति। (यत् प्रियसखी आज्ञापयति।)

तरलिका—(परिक्रम्यावलोक्य च) कध एसा चित्तसालि अन्तर-विण्णासिआणेअवण्णमणिसिलाविचित्तवेदिआ-वित्थारिअसेवालसअणीअम्मि तन्दाणिमीलिद-लोअणा भट्टिदारिआ चञ्चुपुडोग्गाहिअ पत्तिआ सपद ज्जेव संपत्ता पडिअहसी अ पलोइअदि। (कथमेषा चित्रशालिकान्तरविन्यासितानेकवर्णमणिशिलाविचित्रवेदिकाविस्तारितशैवालशयनीये तन्द्रानिमीलितलोचना भर्तृदारिका चञ्चूपुटोद्ग्राहितपत्रिका साम्प्रतमेव सम्प्राप्ता पण्डितहसी च प्रलोक्यते।)

(तत प्रविशति यथानिर्दिष्टा प्रभावती शुचिमुखी च)

शुचिमुखी—(विलोक्य सकरुणम्) अहो चरमोऽयमस्या विरहवेदना-विपाक, तथाहि —

तापस्विद्यत्सरसविसिनीपत्रसंसक्तगात्रा
चित्रालेव द्युमणिकिरणम्लायमाना मृणाली।

हो इस मालती को राजकुमारी के पास ले जाकर उनका कौतुक उत्पन्न करूगी। परभृतिके, तुम जाकर अपना काम करो।

परभृतिका—प्रियसखी की जैसी आज्ञा। (जाती है)

तरलिका—(चलकर, आगे देखकर) क्यों, यह चित्रशाला के भीतर अनेकवर्ण मणिशिला पर फैलाये गये शैवाल की शय्या पर तन्द्रितनयना राजकुमारी, और चोंच में पत्रिका लिये तत्काल आगता पाण्डित हसी दीख रही है।

(यथानिर्दिष्ट रूप मे प्रभावती तथा शुचिमुखी का प्रवेश)

शुचिमुखी—(देखकर करुणभाव से) अहा, इसकी विरह वेदना की यह आखिरी स्थिति है। क्योंकि—ताप से म्लायमान कमलिनीपत्र पर इसकी देह सट गई है, इस समय यह सूर्यकिरणों से म्लान रूप मे चित्रित मृणाली के

वारंवारोच्छलित विषमोन्मूर्च्छनामीलिताक्षी
साक्षीकृत्य स्फुरितमुरसो जीविते ताम्यतीयम् ॥ १ ॥

यत्सत्य जीवितमेतस्या नि श्वास एव निवेदयति, किञ्च—

न केवलं जीवितमेतदीयं
निवेद्यते नि श्वसितानिलेन ।
विनामुना सन्निहितासु क स्याद्
वक्ता मृणालीषु विशेषमस्या ॥ २ ॥

(चिर निरूप्य) अहो नि स्पन्दता ! अथवा—

उरसि विसिनीपत्रं कण्ठे सरोजदलावली
वलययुगली पाणिद्वन्द्वे मृणालविनिर्मिता ।
अयमयमियान् भारस्तन्वी मृदुर्मदनालसै-
रियमतिकृशैरङ्गस्पन्दे कथं प्रभविष्यति ॥ ३ ॥

यावदिमां बोधयामि (इति पक्षाञ्चलेन वीजयति) ।

सदृश प्रतीत हो रही है। बार बार उमड़नेवाली मूर्च्छा से इसकी आँखें मीलित हो रही हैं हृदय के स्फुरण को साक्षी बनाकर यह अपने जीवन पर कुपित हो रही है ॥ १ ॥

यह सत्य है कि इसके नि श्वास ही इसकी जीवितावस्था के प्रमाणस्वरूप हैं। और—

इसका नि श्वास केवल इसके जीवित होने की सूचना ही नहीं देता है, यदि नि श्वास नहीं रहे तो इस राजकुमारी तथा सन्निहित मृणाली में विशेष को कौन कह सकेगा ? ॥ २ ॥

(देर तक देखकर) अहा, कैसी निस्पन्दता है ! अथवा, छाती पर कमल के पत्ते निहित हैं, कण्ठ में भी कमलपुष्प को पखुंरियाँ रखी गई हैं, दोनों हाथों मे मृणाल-निर्मित वलय डाल दिये गये हैं इतने भार के रहते हुए यह कृशाङ्गी अपने कृश तथा कामालस शरीरावयवों के द्वारा सञ्चार करने मे किस प्रकार समर्थ हो सकती है ॥ ३ ॥

तब तक मैं इसे जगाती हूँ। (पल्ल से हवा करती है)

प्रभावती—(समुखभङ्गम्) सहि तरलिए, मुञ्च मुञ्च, ण क्खु वीइदं सुहावेदि। (सखि तरलिके, मुञ्च मुञ्च, न खलु वीजितं सुखयति।)

तरलिका—(उपसृत्य) एसा क्खु अहं मालइमालिअं घेत्तूण संपदं ज्जेव संपत्तम्हि, तुमं उण पक्खञ्चलेण सुइमुही वीअदि। (एषा खल्वहं मालतीमालिकां गृहीत्वा साम्प्रतमेव सम्प्राप्तास्मि, त्वां पुनः पक्षाञ्चलेन शुचिमुखी वीजयति।)

शुचिमुखी—(जनान्तिकम्) तरलिके, अस्ति किमपि कुसुममालिकायाम्?

तरलिका—सहि अत्थि भमरो। (सखि, अस्ति भ्रमरः।)

शुचिमुखी—(सस्मितम्) तर्हि समक्ष एव कुमारस्य प्रभावतीं व्याहारयामि।

तरलिका—(साश्चर्यम्) कधं सो ज्जेव एसो। (कथं स एव एषः।)

शुचिमुखी—किमन्यत्। (प्रकाशम्) अयि भर्तृदारिके, किमिदम्? उन्मीलय लोचने।

प्रभावती—(निःश्वस्य) किं उन्मीलिअअच्छीए पेच्छिदव्वं। (किमुन्मीलिताक्ष्या प्रेक्षितव्यम्।)

प्रभावती—(मुंह घुमाकर) सखि तरलिके छोडो मुझे—छोडो, हवा मुझे सुख नहीं दे रही है।

तरलिका—(समीप जाकर) मैं मालतीमाला लेकर अभी आई हूँ, तुझे तो शुचिमुखी अपने पंख से हवा कर रही है।

शुचिमुखी—(छिपाकर) तरलिके, क्या मालतीमाला मे कुछ है?

तरलिका—हाँ सखी, भ्रमर है।

शुचिमुखी—(मुस्कुरा कर) तब तो कुमार के सामने ही प्रभावती से कहवा देती हूँ।

तरलिका—(आश्चर्य के साथ) क्यों, यह भ्रमर वही है।

शुचिमुखी—और क्या? (प्रकट) हे राजकुमारी, यह क्या? देखो तो आँखें खोलो।

प्रभावती—(लंबी सांस लेकर) आंख खोल कर मैं क्या देखूं?

शुचिमुखी—पश्य, प्रेक्षणीयमुपदर्शयामि।

प्रभावती—सहि, दुल्लहाहिणिवेसमोहिदाए किं मे पेच्छणिज्जं। (सखि, दुर्लभाभिनिवेशमोहितायाः किं मे प्रेक्षणीयम्)

शुचिमुखी—

पुरश्चिरमनोरथप्रणयिना तव प्रेषितं
सखि प्रणयभूषितं मदनलेखमालोकय।
क्षणाद्विरहवेदनापनयनैकसिद्धौषधे
निधेहि गुणपौरुषप्रणयिनि प्रिये लोचनम् ॥ ४ ॥

प्रभावती—(सानन्दमुत्थाय चक्षुरुन्मीलयन्ती) सहि, मा क्खु मा क्खु विप्पलम्भमेत्तकेण जीवाविअ पुणो पुणो दूसहाइ सन्तावाइ अणुभावइस्ससि। (सखि, मा खलु मा खलु विप्रलम्भमृत्युकेन जीवयित्वा पुनः पुनः दुःसहान् सन्तापान् अनुभावयिष्यसि।)

शुचिमुखी—अयि असवरणशीले, यस्य जन्मन्येकमवलोकनं प्रार्थयन्ती त्वमासीः, तस्मिन्नेवमनिवारितमवलोकितेऽपि किमेवमवसीदसि ?

शुचिमुखी—देखो देखने लायक वस्तु दिखला रही हूँ।

प्रभावती—सखि, मैंने दुर्लभ वस्तु की लालच करके अपने को मोहित बना लिया है, अब क्या देखना है ?

शुचिमुखी—पहले तो तुम तुम्हारे चिरकाल प्रेमी के द्वारा भेजा गया स्नेहभूषित कामलेख देखो, इस के बाद ही हे सखि, विरहबाधा को दूर करने में *सिद्धौषधस्वरूप, गुण तथा पराक्रम से युक्त अपने प्रियतम को* देखो ॥ ४ ॥

प्रभावती—(सानन्द उठती हुई आँखें खोल कर) सखि, नहीं नहीं, क्यों तुम मुझे विप्रलम्भ की मौत से जिला कर बार बार दुःसह सन्ताप देती रहती है ?

शुचिमुखी—हे असवरणशील, जिसे तुम जीवन में एकबार देखने के लिये प्रार्थना किया करती थी, वही इस समय अनिवारित रूप में तुम्हें दीख रहा है, फिर क्यों उदास हो ?

प्रभावती—सहि, एदिना तस्स महामहग्घजम्मणो समक्खदंसणेण ज्जेव परव्वसा एरिसं अवत्थन्तरं पाविदह्मि । पेक्ख—(सखि, एतेन तस्य महामहार्घजन्मनः समक्षदर्शनेन एव परवशा एतादृशमवस्थान्तरं प्रापितास्मि । पश्य—)

> अअ अव्वसे चुलुइदं यहेच्छिअं लोअणेहिं लाअण्णं ।
> एण्हि विसम्भपीअं तह्मि अजीअं पराहवइ ॥ ५ ॥
> (*अयि अवशे चुलुकित यथेच्छ लोचनैर्लावण्यम् ।*
> अधुना विसम्भपीत त चिरजीव पराभवति ॥ ५ ॥)

(इति हस्तं प्रसारयति)

शुचिमुखी—(पत्रिकामर्पयति)

प्रभावती—(वाचयति)

> त्यक्त्वा त्वद्विरहेण येन जलधिं जन्मस्थलीमिन्दुना
> सन्तीर्णाः परितो हिरण्मयगिरिं ताः प्रान्तरश्रेणयः ।
> प्राचीनाचलमेखलामपि मनागुल्लङ्घ्य तेनामुना
> सार्यं कैरविणि प्रतीहि विरहव्यामोहमुन्मीलितम् ॥ ६ ॥

प्रभावती—सखि, उस महानुभाव के इस प्रत्यक्ष दर्शन से ही मैं इस तरह की अवस्था को प्राप्त हो गई हूँ, देखो ।

पराधीनभाव से मैंने अपनी आखो से यथेच्छ रूप में प्रियतम के लावण्य का पान किया, वही लावण्य अधिक मात्रा मे पी लेने के कारण मेरे प्राणो को पराभूत कर रहा है ॥ ५ ॥

(हाथ फैलाती है)

शुचिमुखी—(चिट्ठी देती है)

प्रभावती—(पढ़ती है)

हे कैरविणि, जिस चन्द्रमा ने तुम्हारे वियोग मे जन्मस्थान समुद्र का त्याग करके सुमेरु के चारो ओर अवस्थित प्रान्तर भूमियाँ पार की, उदयाचल की तलहटी का भी उल्लङ्घन *किया, वही चन्द्रमा इस समय तुम्हारे विरह*कृत व्यामोह को दूर कर रहा है, विश्वास करो ॥ ६ ॥

अहो एस महाभाअस्स महुरो वअणोवण्णासो असम्भाविअत्थोवि सुहावेदि। (अहो एष महाभागस्य मधुरो वचनोपन्यासोऽसंभावितार्थोऽपि सुखयति।)

शुचिमुखी—(आत्मगतम्) क्षणमभिसन्धाय प्रभावतीमवतारयामि किमपि कुतूहलम्। (प्रकाशम्)

सखि, सत्यसम्भावितमिवैतत्।

तरलिका—(सोपालम्भमिव) ता तुमं पढ़मं पच्चइआ विअ कीस भणन्ती आसि। (तत्व प्रथमं प्रत्ययितेव कथ भणन्ती आसीः)

शुचिमुखी—अह कदाचिदप्रत्येयमपि तिर्यक्तया प्रत्येमि।

तरलिका—(हस्तं तिर्यगावर्जयन्ती) उज्जुअं ज्जेव किण्णु भणीअदि मव्वं क्खु एद विप्पलम्भो त्ति। (ऋजुमेव किन्न भण्यते सर्वं खल्विदं विप्रलम्भ इति।)

प्रभावती—(सवैचित्र्यम्) सहि कहिदं ज्जेव मए मा क्खु विप्पलभमेच्चुकेण। (इत्यादि पठित्वा रोदिति) (सखि कथितमेव मया 'मा खलु विप्रलम्भमृत्युकेन')

अहा, महानुभाव का यह मधुर वाक्य अर्थ के असंभव होने पर भी आनन्दित कर रहा है।

शुचिमुखी—(स्वगत) क्षणभर वञ्चना करके प्रभावती को कुछ कुतूहल में डाल देता हूँ। (प्रकट) सखि, वस्तुतः यह असंभव है।

तरलिका—(उलाहने के स्वर में) तो तुम पहले विश्वस्त की तरह क्यों कहती रही?।

शुचिमुखी—मैं पक्षी जाति की होने के कारण कभी अविश्वनीय बात पर भी विश्वास कर बैठती हूँ।

तरलिका—(हाथ चमकाकर) सीधे क्यों नहीं कहती हो कि यह सब वञ्चना है।

प्रभावती—(मोह में पड़कर) सखि, मैंने तो कहा कि मुझे विप्रलम्भ मृत्यु से जिला''' (इत्यादि पूर्वोक्त दुहराकर रोती है)।

तरलिका—(विलोक्य) (सकौतुकम्) अहो मालदीमालामज्झादो निस्सरिअ एक्को महुअरो भट्टिदारिआए समीवं उअसप्पइ। (अहो मालतीमालामध्यतो निःसृत्य एको मधुकरो भर्तृदारिकासमीपमुपसर्पति ।)

शुचिमुखी—(विलोक्य सचमत्कारम्) भर्तृदारिके,

कलय कुतुकमेतत्त्वन्मुखाम्भोजभाजा
मिलदधरमरन्देनाहृत सौरभेण ।
सुमुखि कलुषमश्रैर्लोचनं कस्य हेतो
रिदमनुनयति त्वां भाङ्कृतैरेष भृङ्गः

प्रभावती—(सदृक्क्षेप भ्रमरबाधा रूपयति)

शुचिमुखी—(आत्मगतम्) अहह ।

कनकमधुकरे स्मरे सलीलं
भ्रमणपरे परितो मुखारविन्दम् ।
प्रणयपरिचयादिवोत्पलाक्ष्या
प्रसरति कापि रसालस कटाक्षः ॥ ८ ॥

तरलिका—(देखकर) (कुतूहल से) अहा मालतीमाला मे से निकल कर एक भ्रमर राजकुमारी के पास जा रहा है ।

शुचिमुखी—(देख कर—चमत्कार से) राजकुमारीजी तुम्हारे मुख कमल में वर्तमान अधररस सौरभ पर आकृष्ट यह भ्रमर अपने भंकार से तुमको अनुनीत कर रहा है हे सुमुखि, फिर तुम्हारी आँखो मे आँसू का क्या कारण है ? ॥ ७ ॥

प्रभावती—(आख से देख कर भ्रमरबाधा का अनुभव करती है)

शुचिमुखी—(स्वगत) अहा !

भ्रमररूपधारी इस कामदेव के द्वारा इस सुन्दरी के मुखकमल के चारो ओर भ्रमण किये जाने पर यह सुन्दरी रसालस-सा कटाक्ष निक्षेप कर रही है, ऐसा लगता है मानो इसको प्रणय प्रकट करने का अभ्यास हो ॥ ८ ॥

प्रभावती—(मुखमावृण्वती) अम्महे. दुव्विणीदो विअ एस महुअरो वअणं ज्जेव परिहवइ। (दुर्विनीत इवैष मधुकरो वदनमेव परिभवति।)

शुचिमुखी—(स्मित्वा) अयि दुर्विनीतैवैषा रसिकजातिः। यतः—

कम्पयति विटपमङ्गं प्रसूनमास्यं पराभवति।

दशति प्रवालमधरं सखि रसभाजां स्वभाव एवायम् ॥ ९ ॥

प्रभावती—(भूयोऽपि भ्रमरबाधां रूपयित्वा, सकोपम्)

चोरअकुसुमरसाणं विरमसु रे मा करेसु दुव्विणअं।
गरुआवराहवन्धं कण्णुप्पलम्मि पाविहसि ॥ १० ॥
(चोरककुसुमरसानां विरम रे मा कुरु दुर्विनयम्।
गुरुकापराधबन्धं कर्णोत्पले प्राप्स्यसि ॥ १० ॥)

शुचिमुखी—अहो महानयं निग्रहनिर्देशः।

तरलिका—(विलोक्य) अच्छरिअं अच्छरिअं अम्महे, परव्वसो विअ भट्टिदारिआए भमरो जदो एदं निग्गहणिदेसं पमाणीकरन्तो पइट्ठो ज्जेव से कण्णूप्पलं। (आश्चर्यम्, आश्चर्यम् अहो परवश इव भर्तृदारिकाया भ्रमरो यत एतं निग्रहनिर्देशं प्रमाणीकुर्वन् प्रविष्ट एवास्याः कर्णोत्पलम्।)

प्रभावती—(मुह ढकती हुई) अहो यह दुर्विनीत भ्रमर तो मुख पर ही धावा बोल रहा है।

शुचिमुखी—(मुस्कुराकर) अरी, यह रसिकों की जाति सदा ही दुर्विनीत हुआ करती है क्योंकि—हे सखि, रसिकों का ऐसा स्वभाव ही हुआ करता है वे लतारूप अङ्ग को कम्पित करते हैं, पुष्परूप मुख पर धावा बोलते हैं, और प्रवालरूप अधर का चुम्बन करते हैं ॥ ९ ॥

प्रभावती—(पुनः भ्रमरबाधा का अनुभव करके कोप से) रे कुसुम-रसचौर भ्रमर, रुक जाओ ज्यादती मत करो, यदि तुम नहीं मानोगे तो तुम्हारे अपराध के दण्ड में तुम्हें मैं कर्णोत्पल में बांध दूंगी ॥ १० ॥

शुचिमुखी—अरे, यह तो बहुत बड़े दण्ड की घोषणा है।

तरलिका—(देखकर) आश्चर्य है आश्चर्य, जैसे वह राजकुमारी के वश में हो, उस प्रकार से यह भ्रमर दण्डाज्ञा सुनकर उसे मानता हुआ कर्णोत्पल में प्रवेश कर रहा है।

प्रभावती—(सासूयमिव) अइ का एत्थ परवसदा, पसिद्धं ज्जेव कुसुमाणुबन्धलोहित्तणं महुअराणं। (अयि, कात्र परवशता, प्रसिद्धमेव कुसुमानुबन्धलोभित्वं भ्रमराणाम्।)

शुचिमुखी—(सोपालम्भमिव) मामैवम्—

कोपेऽपि जल्पितमलं धयति त्वदीयं
तन्वि ब्रवीषि परुषाणि कथा किमस्मिन्।
प्रागत्वदाननसरोरुहसौरभोऽय-
मस्याधुनापि किमसौ कुसुमानुबन्धः ॥ ११ ॥

तरलिका—कध परिच्चइअ कण्णुप्पलं बाहिराहिमुहं पत्थिदो ज्जेव महुअरो। (कथं परित्यज्य कर्णोत्पलं बहिरभिमुखं प्रस्थित एव मधुकरः।)

शुचिमुखी—कथं नामानभिज्ञतापवादेनावज्ञातो नापयास्यति।

प्रभावती—(सकौतुकानुतापम्) कधं अन्तरिदो ज्जेव चित्तसालिआदुआरोवक्खित्तसीअलोसीरतिरक्करणीए भमरो। (कथमन्तरित एव चित्रशालिकाद्वारोपक्षिप्तशीतलोशीरतिरस्करिण्या भ्रमरः।)

प्रभावती—(असूया के स्वर में) इसमें परवशता की क्या बात है? यह तो प्रसिद्ध ही है कि भ्रमरगण पुष्पसंबन्ध के लोभी हुआ करते हैं।

शुचिमुखी—(उलाहने के स्वर में) नहीं नहीं, ऐसी बात नहीं है, तुम्हारी कुपित उक्ति को भी यह पीता सा रहता है, हे कृशाङ्गि, क्रोधवश तुम इसको कठोर शब्द क्यों कहती हो? इसे जब तुम्हारे मुख की सुगन्ध के आस्वादन का अवसर मिल चुका है तो क्या इसे अब भी फूलों पर आदर रह ही गया है ॥ ११ ॥

तरलिका—क्यों कर्णोत्पल का त्याग करके यह भ्रमर बाहर की ओर चल पड़ा?

शुचिमुखी—अनभिज्ञ होने का कलङ्क लगाकर इसे अपमानित किया गया, फिर यह कैसे न भागेगा?

प्रभावती—(कुतूहल तथा अनुताप के साथ) क्यों, चित्रशाला के द्वार पर लटकने वाले पर्दे के भीतर छिप गया वह भ्रमर।

शुचिमुखी—(सस्मितम्) सखि, सुचिरमेकसरोधिवासेन सुपरिचितोऽयमस्माकं भ्रमरः, ततो यदि भवति भवत्याः कुतूहलं तदा कियदिदम्, इदानीमेव विनिमीलत्कमलमधुपानोत्कलिकातरलमपि परावर्त्तयाम्येनम् ।

तरलिका—(साभ्यर्थनम्) पिअसहि, परावट्टेसु भट्टिदारिआए विरहविणोदणत्थं महुअरं । (प्रियसखि, परावर्त्तय भर्त्तदारिकाया विरहविनोदनाय मधुकरम् ।)

प्रभावती—जइ दुव्विणीदं हअं परिच्चइअ णिवत्तदि । (यदि दुर्विनीतं हतं परित्यज्य निवर्तते ।)

शुचिमुखी—(अपवार्य सानन्दम्) अथैताम्—

रतिमतिचिरचीर्णानेकपुण्यावतीर्णां
मिलतु ललितजन्मा मन्मथो रौक्मिणेयः ।
भवतु भवनमेतद्धन्यमन्योन्यशोभा-
सुभगमिथुनरत्नालङ्कृतिश्लाघनीयम् ॥ १२ ॥

शुचिमुखी—(मुस्कुराकर) सखि, चिरकाल तक एक साथ एक सरोवर में वास करने के कारण यह भ्रमर हमारा परिचित है, यदि आपको कौतुक है, तो कहिये विकसित होते हुए कमल के रस को पीने के लिये चञ्चल इस भ्रमर को मैं अभी लौटा देती हूँ यह कौन बड़ी बात है ?

तरलिका—(प्रार्थना के स्वर में) प्रियसखि, राजकुमारी के विरह विनोदनार्थ इस भ्रमर को लौटाओ ।

प्रभावती—यदि यह अपने दुर्विनीत व्यवहार का त्याग कर के लौटे तब तो ।

शुचिमुखी—(छिपाकर, सानन्द) दीर्घकाल तक किये गये पुण्यों के बल पर रति ने प्रभावती के रूप में अवतार ग्रहण किया, इस रति के अवतार रूप में वर्तमान प्रभावती को दिव्य रूप में अवतीर्ण कन्दर्प स्वरूप प्रद्युम्न मिल जाय, और अन्योन्य शोभा से रमणीय युगल रत्न के मिलन से यह भवन धन्य होवे ॥ १२ ॥

(प्रकाशम्) (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) भो महाभागधेयनन्मन्, अभिनवकमलामोदमधुरमधु मान्मथानन्द कन्दलाभिराम कामभ्रमर स्वरूपमिदमपास्य तिरस्करण्यन्तरालेन परावर्त्तमान प्रवर्त्तय भर्तृदारिकाया विरहविनोदेन विलक्षण पक्षपातम् इति ।

(तत प्रविशत्येकान्ते मा मथ रूपमास्थाय कुमार)

कुमार —(सोच्छ्वासम) सेयं सुवदना—

पन्था पाथोधिवेलानिखिलनगनदीकाननैर्दूरकीर्णः
सन्तीर्णः स्वर्णभूमीधरपरिसरभूर्दुर्गमापि व्यलङ्घि ।
आक्रान्तं वज्रनाभासुरनगरमुपक्रम्य शैलूषवेषं
नि शेषं दानवाना कुलमपि यदुभिर्यत्कृते कार्यमेतत् ॥ १३ ॥

आश्चर्यम्—

दूरादाकुलमक्षिणी प्रणिहिते पीनस्तनीमीक्षितुं
कुम्भाभ्यां फलिता व्यलोकि ललिता काचिल्लता काञ्चनी ।

(प्रकट) (नेपथ्य की ओर देखकर) हे महाभाग, नवीन कमलसुगन्ध से मधुर पुष्परसरूप कामकन्दप्रभव आनन्द के लोभी कामभ्रमर आप अपना यह रूप छोडकर पर्दे के अन्दर जाकर राजकुमारी की विरहवेदना को दूर करके विलक्षण पक्षपात का परिचय दीजिये ।

(इसके बाद एकान्त मे कन्दर्परूपधारी कुमार का प्रवेश)

कुमार—(उच्छ्वसित होकर) यही है वह सुन्दरी—जिसके लिये हम यदुवंशियो ने समुद्रतट, पर्वत, नदी तथा काननो स भरे मार्ग तय किये, दुर्गम सुमेरु प्रा त की पृथ्वी का लङ्घन किया, नटवेष धारण करके वज्रनाभासुर की नगरी प्राप्त की, और दानववश को समाप्त करन की ठानी है ॥ १३ ॥

आश्चर्य है

मैंने दूरसे आकुलभाव धारण करके पीनकुचा प्रेयसी के दर्शनार्थ आँखें दौडाई और मुझे देखने को मिलगई एक ऐसी सोने की लतिका जिसमे घटरूप फल

आसीत् कौतुकमास्यमुत्पलदृशः संवीक्षितुं वीक्षित-
खेलत्खञ्जनकेलिपञ्जरपदं प्राप्तः कलानायकः ॥ १४ ॥

ततश्च—

अधिगतमियच्चित्रं मित्रं मनोजमृगीदृशो
मरकतशिलातल्पे तस्या तलित्परिवर्तते ।
तलिति वलति व्योम व्योमाश्रयं च गिरिद्वयं
गिरिपरिसरे कम्बुः कम्बौ कलानिधिमण्डलम् ॥ १५ ॥

निर्माय जन्मावधिकायमस्या
श्चिराय तस्यापितसौकुमार्यं ।
अथास्य लावण्यगुणोपधाने
स्थाने बभूव स्थविरो विधाता ॥ १६ ॥

अपि च—

एतस्याः कलभाषितेन कलुषा काष्ठायिता वल्लकी
दोर्वल्ली विफलीकृता बिसलता पङ्के निलीय स्थिता ।
आस्येनापि निराकृतोऽमृतनिधिर्निर्विद्य पर्वण्ययं
स्वीयं देहमहो जुहोति दहनोद्देशेन तिग्मत्विषि ॥ १७ ॥

लटक रहे हैं उत्कण्ठा थी प्रिया के मुख को देखने की और देखने को मिले मुझे चन्द्रमा जिसपर खञ्जन खेल रहे हैं ॥ १४ ॥

इसके बाद रति के रूप से मिलता हुआ इतना सा चित्र मुझे मिला जिसमे स तप्तसी विद्युल्लता मरकत शिला के शयन पर करवटें ले रही है । उस विद्युल्लता मे आकाश मिलित है उस आकाश में दो पर्वत हैं, उन पर्वतों के पास ही शङ्ख है और उस शङ्ख पर चन्द्रमण्डल अवस्थित है ॥ १५ ॥

जीवन भर परिश्रम करके ब्रह्मा ने इसके शरीर का निर्माण किया, फिर चिर परिश्रम द्वारा उसमे सुकुमारता पैदा की । फिर जब इसमें सौन्दर्य गुण पैदा करने का समय आया तो वही करते करते ब्रह्मा वृद्ध हो गए ॥ १६ ॥

इसके मधुर भाषण के आगे वीणा कठोर-काष्ठ सी लगती है, बाहुलता द्वारा पराजित मृणाली जल मे छिपी रहती है, मुख से पराजित चन्द्रमा खिन्न होकर पर्व में अग्नि सदृश सूर्य में अपनी देह की आहुति डालते हैं ॥ १७ ॥

अहो रमणीयता विलसितस्य,

> अस्रेराकुलिते मया विलुलिते पक्षाञ्चलैरक्षिणी
> मा रोदीरिति नैकधा निगदितं झंकारकाकूक्तिभिः ।
> वारंवारमकारि कातरदृशः स्निग्धालकालम्बनं
> मायामाधुकरीं तनुं कृतवता किन्नाम यन्नाजितम् ॥ १८ ॥

अपि च मयि मायामधुव्रते,

> कुतुकादरदन्तुरं विदूरात्
> सविधं सर्पति संभ्रमेण भुग्नम् ।
> अथ कातरतारमाविरासी-
> च्चकिताकुञ्चितमीक्षितं प्रियायाः ॥ १९ ॥

तदानीञ्च—

> विसर्पत्कालिन्दीलहरिपरिपाटीपरिमृशा
> दृशा दीर्घापाङ्गक्रमणरमणीयं वलितया ।
> निरुन्मीलो नीलोत्पलदलकलापैर्न कतिधा
> सुधास्निग्धासारस्नपित इव सद्यः समभवम् ॥ २० ॥

अहा, किस तरह की रमणीयता है विलासों में ?

मैंने अपने पक्षप्रान्तों से इसके अश्रुपूर्ण नयनों को सहलाया। झंकाररूप वक्रोक्ति से मैंने बारबार कहा कि रोओ मत। इस कातरनयना के चिकने बालों का मैंने आलम्बन किया, इस प्रकार मायाभ्रमर बनकर मैंने क्या नहीं किया ? ॥ १८ ॥

मुझ मायामधुकर पर—

प्रिया ने दूर रहने पर कौतुक तथा आदर से पूर्ण, समीप आने पर घबड़ाहट में वक्र अनन्तर कातर, चकित एवं मुद्रित नयन-निक्षेप किये हैं ॥ १९ ॥

उस समय—

चञ्चल यमुना-तरङ्ग की तरह लगनेवाली एवं दीर्घ अपाङ्ग प्रदेश पार करने से वक्रीभूत दृष्टि द्वारा मैं कई बार अमृत-स्नात सा कर दिया गया, मुझे उस समय ऐसा लगता था कि मेरे ऊपर नीलकमल गिर रहे हों ॥ २० ॥

किञ्च मया प्रियतमाया —

सुकृतैः श्रुतिगोचरीकृता गुरुनिःश्वासनिरोधबन्धुरा ।
विरहज्वरखेदमन्तरा मधुरक्षामतराक्षरा गिरः ॥ २१ ।

यावदितोऽनया तिरस्करिण्या माययापवारितशरीरः प्रविश्य चित्रशालिकां प्रियाया विप्रलम्भविलसितानि विलोकयामि ।

(इति परिक्रामति)

प्रभावती—सहि अज्जम्पि ण परावुत्तो महुअरो । (सखि, अद्यापि न परावृत्तो मधुकरः)।

शुचिमुखी—(सस्मितम्)

कथमसि तरला मनागिदानीं
मधुकरः मान्तरवल्लभं त्वदीयम् ।
हरति परवशं त्वया तवायं
वदनसरोरुहसौरभानुभावः ॥ २२ ॥

और मैंने—

पूर्व पुण्यवश प्रिया द्वारा विरहज्वरकृत खेद के बीच बीच में उच्चारित गुरुनि श्वास को रोकते रहने से स्पष्ट श्रवणीय मधुर तथा मन्द कुछ शब्द भी सुन लिये थे ॥ २१ ॥

तब तक इस पर्दे से माया द्वारा अपनी देह को छिपाकर चित्रशाला म प्रवेश करके प्रिया के वियोग विलसितों को तो देख लू ।

(चलता है)

प्रभावती—सखि अब तक भी वह भ्रमर नही लौटा है ।

शुचिमुखी—(हँसकर)

चञ्चल क्यों हो रही हो, तुम्हारे मनोवल्लभ भ्रमर को तुम्हारे वदन कमल का सौरभ परवश बनाकर अभी लेता आ रहा है ॥ २२ ॥

प्रभावती—(सासूयम्) अइ काए वल्लहो भमरो का उण एत्थ पत्तिआ अब्भत्थणा। मएण तुम्हाणं मुहा पच्चअसीलत्तणप्पमादो उआलहीअदि। (अयि, कस्या वल्लभो भ्रमरः, का पुनरत्रैतावत्यभ्यर्थना, मया तव मुखात् प्रत्ययशीलत्वप्रमाद उपालभ्यते)।

तरङ्गिका—अवगदं, सुइमुहीए ज सहीए वाहरिदं एसोवि संझासंक्खद्धुणी सुणीअदि। ता किं त्ति पतिआइअ दे हिअअं। (अवगतं, शुचिमुख्या यत्सख्यै व्याहृतम्, एषोऽपि सन्ध्याशङ्खध्वनिः श्रूयते, तत् किमिति प्रत्यायितं ते हृदयम्)।

शुचिमुखी—श्रूयताम्—

पाषाणरेखाक्षरनिर्विशेषा
वाचः सतां प्रत्ययमावहन्ति।
क्वलोकि लोकश्रितयेऽपि तत्वं
जनैः पुरा कस्य मनः प्रविश्य॥ २३॥

अयश्चास्मत्पक्षसाक्षी प्रत्यक्ष एव कुमारहस्तलेखः।

प्रभावती—(पुनः करतलगतां पत्रिकामीक्षते)।

कुमारः—(चित्रशालिकाप्रवेशं नाटयित्वा विलोक्य सानन्दम्)।

प्रभावती—(असूयापूर्वक) अरी, भ्रमर किसका वल्लभ है और इसमे खुशामद क्या करना है ? मैंने तो तुम्हारे विश्वास पर उलाहना दिया था।

तरलिका—मैं समझ गई। शुचिमुखी ने तो तुमसे कहा था कि यह शङ्खध्वनि सुनी जा रही है, फिर तुमने उसपर विश्वास ही क्यों किया ?

शुचिमुखी—सुनिये—

पत्थर पर की लकीर की तरह सज्जनो की वाणी विश्वास उत्पन्न करती है। कौन किसके हृदय मे प्रवेश करके तत्व की जानकारी प्राप्त करता है॥ २३॥

हमारे पक्ष मे कुमार का यह स्वहस्तलेख ही प्रत्यक्ष प्रमाण है।

प्रभावती—(हाथ मे पडी चिट्ठी को फिर देखती है)

कुमार—(चित्रशालिका में प्रवेश का अभिनय करके देखकर सानन्द)

अद्यानवद्यजनुषा मकरध्वजेन
प्राप्तासि पत्रि जगतीजयवैजयन्ती।
एणीदृशो यदि कराम्बुजकोपभाजि
त्वय्यापतन्ति रसघन्ति विलोकितानि ॥ २४ ॥

तरलिका—अच्चरिअं अच्चरिअं, एत्थ भट्टिदारिआणामाङ्किआ मुद्दिआ मअणलेहो पलोइअदि। (आश्चर्यम्, आश्चर्यम्, अत्रभर्तृदारिकानामाङ्किता मुद्रिका मदनलेखः प्रलोक्यते)।

प्रभावती—सहि सच्चं कुदो एत्थ एसा। (सखि सत्यं कुतोऽत्रैषा ?)।

शुचिमुखी—चिरन्तनस्य विरहवेदनाविकारस्यापसरणमहौषधिरियमधिगतान्तःपुराभरणेषु भर्तृदारिकानामाक्षरसनाथा मुद्रिका महाभागेन तदनेन तीर्थेनेयमत्र पत्रिकायाम्।

कुमारः—एवमेतत्।

हृदि विरहनिदाघदूयमाने
करतलदुर्ललितेयमम्बुजाक्ष्याः।

हे पत्रिके, आज तुम को अनिन्दनीयजन्मा कामदेव ने पा लिया है, तुम जगद्विजय-पताका हो, इस मृगनयना ने अपने हाथ में लेकर तुम्हारे ऊपर अपनी सरस दृष्टि-क्षेप जो किया है ॥ २४ ॥

तरलिका—आश्चर्य है, आश्चर्य, यहाँ पर राजकुमारी की नामाङ्कित मुद्रा से युक्त मदन-लेख दीख रहा है।

प्रभावती—सखि, सचमुच यह यहाँ कहाँ से आया ?

शुचिमुखी—चिरकालिक विरह वेदना को दूर करनेवाली औषधि की सदृश यह राजकुमारी की मुद्रिका अन्तःपुर द्वारा दिये गये भूषणों में मिली है। आप इस तरह इस पत्रिका पर इसके—

कुमार—यही बात है।

मेरे विरह-सन्ताप से पीड़ित हृदय पर—प्रियतमा के हाथ में निवास से

बिसकिसलयशीतलाङ्गुलीना
मपि मिलनादनुकम्पतामुपेता ॥ २५ ॥

प्रभावती—(सबहुमानम्)

अज्ज सलाहालज्जं तिलोअजणीयजम्मफलं ।
पाणिग्गहेण गरुअं साफल्लाइं से वहइ ॥ २६ ॥
(अद्य सलाभालज्ज त्रिलोकजननीयजन्मफलम् ।
पाणिग्रहेण गुरुकं यत्साफल्यं सा वहति ॥ २६ ॥)

तरलिका—(सस्मितम्) तुमं पि खणन्तरे एआरिसी पलोइदव्वासि ।
(त्वमपि क्षणान्तरे एतादृशी प्रलोकयितव्यासि ।)

प्रभावती—(सासूयम्) अइ असबद्धप्पलावपरव्वसे अवेहि । (हंसीं प्रति) सम्मुअम्हि सपदं पज्जुण्णसिरिणो अगुलिसणाहं मुन्दिअ पलोइदु । ता तस्सि पडिच्छन्दए आलिहिदं करेहि । (अयि असबद्धप्रलापपरवशे, अपेहि । सम्मुखास्मि साम्प्रतं प्रद्युम्नश्रिय अङ्गुलिसनाथा मुद्रिका प्रलोकितुम् । तद् तस्मिन् प्रतिच्छन्दके आलिखितां कुरु ।)

दुलारी गई तथा कमलनाल की तरह शीतल अङ्गुली में रहनेवाली यह मुद्रिका मिलकर दयालुता दिखा रही है ॥ २५ ॥

प्रभावती—(आदर भाव से)

आज इस मुद्रिका का जन्म सफल हुआ, उसके जन्म का लाभ उसे मिल गया, कि कुमार ने उसे अपने हाथ में धारण करके आदर प्रदान किया ॥ २६ ॥

तरलिका—(मुस्कुराकर) क्षणभर बाद तुम भी एसी देखने में आओगी ।

प्रभावती—(असूया से) अरी, तुमको वे सिर पैर की बातें करने की आदत हो गई है, दूर हटो । (हंसी के प्रति) अब मैं श्री प्रद्युम्न की अङ्गुली में पड़ने से सनाथ मुद्रिका को देखने में सम्मुख हूँ । उसी चित्र में इस मुद्रिका को भी चित्रित कर दो ।

शुचिमुखी—उपनय तरलिके सचित्रोपकरण चित्रफलकम्। [तरलिका-नाट्येन तदाहृत्य प्रभावत्याः पुरतो धारयति। प्रभावती विस्फार्य विलोचनं विलोकयति।]

कुमार—यावदहमपि प्रियाया पार्श्ववर्ती भूत्वा विलोकयामि। चित्रफलकम्। (इति तथाकृत्वा) अहह !!

> मय्यालेख्यगते मनोरथशतेनोन्मादमासादिता
> संसर्पन्ति सरोजसुन्दरदृशो दूरोन्नमद्भ्रूलता।
> अव्रीडाविधुरा प्रमोदमधुराकूतेन विस्फारिताः
> स्फीतस्फायदपाङ्गरिङ्गणकृतो यद्वादरा दृष्टय ॥ २७ ॥

तरलिका—(विलोक्य, साश्चर्यं, जनान्तिकम्) सहि सुइमुहि, पलोएसि किंपि अच्छेरं। एत्थ फलिहसिलावेदिआए दिदिअं विअ पडिच्छन्दअं एक्को पडिबिम्बो पलोइअदि। (सखि शुचिमुखि, प्रलोकयसि किमप्याश्चर्यम्। अत्र स्फटिकशिलावेदिकायां द्वितीयमिव प्रतिच्छन्दकम् एकं प्रतिबिम्बं प्रलोक्यते।)

शुचिमुखी—अरी तरलिके, चित्रफलक तथा चित्र निर्माण की सामग्री लाओ।
(तरलिका अभिनय मुद्रा में सारी चीजें लाकर प्रभावती के आगे रख देती है और प्रभावती उसे खोलकर सावधानी से देखती है)

कुमार—तब तक मैं भी प्रियतमा की बगल में बैठकर चित्र देखूं। (वैसा करके)

अहह !! मेरे चित्र को मेरी प्रियतमा अपने मनोरथों से उन्मादित, दूर तक उठी भ्रूलता से युक्त लज्जाकृत सकोच से रहित, आनन्द से फैलती हुई तथा स्फीत अपाङ्ग में सञ्चरण करनेवाली दृष्टियों से देख रही है ॥ २७ ॥

तरलिका—(देखकर, आश्चर्य औरों से छिपाकर) सखि शुचिमुखी कुछ देख रही हो ? आश्चर्य है ! यहाँ इस स्फटिक शिलावेदिका पर द्वितीय चित्र की तरह एक छाया दीख रही है।

शुचिमुखी—(सवितर्कम् , स्वगतम्) सोऽयं समीपतरवर्तिनः कुमारस्य प्रतिबिम्ब , तत्किमत्र समाधेयम् ?

प्रभावती—अच्चरिअ अच्चरिअ, कुदो एद दिविअं पडिछन्दअं । (आश्चर्यम् , आश्चर्यम् , कुत एतत् द्वितीयं प्रतिच्छन्दकम् ।)

शुचिमुखी—कुतो द्वितीयम् , दुर्बलदशामतिशयाभिनिवेशविस्तारितं चक्षुरेकमेवावलोकनीय द्वयमिव दर्शयति ।

प्रभावती—सहि सच्च आत्थ चन्दिआचमक्कारसवलनदुम्मारिआ दुब्बला मे दिट्ठी, तहा वि कहं एद विजाणीअदि । (सखि, सत्यमात्थ चन्द्रिकाचमत्कारसवलनदुर्मारिता दुर्बला मे दृष्टि', तथापि कथमेतत् विज्ञायते ।)

शुचिमुखी—निमीलय क्षणमक्षिणी ।

तरलिका—तदो पच्छा लहुलहु पलोअन्ती एक्क पलोइस्ससि । (ततः पश्चाल्लघुलघु प्रलोकयन्ती एकं प्रलोकयिष्यसि ।)

प्रभावती—एवं भोदु । (एव भवतु ।) (इति चक्षुषी निमीलयति ।)

तरलिका—(चित्र प्रच्छादयति ।)

शुचिमुखी—(सोचती हुई स्वगत) यह तो समीपवर्ती कुमार का प्रतिबिम्ब है अब इस क्या समाधान करें ।

प्रभावती—आश्चर्य है आश्चर्य, यह दूसरा चित्र कहाँ से आ गया ?

शुचिमुखी—दूसरा चित्र कहाँ से आवेगा । जिनकी आँखें दुर्बल होती हैं, उनकी आग्रह विस्फारित दुर्बल दृष्टि एक ही वस्तु को दो दिखलाती है ।

प्रभावती—सखि, तुम ठीक कहती हो, चन्द्रिका की चकाचौंध से मारी जाने के कारण हमारी आँख दुर्बल हो गई है, फिर भी यह कैसे जाना जायगा कि एक ही चित्र है ।

शुचिमुखी—थोडी देर आँखें बन्द रखो ।

तरलिका—फिर पीछे धीरे-धीरे देखने पर एक ही देखोगी ।

प्रभावती—एवमस्तु । (आँखें बन्द करती है)

तरलिका—(चित्र को छिपा देती है)

शुचिमुखी—(क्षण स्थित्वा ।) समुन्मीलय लोचने ।

प्रभावती—(चक्षुरुन्मील्य प्रतिबिम्बमवलोकयन्ती ।) सच्च एक्क ज्जेव पडिच्छन्दअं । (सत्यम् एकमेव प्रतिच्छन्दकम् ।)

कुमार —अहो विप्रलम्भवैदग्धी पुरन्ध्रीणाम् । सोऽयं प्रत्यक्षापलापः ।

वचोभिरभिसन्धाय सचेतसमपि स्त्रियः ।
तथ्यमह्नाय निह्नूय दर्शयन्त्यन्यथा स्थितम् ॥ २८ ॥

प्रभावती—(साश्चर्यम् ।) कधं एत्थ ज्झत्ति कराङ्गुलीए मुद्दिआ वि आलिहिदा । (कथं झटिति कराङ्गुल्यामत्र मुद्रिकापि आलिखिता ।)

तरलिका—को विलम्बो एत्तिअम्मि चित्तकम्मपण्डिआए इमीए । (को विलम्ब एतावति चित्रकर्मपण्डितायां इतया ।)

शुचिमुखी—(आत्मगतम्) अतिललितमिदमभिसन्धानम् ।

प्रभावती—(विरहातिरेकं नाटयन्ती सासूयं मुद्रिकां निर्दिश्य) अइ णिद्दए मुद्दिए अज्जवि उण ससम्भमाणदुसहारम्भदारुणाए विरहवअणाए

शुचिमुखी—(थोड़ा ठहरकर) आँखें खोलो ।

प्रभावती—(आँखें खोलकर प्रतिबिम्ब को देखती हुई) सचमुच अब एक ही चित्र देखती हूँ ।

कुमार—आश्चर्यजनक होती है स्त्रियों की वञ्चन चातुरी । यह तो प्रत्यक्ष अपलाप है ।

ज्ञानवाले जनको भी स्त्रियाँ बातों से वञ्चित करके सत्य को तुरन्त छिपा देती हैं और दूसरी तरह से समझा देती हैं ॥ २८ ॥

प्रभावती—(साश्चर्य) इतनी शीघ्रता से इस चित्र में हाथ में अँगूठी किस प्रकार चित्रित कर दी गई ?

तरलिका—चित्र निर्माण पण्डिता इसी को इतने से काम में क्या देर लगती ?

शुचिमुखी—(स्वगत) यह प्रवञ्चना बहुत ठीक रही ।

प्रभावती—(विरह के आधिक्यका अभिनय करती हुई असूया से), (अँगूठी को लक्ष्य करके) अरी निर्दये मुद्रिके आज भी तुम पुनः संयुक्त तथा

परिच्चअन्तजीविअं म परिच्चइअ एक्कालिआ-णिरन्तरोपक्कन्तपरक्कमबलक्कार-परिग्गहिद-तिल्लोक्क-विजयलच्छी विच्छुरिआणण्ण-सामण्णलावण्णस्स पज्जुण्णसिरिणो करग्गहेण सोहग्गसुहकांखणीआ तुम्ह अत्तम्भरीभूदासि। अहवा—का एआरिसी जा अण्णाणकारणादो अत्तणो जम्मलाहफल परिच्चिइस्सदि। एक्क तुम सहवासपच्चएण पत्थेमि। जइ तस्स तिहुअणविहूसणस्स दसणासाए पडिजोह परिहरिअ णीभरविअम्भमाण विरहवेअणाजज्जर जीविअ विपरिच्चइदु पारेमि तदा सो जहा इस जि सुम्हरणसम्भावणाए उवरदं पिमं जीविदफलभाइणिं करेदि तहा करेसित्ति। (अपि निर्दये मुद्रिके, अद्यापि पुन सहज्यमान दुःसहारम्भदारुणया विरहवेदनया परित्यज्यमानजीविता मा परित्यज्य एकाकिनी निरन्तरोपक्रान्त-पराक्रमबलात्कार-परिगृहीत-त्रिलोक विजयलक्ष्मी विच्छुरितानन्यसामान्यलावण्यस्य प्रद्युम्नश्रिय करग्रहेण सौभाग्यसुख काङ्क्षन्ती त्वम् आत्मम्भरीभूतासि। अथवा का एतादृशी या अन्याधा कारणात् आत्मनः जन्मलाभफल परित्यक्ष्यति। एका त्वां सहवासप्रत्ययेन प्रत्येमि। यदि तस्य त्रिभुवनविभूषणस्य दर्शनाशाया पतिताह परिहृत्य निर्भरविजृम्भमाणविरहवेदनाजर्जर जीवितमपि परित्यक्तु पारयामि तदा स यथाऽस्या अपि स्मरणसभावनया उपरतामपि मा जीवितफलभागिनी करोति तथा करिष्यसीति।)

सुचिमुखी—प्रतिहतममङ्गलम् अयि किमेवमनध्यवसाय विधुरतया पराभूयसे।

दारुण विरह वेदना से म्रियमाण मुझ विरहिनी का परित्याग करके अकेली सतत पराक्रमी, बलपूर्वक वशीकृत त्रैलोक्य लक्ष्मी से युक्त अनन्य सदृश लावण्यशाली श्रीप्रद्युम्न के हाथ में निवास की इच्छा रखती हुई स्वार्थिनी हो रही है, अथवा—ऐसी कौन होगी जो दूसरो के कारण अपने जीवन की सफलता का परित्याग करेगी। सहवास के कारण एक तुझी पर मुझे विश्वास है। त्रिभुवन भूषण उस प्रद्युम्न की आशा में पडी मैं अतिप्रचुर विरह-वेदना के कारण जर्जर जीवन का परित्याग करने में समर्थ हो जाती हूँ, तब जिस तरह वह मुझ मृता को भी जीवनफलभागिनी बनावें तुम वैसा प्रयत्न करना।

शुचिमुखी—अमङ्गल दूर हो। हे राजकुमारी, इस तरह निश्चेष्ट भाव से क्यो उदास हो रही हो?

प्रभावती—(अनादृत्य) हदासजीविद, एत्तिअं उण पत्थादुकामं तुमं पत्थेमि, तारिसं जम्मन्तर-परिग्गह करिस्ससि जहिं तस्स तिहुअण-विहूसणस्स सिरिरुप्पिणीसमुप्पण्णस्स मम्महजम्मणो वअणचन्दचन्दि-उज्जोअगोअरत्तणरमणोअजम्मलाइ-सलाहणिज्जो होसि त्ति (रोदिति)
(हताशजीवित, एतावत्पुनः प्रस्तावुकामं त्वां प्रत्याययामि, तादृशं जन्मान्तरपरिग्रहं करिष्यसि यत्र तस्य त्रिभुवन-विभूषणस्य श्रीरुक्मिणीसमुत्पन्नस्य मन्मथजन्मनो वदनचन्द्रचन्द्रिकोद्द्योतगोचरत्वरमणीयजन्मलाभ-श्लाघनीयं भविष्यसीति ।)

कुमारः—अहो प्ररोहः प्रणयकातरतायाः, अहह !!

> एतानि मत्प्रणयकातरभाषितानि
> सन्तापजर्जरितजीवितनिःस्पृहाणि ।
> आरोहयन्ति बहुमानमहार्घतायां
> निर्मज्जयन्ति च मनः करुणासमुद्रे ॥ २९ ॥

प्रभावती—अहवा, किं त्ति असरणा विरज्जामि, तं ज्जेव मणोरह-सुलहं सलाहाविऊण उअलहामि, महाभाग, (इति ध्यायन्ती) (अथवा, किमिति अशरणा विरज्यामि । तमेव मनोरथसुलभं श्लाघयित्वा उपालभे, महाभाग ।)

इध सण्णिहिदोसि तुमं मह सुहअ मणोरहेहि आहरिदो ।

प्रभावती—(शुचिमुखी की उक्ति का अनादर करके) हे अभागे मेरे जीवन, जाने को उद्यत तुमसे मुझे इतना ही कहना है कि मैं तुमपर भरोसा करती हूँ, ऐसा जन्मान्तर ग्रहण करना, जिसमें त्रिभुवन भूषण कामावतार रुक्मिणी-पुत्र के मुखचन्द्र के प्रकाश मे रहने का अवसर पाकर अपना जीवन धन्य कर सको । (रोती है)

कुमार—अहो, प्रणयकातरता पैदा हो रही है अहह ! इसके यह प्रणय-कातरता-भाषण सन्तप्त जीवन के प्रति वितृष्णा व्यक्त कर रहे हैं । यह भाषण सुन कर मैं अपने को आदरारूढ एवं करुणासागर मे निमग्न सा अनुभव कर रहा हूँ ॥ २९ ॥

प्रभावती—अथवा—मैं अशरण होकर क्यों विरक्त होऊं ? मनोरथसुलभ अपने प्रियतम को ही क्यों न प्रशंसापूर्ण उलाहना दू ? (सोचती हुई)

हे सुन्दर, मेरे मनोरथों द्वारा उपस्थित किये गये तुम यहाँ मेरे पास में वर्तमान

अह जइ पडिवअणम्मि वि परम्मुहो होसि किम्भणिमो ॥ ३० ॥

(इह सन्निहितोऽसि त्वं मम सुभग मनोरथैराहृत ।
अथ यदि प्रतिवचनेऽपि परमुखो भवसि किं भणामि ॥ ३० ॥)

कुमार—अहो विरहोन्मादमेदुरेण प्रियतमाया प्रलापोपालम्भेनापि समीपतरवर्त्ती सापराधतया चेत्रीकृतोऽस्मि, तत्कुतो न प्रत्यक्षीभूय सम्भावयामि सुवदनाम् । (इत्युपसर्पति)

तरलिका—(विलोक्य, ससम्भ्रममुत्थाय सव्रीडस्मितम्) भट्टिदारिए पलोएसि परावुत्तो एस महुअरो । (भर्तृदारिके प्रलोकयसि परावृत्त एष मधुकर ।)

प्रभावती—(सचमत्कारमीक्षते)

कुमार—(अपवार्य)

चकितचकितमुग्धंकौतुकोत्तानमस्या
मधुप इति वयस्यावाचि साचिस्मितायाम् ।
समुदयति समन्तात्कौतुकोन्मज्जदच्छत्
कुवलयदलदामश्यामला लोचनश्री ॥ ३१ ॥

हो फिर भी यदि तुम उत्तर देने से भी विमुख हो तो मैं तुम्हें क्या कह सकती हूँ ॥ ३० ॥

कुमार—अहा, विरहजन्य उन्माद से भरे हुए प्रेयसी के इन प्रलापोपालम्भ से समीपवर्त्ती मैं अपराध का पात्र बनाया जा रहा हूँ फिर क्यों न मैं प्रत्यक्ष होकर सुन्दरी को आश्वासन प्रदान करूँ ? (समीप जाता है)

तरलिका—(देखकर घबड़ाहट से उठकर लज्जा तथा मुस्कुराहट के साथ) राजकुमारी, देखो यह भ्रमर लौट आया है ।

प्रभावती—(चमत्कृत होकर देखती है)

कुमार—(छिपाकर) चकित, कौतुक से उत्तान, इसकी दृष्टि सखी के वचन पर चारो ओर कुवलय की माला की तरह चल रही है ॥ ३१ ॥

(प्रकाशम्) अयि प्रियतमे, किमपीदमपरिकलितपरावस्थाविधुरमुपालभ्योऽस्मि ।

कतिधा न मनोरथोपनीता
प्रणिपातैर्गमितानुकूलताम् ।
विधृताऽथ विधूतशङ्कमङ्के
मधुराभाषिणि भाषिता त्वमासीः ॥ ३२ ॥

प्रभावती—(ससम्भ्रमोत्कम्पमुत्तिष्ठन्ती) अहो अच्चाहिद अन्तेउरम्मि । (अहो अत्याहितमन्तःपुरे ।)

कुमारः—(सप्रतिषेधम्)

तन्वीं तनुं गुरुपयोधरभारभुग्ना
मायासितामथ वियोगपराभवेन ।
उत्थाय खेदकलुषीकुरुषे यदेव–
मत्याहितं सुतनु केवल मेतदेव ॥ ३३ ॥

प्रभावती—(सोत्कम्पकातरम्) हा ताद, को उवाओ । (हा तात, क उपाय ।)

शुचिमुखी—भर्तृदारिके, किमेतत् ?

(प्रकट) हे प्रियतमे, तुम दूसरे की अवस्था की कल्पना किये बिना ही यह उलाहना दे रही हो,

मैंने अनेक बार तुमको मनोरथ द्वारा समीप बुलाकर, और चरणों पर गिर कर अनुकूल बनाकर, निःशङ्क भाव से गोद में बैठाकर, तुमसे बातें की हैं ॥

प्रभावती—(घबड़ाहट से उठती हुई तथा कांपती हुई) अहा, अन्तःपुर में महाभय उपस्थित हुआ है ।

कुमार—(रोकते हुए)

स्तन के भार से झुकी एवं वियोग-व्यथा से आयासित दुर्बल देह को उठने से जो तुम खिन्न कर रही हो, हे सुन्दरि, केवल यही महाभय है ॥ ३३ ॥

प्रभावती—(कांपती हुई कातर भाव से) हाय पिताजी क्या उपाय है ?

शुचिमुखी—राजकुमारी, यह क्या ?

यस्मिन् दूरदिगन्तवर्त्तिनि मनोवृत्तिस्तवाभूत्तथा
तस्मै दुःसहमन्मथाकुलतया नीतास्त्वया वासराः।
निर्मोक्तुं बहुवारनिश्चितवती त्वं यत्कृते जीवितं
सोऽयं साहसिकः स्वयं सखि तव स्नेहादिहाभ्यागतः ॥ ३४ ॥

अपि च—

भूत्वा पीयूषांशुवंशैकवीरः
कृत्वा कुत्साकारिशैलूषवेषम्।
सूनुः साक्षात्पुण्डरीकाक्षलक्ष्म्योः
किञ्च प्राप्तस्त्वामयं पञ्चबाणः ॥ ३५ ॥

तरलिका—सहि, सच्चं सुइमुहीए उआहरीअदि। ता किंत्ति सम्पत्तजम्मलाहफलं अत्ताणं णाहिणन्दसि। (सखि, सत्यं शुचिमुख्या उदाह्रियते तत् किमिति सम्प्राप्तजन्मलाभफलम् आत्मानं नाभिनन्दसि?)

प्रभावती—(सास्रम्) किं करेमि अत्तणो असाहीणा। (किं करोमि आत्मनोऽस्वाधीना।)

जिसके दूरस्थित रहने पर तुम्हारी वैसी मनोदशा थी, जिसके लिये कामातुर होकर तुम दिन बिताया करती थी, जिसके बिना तुमने कई बार जीवन त्यागने का निश्चय कर लिया था वही यह साहसी वीर तुम्हारे स्नेहवश यहाँ स्वयं उपस्थित हुए हैं ॥ ३४ ॥

और—चन्द्रवंशी वीर होकर भी निन्दनीय नटवेष धारण करके यह लक्ष्मी तथा नारायण के पुत्र साक्षात् कामदेव तुम्हारे पास उपस्थित हुए हैं ॥ ३५ ॥

तरलिका—सखि शुचिमुखी ठीक ही कह रही है, तुमको जीवनधारण करने का फल प्राप्त हो गया है, तुम क्यों नहीं अपने को बड़भागी मानती हो।

प्रभावती—(रोकर) मैं पराधीना कन्या करूँ क्या?

शुचिमुखी—अपि, स्वाधीना एव स्वयंवराः कुलकुमार्यः ।

किञ्चात्र—

पुरा पराधीनतया स्थिताया
मनोऽनुरागं मुनिकन्यकायाः ।
निदर्शनत्वेन शकुन्तलाया
दुष्यन्तपाणिग्रहणं गृहाण ॥ ३६ ॥

प्रभावती—(निःश्वस्य परावृत्य तरलिकामीक्षते)

तरलिका—महाभाअ, भट्टिदारिआ विण्णवेदि एदं विचित्तमणि-सिलावेदि-अक्कदेसमलकरेदु कुमारो । (महाभाग, भर्तृदारिका विज्ञापयति एतं विचित्रमणिशिलावेदिकैकदेशम् अलङ्करोतु कुमारः ।)

कुमार—(प्रभावतीं प्रति) अयि प्रियतमे,

मयि चेन्मदनक्लमाकुले त्वं
सुकृतैः स्नेहवति प्रसीदसि ।
इह शैवलशीतले निवेशं
शयनीयेऽप्यनुमन्तुमर्हसि ॥ ३७ ॥

(इति प्रभावत्या मुखमवलोकयंस्तिष्ठति)

शुचिमुखी—अरी, कुलकन्यायें स्वयंवरा होने से सदा स्वाधीना ही होती हैं । इस विषय में—

पराधीनभाव से अवस्थित मुनिकन्या शकुन्तला के मनोनुराग तथा दुष्यन्त के साथ विवाह को ही दृष्टान्त समझ लो ॥ ३६ ॥

प्रभावती—(निश्वास लेकर उलट कर तरलिका की ओर देखती है)

तरलिका—महाभाग, राजकुमारी कह रही हैं कि आप इस विचित्र मणिशिला-वेदिका के एक भाग में बैठें ।

कुमार—(प्रभावती के प्रति) हे प्रियतमे,

काम-पीड़ित मुझ पर यदि तुम मेरे पुण्यों से प्रसन्नता प्रकट करना चाहती हो तो इस शैवल-शीतल शयन पर भी बैठने की अनुमति-प्रदान कर सकती हो ॥ ३७ ॥

(ऐसा कहकर प्रभावती का मुख देखता रहता है)

शुचिमुखी—(विलोक्य, आत्मगतम्)

प्रियेक्षितायाः प्रतिनैत्रपात-
त्रपाभरैर्दूरमपाङ्गनोऽस्याः ।
रोमाङ्कुरोऽम्भोजविलोचनायाः
कपोलयोः केन निवारणीयः ॥ ३८

(प्रकाशम् । सस्मितम्) महाभाग,

हृदये सुचिरं मृगीदृशोऽस्या
ननु कस्यानुमते त्वमासितोऽभूः ।
अधुना शयनान्तमासितुं त्वा-
मनुमन्तुं कतमा प्रभावती स्यात् ॥ ३९ ॥

प्रभावती—(सासूय शुचिमुखीमीक्षते)

कुमारः—(सप्रश्रयम्) तदहमस्मिन् परिजनोचिते शैवलशयनोपान्ते समुपविशामि । (इत्युपविशति)

तरलिका—(प्रभावतीं हस्ते गृहीत्वोपवेशयति)

शुचिमुखी—(देखकर, स्वगत)

प्रियतम द्वारा देखे जाने पर इसने लज्जावश उसकी तरफ देखना तो छोड दिया है, परन्तु इसके कपोल पर जो रोमाञ्च खडे हो रहे हैं उन्हे कौन दूर करे ॥ ३८ ॥

(प्रकट) (हँसकर) महाभाग,

इस मृगनयनी के हृदय म चिरकाल से तुम किस की अनुमति लेकर बैठे रहे हो, फिर इस समय शयन के एक भाग मे बैठने की अनुमति देने मे प्रभावती कौन होती है ॥ ३९ ॥

प्रभावती—(असूया से शुचिमुखी की ओर देखती है)

कुमार—(नम्रतापूर्वक) तो मैं इस परिजन के बैठने योग्य शैवल शयन के समीप मे बैठता हूं । (बैठ जाते हैं)

तरलिका—(प्रभावती का हाथ पकड कर उसे बैठाती है)

प्रभावती—(किञ्चित्तिर्यगुपविश्य शृङ्गारलज्जां नाटयन्ती आत्मगतम्)

पांडो हि दीहदीहं णअणाणि मोसाइं दाणि दीसदसु ।
लज्जाइ मा खु मीज्जसु हरिज्जन्तमप्पाणं ॥ ४० ॥

(पापो हि दीर्घदीर्घं नयनानि मोषयित्वा इदानीं दृश्यसे ।
लज्जया मा खलु मीलय ह्रियमाणमात्मानम् ॥ ४० ॥)

(इति तिर्यगवलोकते)

कुमार —(अपवार्य)

नैवोपैति प्रणयवचनं साध्वसाद्वास्यमस्या
स्निग्धाकूतप्रसरमधुरा नाधरान्ते स्मितश्री ।
किञ्चिन्यञ्चत् कुवलयदलश्रेणिसन्दोहवाही
व्रीडावक्रं परमुदयति स्नेहसाक्षी कटाक्षः ॥ ४१ ॥

(नेपथ्ये)

भो भो रङ्गसविधानाधिकारिणः पुरुषाः, स्वयमेव महाराजः समाज्ञापयति सम्पाद्यन्तां रङ्गसविधानानि, समाहूयन्तां शैलूषाः ।

प्रभावती—(थोड़ा सा वक्र होकर बैठकर काम लज्जा का अभिनय करती हुई स्वगत)

पाप चिरकाल तक नयन चुराते रहे, आज दीख पड़े हो, अब लज्जा से अपने को छिपाओ मत ॥ ४० ॥

(ऐसा कहकर कनखी से देखती है)

कुमार—(छिपाकर)

इसका मुख प्रीतिवचन नहीं कह रहा है, न इसके चेहरे पर स्निग्ध अभिप्राय से भरी मुस्कुराहट देखने को मिल रही है, परन्तु कुछ-कुछ वक्र नीलकमल श्रेणी का वहन करनेवाली लज्जा से वक्र तथा प्रणयसूचक कटाक्ष उदित हुआ करता है ॥ ४१ ॥

(नेपथ्य में)

हे रङ्ग की तैयारी करने में नियुक्तजन, स्वयं महाराज आप लोगों को आदेश दे रहे हैं, कि आप रङ्ग को सजा दें और नटों को बुला दें ।

प्रभावती—(आकर्ण्य सविषादम्) कधं झत्ति एदम्पि उअत्थिद । (कथ झटिति एतदप्युपस्थितम् ।)

कुमार—अयि प्रियतमे, किमसभावितविप्रलम्भकातरासि ?

मया मायामवस्थाय कयापिच्छाययात्मन ।
वञ्चितेषु चिरत्नेषु विप्रयोग. प्रिये कुत ? ॥ ४२ ॥

शुचिमुखी—(पक्षतो वितत्य) किमियमागतैवास्माकं विहङ्गमाना वाग्व्यापारानभ्यायो विभावरी, तदनुजानातु मा कुलायनोपाय कुमारो भर्तृदारिका च ।

तरलिका—महाभागोवि सम्पद सुसण्णिहिदसअलपाणिग्गहमङ्गलोवआररमणीअ पल्लङ्किआमन्दिरं गदुअ अलङ्करेदु । (महाभागोऽपि साम्प्रत सुसन्निहितसकलपाणिग्रहोपचाररमणीय पर्यङ्किकामन्दिर गत्वाऽलङ्करोतु ।)

कुमार —यदादिशति भवती । (इति सर्वे समुत्तिष्ठन्ति)

कुमार —(प्रभावतीं पाणौ गृह्णाति)

प्रभावती—(सविषाद, स्वगत) क्यों, शीघ्र ही यह भी उपस्थित हो गया ?

कुमार—हे प्रियतमे, असम्भावित वियोग से तुम क्यों कातर हो रही हो ?

मैं माया का विस्तार कर के अपनी किसी छाया से उन्हे चिरकाल तक ठगता रहूगा, प्रिय, वियोग कैसे होगा ? ॥ ४२ ॥

शुचिमुखी—(पख फैलाकर) हम पक्षियों को चुप्पी धारण करवाने वाली रात उपस्थित हो गई, अत कुमार मुझे अपने घोसले में जाने की अनुमति प्रदान करें ।

तरलिका—महाभाग भी इस समय वैवाहिक उपकरणों से रमणीय पर्यङ्किका मन्दिर म चल कर अलङ्कृत करें ।

कुमार—आप को जैसी आज्ञा । (सभी उठते हैं)

कुमार—(प्रभावती का हाथ पकडते हैं)

प्रभावती—(सव्रीडमनुकम्पते)

कुमार—(सानन्दम्) अहह !!

मया लब्धं लोके फलमखिलमद्यैव जनुषः
किमन्यत्पुण्यानामियमजनि धन्या परिणतिः।
नकारस्याहारप्रतिनिधिरिहाकर्णि सुतनो-
र्घनोत्कम्पान्दोलैर्यदि कलरवः कङ्कणभवः ॥ ४३ ॥

अहो स्पर्शः!

किं कर्पूरपटीरपङ्कतटिनीस्रोतोविहारश्रमैः
किं सद्यः स्रवदच्छसीकरकलानाथोपलालिङ्गनैः।
चेदालम्बि चिराद्वयं घरतनोर्वातावधूतापतत्
पीयूषद्रवसिक्तरक्तकमलक्रोडानुकारः करः ॥ ४४ ॥

तरलिका—इदो इदो एदु कुमारो भट्टिदारिआ च। (इत इत एतु कुमारो भर्तृदारिका च।)

(इति सर्वे परिक्रामन्ति)

प्रभावती—(लज्जा से काँप उठती है)

कुमार—(सानन्द) अहह !!

मैंने अपने जन्म ग्रहण करने का समस्त फल आज ही पा लिया, और क्या कहूँ मेरे समस्त पुण्यों की यह परिणति धन्य है कि इस सुन्दरी के कङ्कण का कलरव कम्पन से आन्दोलित हो कर नकार के प्रतिनिधि रूप में सुनने को मिल गया ॥ ४३ ॥

अहो, कैसा यह स्पर्श है!

कर्पूर तथा चन्दन की नदी में विहार करने के परिश्रम का क्या फल है? स्रवने वाले स्वच्छ चन्द्रकान्त खण्ड के आलिङ्गन से क्या लाभ है, यदि इस सुन्दरी के हवा से चलित अमृतसिक्त रक्तकमलतुल्य हाथ का आलम्बन कर लिया ॥ ४४ ॥

तरलिका—कुमार, भर्तृदारिका, आप इधर चलें।

(सभी चलते हैं)

कुमारः—अहो दुस्तरेयमस्तव्यस्तता, तथा हि—

स्वेदेनोच्छलतातिपिच्छिलतरा भूयः करादङ्गुली
स्रस्ताग्रस्तकुरङ्गशावकदृशः कृच्छ्रादवष्टभ्यते ।
पश्चान्मन्थरसञ्चरत्सुवदनासम्पर्कलुब्धात्मना
गन्तुं हन्त पदात्पदान्तरमपि क्व प्राप्यते पौरुषम् ॥ ४५ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति मायामधुव्रतो नाम चतुर्थोऽङ्कः

कुमार—अहो, यह अस्तव्यस्तता दुस्तर है, क्योंकि-बहते हुए पसीने के कारण फिसलती हुई कुरङ्गनयना की यह अङ्गुली कठिनाई से अवलम्बित हो रही है, पीछे पीछे चलती हुई इस सुन्दरी के सम्पर्क के लिये लुब्ध होने के कारण मुझ में वह पौरुष कहाँ है कि मैं एक पग भी चलूँ ॥ ४५ ॥

(सभी चले जाते हैं)

मायामधुव्रतनामक चतुर्थ अङ्क समाप्त

पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति नटः)

नटः—(सबहुमानम्) अहो गुणानुरागो दनुजराजस्य, तथाहि तेषु तेषु गङ्गावतरणाद्युद्गीयमानगान्धारादिग्रामभेदेषु घनसुषिरततानद्धवादित्र-निवाद्यमानलयतालविशेषेषु शङ्करशरासनारोपण-रम्भाभिसरणादिनाटकाभिनयभूमिकादिषु च प्रमादीकृत्यैव क्रमेणास्मासु तेनानुरज्यतां राज्यलक्ष्मीः । अथवा—

> पुरतः पुरमेव सावरोधं
> विधुरेभ्यो मधुरं समर्पयन्त्या ।
> भवितव्यतया कयाचिदेषा
> मधुराणामपहारिता पृथक्श्रीः ॥ १ ॥

(सार्धकम्प) अपि नाम लघूकरिष्यत्यस्माकं व्यापारं भावः,

अथवा—

> प्रद्युम्नः परिणीय दानवसुतामन्तःपुरान्तर्विधि-
> दास्ते वज्रपुरावरोधवनिता लक्षैरलङ्कृतः ।

(भद्र का प्रवेश)

भद्र—(आदरपूर्वक) दनुजराज का गुणानुराग आश्चर्यजनक है। देखिये—गङ्गावतरण आदि गीत के स्वरग्राम, घन, सुषिर आदि वाद्यभेद, एवं शङ्कर-धनुरारोपण, रम्भाभिसरण आदि नाटकों के अभिनय पर उन्होंने प्रसन्न हो कर सारी राजलक्ष्मी हम लोगों को उपहार में देदी है। अथवा—पहले से ही अन्तःपुर सहित समस्त नगर को मधुर भाव से कुमारों को अर्पित करने वाली भवितव्यता ने असुरों की समस्त सम्पत्ति छीन ली है ॥ १ ॥

(आशा भरे स्वर में) क्या मालिक हमारे कार्य को आसान करेंगे ? अथवा—

प्रद्युम्न दानवराजकुमारी के साथ विवाह कर के वज्रपुर के अन्तःपुर में वहाँ की लाखों-लाख ललनाओं से अलंकृत हो कर वास कर रहे हैं, अब

प्रकान्तः पुनरेष शाम्बगदयोः पाणिग्रहश्चेद् भवेद्
दैत्योन्मूलनमूलभूतमितरत्कृत्यं किमात्यन्तिकम् ॥ २ ॥

तत्सम्प्रत्येव सञ्ज्ञापितोऽस्मि शुचिमुख्या यदिदमेव दक्षिणोद्यानमागता तरलिकेति तद्गत्वाऽवगच्छामि वृत्तानामद्यतनमन्तःपुरस्य । (इति परिक्रम्य उद्यानप्रवेशं नाटयित्वा) किमियमत्र तरलिकैव रसालमञ्जरीपल्लवानुच्चिनोति । (प्रविश्य । यथानिर्दिष्टा)

तरलिका—(पुरोऽवलोक्य) कधं एस भद्दो । (कथमेष भद्र ।)

भद्र—(उपसृत्य नीचैः) सखि तरलिके, कुतः क्रियाय मञ्जरीपल्लवाद्युच्चय ?

तरलिका—अज्ज वसन्दूसवो त्ति पिअसहीए मम्महाराहणोवअरणाइं उअहरीअन्ति । (अद्य वसन्तोत्सव इति प्रियसख्या मन्मथाराधनोपकरणानि उपह्रियन्ते ।)

भद्र —(विहस्य)

उपहरसि रसालमञ्जरीं किं
किमवचितैरथवा तव प्रवालैः ।

यदि गद तथा शाम्ब का यह प्रक्रान्त विवाह भी सम्पन्न हो जाता है, तो फिर राक्षसों के विनाश का मूलभूत कार्य ही क्या शेष रहेगा ॥ २ ॥

अभी अभी शुचिमुखी ने सूचना दी है कि तरलिका इसी दक्षिणोद्यान में आई हुई है, अतः जाकर पता लगाता हूँ कि अन्तःपुर का क्या समाचार है ? (चलकर उद्यानप्रवेश का अनुभव करता हुआ) क्यो, यही पर तरलिका आम की मञ्जरी तथा पत्ते चुन रही है । (प्रवेश करके पूर्वोक्त रूप मे)

तरलिका—(आगे की ओर देख कर) क्यों, यह भद्र हैं ?

भद्र—(समीप जाकर मन्द स्वर मे) सखि तरलिके, यह आम्रमञ्जरी तथा पल्लवों का चयन क्यो किया जा रहा है ?

तरलिका—आज वसन्तोत्सव है, प्रियसखी के लिये मन्मथाराधन के उपकरण जुटा रही हूँ ।

भद्र—(हँसकर) आम्रमञ्जरी क्यो ले जा रही हो, और प्रवालो के

भद्रः—(सानन्दम्) कथय कथय कथमेतत् ?

तरलिका—अज्ज कुमारेण परहुदिअं वाराविअ दुए विगदसम्बा अन्तेउरम्मि णेअव्वा । तहिं तण चन्द्रवदीए गदो गुणवदीए सम्बो संजोजइदव्वो । (अद्य कुमारेण परभृतिका द्वारीकृत्य द्वावपि गदशाम्बौ अन्तःपुर नेतव्यौ । तदा तत्र चन्द्रवत्या गदगुणवत्या साम्बः संयोजयितव्यः ।)

भद्रः—(सोपालम्भमिव स्मित्वा) सोऽयं भवतीनामारण्यगज-ग्रहन्यायः—

> एकः पुरः प्रयत्नात् परिचयमुपनीयते करी कुशलः ।
> करिणस्तेनारण्यादन्येपि निबध्य नीयन्ते ॥ ५ ॥

तरलिका—(नासिकायामङ्गुलिं न्यस्यन्ती) अम्महे विवरिदो एस पज्जणुओओ । (अहो, विपरीत एष पर्यनुयोगः ।)

भद्र—(विहस्य) उभयथापि जितमस्माभिः । तत्कथय कथमयं परिणतो दूतीकल्पः ।

तरलिका—आअक्खिअज्जेव केत्तिअपि कुमाराणं परहुदिआए । (आख्यातमेव कतिधा कुमाराणा परभृतिकया ।)

भद्र—(सानन्द) कहो कहो, क्या बात है ?

तरलिका—आज कुमार परभृतिका के द्वारा गद तथा शाम्ब दोनों कुमारों को अन्तःपुर में बुला लेंगे, फिर वहाँ पर चन्द्रवती के साथ गद को और गुणवती के साथ शाम्ब को संयुक्त करावेंगे ।

भद्र—(उलाहने के से स्वर मे) यह रहा आप लोगों का वन्य हाथियो को फँसाने का तरीका ।

पहले एक हाथी कोशिश कर के परिचित कर लिया जाता है, फिर उसी के द्वारा अन्य हाथियों को भी जंगल से लाकर बाध लिया जाता है ॥ ५ ॥

तरलिका—(नाक पर अंगुली रखती हुई)

अहा, यह तो उलटा ही प्रश्न है ।

भद्र—(हसकर) दोनों ही स्थिति मे जीत हमारी ही है, अच्छा, यह बताओ कि यह दूतीकल्प सिद्ध कैसे हुआ ?

तरलिका—परभृतिका ने तो कई बार कुमारो से कहा ही था ।

भद्र—हुं, आख्यातमेकदा गदशाम्बयोः समीपमुपेतया निभृतमेतया—

> विमलं युवयोः कुलं वयो वा
> विनयो वाऽथ पराक्रमक्रमो वा ।
> सुदृशोः श्रुतिमेत्य नित्यशो यद्-
> बडिशोत्क्षिप्तमिवाचरन्ति चेतः ॥ ६ ॥

तरलिका—किं एत्तिअ पहावदीए तहाविहविरहवेअणक्कमं अदिक्कमिअ वहन्ति भट्टिदारिआओ चन्दवदीगुणवदीओ । (किमेतत् प्रभावत्यास्तथाविधविरहवेदनाक्रममतिक्रम्य वहतो भर्तृदारिके चन्द्रवतीगुणवत्यौ ।)

भद्रः—ततस्ततः ।

तरलिका—अहं अज्ज पहादसमअम्मि सुहसऊणववदेसेण विरहोवआरे सुवहन्तीणं ताण समीवं गदा आसि तत्थ उण पढमोरजत्ता ज्जेव परहुदिआए वीसम्भणिब्भर आअक्खिदा । (अहमद्य प्रभातसमये सुखशकुनव्यपदेशेन विरहोपचारे सुवहन्तीनां तासां समीपं गताऽऽसम् तत्र पुनः प्रथमोपरक्तया एव परभृतिकया विस्रम्भनिर्भरमाख्याता ।)

भद्र—हाँ, एक बार परभृतिका ने गद तथा शाम्ब के समीप जा कर चुपके से कहा था कि :—

आप दोनों आदमियों के कुल, वय, विनय, तथा पराक्रम नित्य हमारी चन्द्रवती तथा गुणवती नामक सखियों के कानों में पहुँच कर उनके हृदयों को वंशी में फंसा कर खींच से रहे है ।। ६ ।।

तरलिका—क्या इतनी ही बात है ?

प्रभावती की विरहवेदना से भी बढ़ कर वेदना का अनुभव कर रही हैं राजकुमारी चन्द्रवती और गुणवती ।

भद्र—उसके बाद ?

तरलिका—आज प्रातःकाल में कुशलप्रश्न के निमित्त उनके समीप गई, वे विरहोपचार मे व्यस्त थीं, वहाँ जाने पर पहले से ही तैयार बैठी परभृतिका ने मुझसे कहा ।

भद्रः—(सकौतुकम्) किमाख्यातासि परभृतिकया ?

तरलिका—पिअसहि, पहावदीए पिअसहि त्ति अम्ह भट्टिदारिआणं बहिणिआ पिअसही वि तुमं तदो जइ तुम्हहिं वि अब्भन्तरं मम्महवेअणा निक्कमणिक्कमन्तजीविदाओ एदाओवि पहावदीसरिच्छं जीआविदुं पारिअन्ति ता दंसेध पक्खवादं करेध पसादं त्ति। (प्रियसखि, प्रभावत्या प्रियसखीति अस्माकं भर्तृदारिकयोर्भगिनिका प्रियसख्यपि त्वं ततो यदि त्वमपि अभ्यन्तरमन्मथवेदनातिक्रमनिष्क्रामज्जीवितयोरेतयोरपि प्रभावतीसदृशं जीवितुं पारयसि तत् दर्शय पक्षपातं कुरुष्व प्रसादमिति।)

भद्रः—ततस्ततः।

तरलिका—तदो मए जइ बहिआणं सिणेहेण पहावदी ज्जेव एवंकरेदि जदो ताए पुरा आराहिएण दुव्वासामहेसिणा पसण्णेण पसादीकदा सा कापि विज्जा जाए पच्चक्खीभोदि भअवं बम्हहो तेण उण जहेच्छित जणोपसादीकरीअदि त्ति भणिद। (ततो मया यदि भगिन्योः स्नेहेन प्रभावती एव एवं करोति यतस्तया पुराऽऽराधितेन दुर्वाससा महर्षिणा प्रसन्नेन प्रसादीकृता सा कापि विद्यायया प्रत्यक्षीभवति भगवान् ब्रह्मा, तेन पुनः यथेहितजनः प्रसादीक्रियत इति भणितम्।)

भद्र—(कौतुक से) परभृतिका ने तुमसे क्या कहा ?

तरलिका—(परभृतिका ने मुझसे कहा कि) प्रिय सखि, तुम प्रभावती की प्रिय सखी हो, इसीलिये राजकुमारी चन्द्रवती और गुणवती की भी बहन सखी हो, अत यदि तुम भी आन्तरिक कामवेदना से म्रियमाणदशा को प्राप्त इन दोनो के लिये प्रभावती की तरह ही जीवन का उपाय कर सको तो कृपा करो तथा अपना स्नेह दिखलाओ—

भद्र—इसके बाद ?

तरलिका—इसके बाद मैंने कहा कि बहनो के स्नेह से चाहे तो प्रभावती ही ऐसा कर सकती है, क्यो कि पूर्वकाल मे आराधना से प्रसन्न होकर महर्षि दुर्वासा ने उसे कुछ ऐसी सिद्धि दी है जिससे ब्रह्मा प्रत्यक्ष होते हैं, फिर वह अभिलषित पुरुष से भेंट कराने की कृपा करते हैं।

भद्र—ततस्तत ।

तरलिका—तदो अच्छरीअ विसट्ठुलुक्कठापरवसाहिं ताहिं णिभरावेसमत्थिआए मए तदो आअछिअ सुहप्रच्छणवअदेसेण ज्जेव पच्छण्ण सरीरेण कुमारपज्जुण्णेण समं भट्टिदारिआ तहिं ज्जेव णीदा। (तत आश्चर्यविसष्ठुलोत्कण्ठापरवशयोस्तयोर्निर्भरावेशमथितया मया तत आगत्य सुखशकुनव्यपदेशेन एव प्रच्छन्नशरीरेण कुमारप्रद्युम्नेन समं भर्तृदारिका तत्रैव नीता।)

भद्र—तत ।

तरलिका—तदो ताण सन्तावसन्तदाइ सरीरावत्थतराइ करुणगग्गदक्खर उआहरन्तीए मए परहुदिआए अग्गदो भट्टिदारिए पेक्ख पेक्ख एदाण बहिणिआण णिरन्तरविरहुव्वेअवेअणा विसूरन्तजीविद अप्पदीआर अवत्थन्तर दाणिम्पि कीस णिरणुक्कोसासि त्ति उआलहिअ भट्टिदारिआ महाप्पहावत्तेण पविठ्ठा विअ मग्गदा ताण मणोरहवल्लहा। (ततस्तयो सन्तापसन्ततानि शरीरावस्थान्तराणि करुणगद्गदाक्षरमुदाहरन्त्या मया परभृतिकाया अग्रतो भर्तृदारिके, पश्य पश्य एतयोर्भगिन्यो निरन्तरविरहोद्वेगवेदना क्लिश्यमानजीवितमप्रतीकारमवस्थान्तरम्, इदानी

भद्र—उसके बाद ?

तरलिका—इसके बाद आश्चर्य तथा उत्कण्ठा से पराधीन होकर कष्ट उठाने वाली राजकुमारियों की एकान्त व्यथा से पीडित हो कर मैं वहाँ से आई और कुशलप्रश्न के ही व्याज से प्रच्छन्न शरीर कुमार के साथ राजकुमारी प्रभावती को ही उन लोगों के पास ले गई।

भद्र—तब ?

तरलिका—इसके बाद उन लोगों के सन्तप्त शरीर की स्थिति के सम्बन्ध में करुणापूर्णगद्गद स्वर में परभृतिका के सामने ही मैंने राजकुमारी से निवदन किया कि देखिये अपनी बहनों को इस निरन्तर विरह वेदना से जीवन को क्लेशमय बनाने वाली अवस्था को। आप अब भी क्यों निर्दय बनी हुई हैं मैंने इस प्रकार से राजकुमारी को उलाहना दिया। राजकुमारी बहुत

मपि कथं निरनुक्रोशासि इति उपालभ्य भर्तृदारिकाया महाप्रभावत्वेन प्रविष्टा विव मार्गयत तयोर्मनोरथवल्लभौ ।)

भद्र—(सकौतुकम्) अथ किमाह प्रभावती ?

तरलिका—पुणो पुणो पात्थिआए अइ दुक्कर क्खु एद तहावि पराहीणम्हि सिणेहेण बहिणिआण त्ति मणिअताण अग्गदो ज्जेन उअअ ऊअप्फंसिअ चिर णिज्झाअन्तीए तिरक्करिणि परिच्चइअ पच्चक्खीभूदो सिरिपज्जुण्णो । (पुन प्रार्थितयाऽतिदुष्कर खल्वेतद्, तथापि पराधीनास्मि स्नेहेन भगिन्योरिति भणित्वा तयोरग्रत एव उदकमुपस्पृश्य चिर निध्यायन्त्या तिरस्करिणीं परित्यज्य प्रत्यक्षीभूतः श्रीप्रद्युम्न ।)

भद्र—अहो रमणीयता व्यापारस्य । ततस्तत ?

तरलिका—तदो झत्ति अच्छरीअभत्तिसम्भमपरवसाहिं ताहिं सम पहावदीए पुणो पुणो पणमिअ मग्गदा बहिणिआणं मनोरहवल्लहा । (ततो झटिति आश्चर्यभक्तिसम्भ्रमपरवशाभ्या ताभ्यां सम प्रभावत्या पुन पुन. प्रणम्य याचितो भगिन्योर्मनोरथवल्लभ ।)

भद्र—ततस्तत. ।

प्रभावशालिनी हैं, उनके प्रभाव से चन्द्रवती तथा गुणवती के प्रियतमो को आया ही समझो ।

भद्र—(कौतुक से) तब प्रभावती ने क्या कहा ?

तरलिका—बार बार प्रार्थना करने पर प्रभावती ने कहा कि यह कार्य कठिन है फिर भी मैं बहनो के प्रेम से पराधीन हूँ। ऐसा कहकर प्रभावती ने उनके सामने ही आचमन करके देर तक ध्यान किया, इसके अनन्तर ही प्रद्युम्न तिरस्करिणी का त्याग कर के प्रत्यक्ष हो गये ।

भद्र—अहा, क्या रमणीय व्यापार है । तब ?

तरलिका—इसके बाद बहनो के साथ ही प्रभावती ने आश्चर्य, भक्ति तथा सम्भ्रम के वशीभूत हो कर प्रद्युम्न को बार बार प्रणाम किया तथा उन से बहनों के प्रियतमों की मागनी की ।

भद्र—इसके बाद ?

तरलिका—तदो इस विहसिअ सुप्पसण्णो पज्जुण्णो (तत ईषद् विहस्य सुप्रसन्नः प्रद्युम्नः)

ध्यायन्त्योरेतयोः प्राप्तौ पती द्वारवतीपुरात् ।
गदसाम्बाविदं धीरौ चिरौत्सुक्यं हरिष्यतः ॥ ७ ॥
(ध्यायन्त्योरेतयोः प्राप्तौ पतीद्वारवतीपुरात् ।
गदसाम्बाविदं धीरौ चिरौत्सुक्यं हरिष्यतः ॥ ७ ॥)

एत्तिअं भणिअ अन्तरहिदो तं अज्ज सम्पज्जिस्सदि । (एतद्भणित्वाऽन्तर्हितस्तमद्य सम्पत्स्यते ।)

भद्रः—कुतः पुनरेतयोस्तिरोभावः ।

तरलिका—सिरिपज्जुण्णेण तिरस्करिणि उअदिसिए एदे वि अन्तेउरेम्मि विहरन्ता गोआविदव्वा । (श्रीप्रद्युम्नेन तिरस्करिणीमुपदिश्य एतावपि अन्तःपुरे विहरन्तौ गोपायितव्यौ ।)

भद्रः—(सानन्दम्) किमधिकम्, अलङ्कृतमेव यदुकुलं भवत्या भर्तृदारिकाभिः ।

तरलिका—महाभाअ, अम्हाणम्पि भट्टिदारिआणं सुप्पसण्णाइं पुण्णाइं । (महाभाग, अस्माकमपि भर्तृदारिकयोः सुप्रसन्नानि पुण्यानि ।)

तरलिका—इसके बाद थोड़ा मुस्कुरा कर प्रसन्नभाव से प्रद्युम्न ने कहा कि—

इन लोगों के प्रियतम ध्यान करते ही द्वारका से यहाँ पहुँच गये हैं, धीर गद तथा शाम्ब इनकी चिरकालिक उत्कण्ठा को दूर करेंगे ॥ ७ ॥

इतना कह कर प्रद्युम्न अन्तर्हित हो गये, वह बात आज होगी ।

भद्र—फिर वे लोग छिपे कैसे रहेंगे ?

तरलिका—श्रीप्रद्युम्न तिरस्करिणी का उपदेश देकर उन्हें भी अन्तःपुर में विहार करते हुए गुप्त रखेंगे ।

भद्र—और क्या ? तुम्हारी राजकुमारियों ने यदुकुल को अलङ्कृत कर ही लिया ।

तरलिका—महाभाग, हमारी राजकुमारियों के पुण्यों ने भी प्रसन्नता दिखलाई है ।

भद्र —तदहमपि ताभ्याम्—

सुरभिसमयमाद्यन्मन्मथोन्माथमूर्च्छद्
विरहदहनदाहोद्रेकदुःस्थामवस्थाम् ।
अनवधिमनुभूयोन्मादमुग्धीभवद्भ्या
यदुकुलतिलकाभ्यामेतदावेदयामि ॥ ८ ॥

त्वयापि तरलिके राजमन्दिरपश्चाद्देशोपासन्नपरिसरे परभृतिका प्रेषणीया । तत्रैव च गत्वा गदशाम्बौ स्थास्यतः ।

(इति निष्क्रान्तौ)

[विष्कम्भकः]

(ततः प्रविशतः उपवनगतौ गदशाम्बौ)

गद —(सखेदम्) वत्स शाम्ब, सर्वतो दुरवलोकरमणीया वसन्तलक्ष्मी ।

शाम्ब —(निःश्वस्य सलज्जम) एवमेतत् ।

गद —पश्य—

इतः पीतः स्फीतः स्फुरति बकुलः केसरभरै

भद्र—तो अब मैं भी गद तथा शाम्ब से—जो—वसन्त समय के मदमत्त काम की व्यथा से पूर्ण विरहवेदना की अधिकता से अनवधिदुरवस्था का अनुभव कर के मूढ़ हो रहे हैं इस बात की खबर कर दूं ॥ ८ ॥

तरलिके, तुम भी राजमन्दिर के पश्चाद् भाग में परभृतिका को भेज दो, वहीं जाकर गद तथा शाम्ब खड़े रहेंगे । (गता है)

(विष्कम्भक समाप्त)

(उद्यानगत गद तथा शाम्ब का प्रवेश)

गद—(सखेद) वत्स शाम्ब, चारो ओर कष्ट से देखने योग्य फिर भी रमणीय वसन्तलक्ष्मी व्याप्त है ।

शाम्ब—(निःश्वास लेकर, लज्जापूर्वक) यही बात है ।

गद —देखो—

इधर केसर से पीला भवकुल खिल रहा है, इधर कोयल की कूक कान

रितः सुने कर्णज्वरमभिनव. कोकिलरवः ।
इतोऽपि श्रीखण्डोपवनपवनान्दोलितलता-
कृताश्लेषाः केषां मनसि निविशन्ते न तरवः ॥ ९ ॥

अपि च—

नवामोदोद्गारा मुकुलमुखमुद्राविघटने
विसर्पन्ति श्वासायितरुचिरपाटीरपवनाः ।
इमा॰ श्यामायन्ते मधुकरचितानैर्वनलता
हतालोकं चक्षु क्षणमपि किमालोकयतु न॰ ॥ १० ॥

अन्यतोऽवलोक्य—

प्रकम्पयद्भि पवनैर्वनालीं मधुव्रतानां क्षणविद्रुतानाम् ।
रसालशाखाशिखरेषु दूरादितोऽपि झाँकारघनोऽन्धकारः ॥११॥

अपि च—

प्रसूनपटलारुणोन्नतपलाशजालच्छला-
न्मनांसि मदनो बलाद् विरहिणां दहत्येकतः ।

को व्यथा दे रही है। श्रीखण्ड के उपवन में वायुकृत आन्दोलित लताओं से आलिङ्गित तरुगण किसके हृदय को नहीं आकृष्ट कर रहे हैं ॥ ९ ॥

और—यह मुकुलो के विकसित होने पर नवसुगन्ध को प्रसारित करने वाले नि श्वास की तुलना करने मे दक्ष चन्दनवन के पवन हैं, इधर भ्रमरों के सञ्चार से वन की लतायें श्याम वर्ण हो रही हैं। हमारी आखों के तो तेज ही समाप्त हैं वे भला क्या देख पायेंगी ? ॥ १० ॥

दूसरी ओर देख कर—

वायु वग से वनावली को कम्पित करते हुए चलित भ्रमरों का सघन्ड अन्धकार आम्रवृक्ष के शिखरो पर सुदूर इस स्थान से भी दृश्य हो रहा है ॥ ११ ॥

और—पुष्प समुदाय से रक्तवर्ण पलाश वृक्ष के व्याज से कामदेव बल॰ पूर्वक वियोगियो के चित्तो को जला रहा है, फिर जो यह भृङ्गरूप धूमावली

न चित्रमियमुद्गता यदिह भृङ्गधूमावली
विलोचनयुगाञ्जलीर्नयति खेदमस्राम्बुभिः ॥ १२ ॥

शाम्ब.—इदमपरतोऽवलोकयत्वार्य. ।

परोन्मीलन्मल्लीमुकुलकुहराभ्यन्तरगतं
दुरास्वाद्यं सद्योदलमविकलीकृत्य सकलम् ।
समीपे संविश्य क्षणमथ परिक्रम्य परितः
न पातुं वा हातुं प्रभवति मरन्दं मधुकरः ॥ १३ ॥

अपि च—

चरणभरविभङ्गराभिराभिर्विहरति बालरसालमञ्जरीभिः ।
इह मधुरमरन्दबिन्दुपानप्रणयपरः प्रतिशाखमेष भृङ्गः ॥ १४ ॥

किञ्च—

उल्लसदभिनवपल्लवतरुणारुणकिरणशोणशिखरेषु ।
चित्रन्तरुषु निरन्तरमधुकरनिकरान्धकारसञ्चारः ॥ १५ ॥

(अन्यतोऽवलोक्य)

परितः सरोरुहवनान्तरतः पवनान् परागपटलं हरतः ।

उठ रही है इसमे क्या आश्चर्य है, और उससे आँखों मे जो खेद के आसू आ जाते हैं उसीमे क्या आश्चर्य की बात है ॥ १२ ॥

शाम्ब—आप इधर दूसरी ओर देखें—

अल्पविकसित मल्लीपुष्प के अभ्यन्तर मे स्थित कष्ट से आस्वादनीय दल को खण्डित करके, थोडी देर तक उसके समीप सोकर, फिर चारो ओर घूम कर यह भ्रमर न तो उसके रस को पी रहा है और न छोडकर जा ही रहा है ॥ १३ ॥

मधुरमरन्द के पान का अभिलाषी यह भृङ्ग चरणनिपात से टूट पडने वाली इन बालरसालमञ्जरियो के साथ हरडाली पर विहार कर रहा है ॥१४॥

विकसित होनेवाले नवपल्लवों की किरणों से रञ्जित तरुशिखरों पर भी भ्रमररूप अन्धकार का सञ्चार दीख रहा है, यह आश्चर्य की बात है ॥ १५ ॥

कमलवन के बीच से परागपटल को उडाकर ले आने वाले पवनों

कतिधाऽनुधावति न बद्धरुषं परुषं वदन्निव रवैर्भ्रमरः ॥ १६ ॥

अपि च—

स्तबकस्तनभारभङ्गुराभि
लतिकाभि प्रतिकाननं वलन्तः ।
सरसीजलशीकरावदाताः
सुखमेते समयं नयन्ति वाताः ॥ १७ ॥

गदः—एवमेतत्—

अस्तव्यस्तीकृतकिसलयप्रान्तचेलाञ्चलान्तः
क्लृप्तामृष्टाकुलतरवलत्कोरकोरस्तलाभिः ।
वारं वारक्वणितमधुपश्रेणिकाञ्चीभिराभिः
स्वैरं स्वैरं विहरति मरुन्मालतीमञ्जरीभिः ॥ १८ ॥

अपि च—

उन्माद्यद्विन्ध्यगन्धद्विपकरटगलद्दानमैरेयपान-
क्षीवक्षीवा इवामी प्रतिशिखरिसरिन्निर्झरान्तःस्खलन्तः ।
वाता वातापिघातव्यसनिमुनिवनप्रान्तसंशान्तखेदा·
गोदावर्यम्बुनिर्यत्तुहिनितकलिका भारवाहा वहन्ति ॥ १९ ॥

का—क्रोध से परुष-भाषण करते हुए भ्रमरगण पीछा कर रहे हैं ॥ १६ ॥

और—पुष्पगुच्छरूप स्तन के भार से अवनम्र लताओ के साथ कानन मे क्रीडा करने वाले एव सरोवर के जल मे स्नान से शीतल यह पवन सानन्द समय यापन कर रहे हैं ॥ १७ ॥

गद—किसलयरूप वस्त्राञ्चल को अस्तव्यस्त करके आकुल कोरकरूप स्तनो को मर्दित करता हुआ, यह पवन सशब्द भ्रमररूप काञ्चीकलापधारिणी इन मालती मञ्जरियो के साथ क्रीडा कर रहा है ॥ १८ ॥

विन्ध्यवासी गन्धगज के दानरूप मद्य के पान से मत्त पर्वत निर्झरो में लुढ़कने वाले यह पवन अगस्त्यमुनि के वनप्रान्त में अपनी थकावट मिटाकर गोदावरी जल कण को लेकर धीरे-धीरे बह रहे हैं ॥ १९ ॥

शाम्बः—(सखेदम्) आर्य, विशेषतोऽद्य विप्रतीकारो विप्रयोगज्वरः ।

गदः—एवमेतत्—

शेषे विशेषेण वियोगवह्निर्दीप्तो दहत्यन्तरमाविरस्ति ।
प्रातः प्रदीपस्य दशावशेषा शिखेव निर्वाणमनुप्रयान्ती ॥ २० ॥

शाम्बः—आर्य, अपि नामेदं तथ्यमाह तरलिका ?

गदः—वत्स, प्रभावत्याः प्रियसखी खल्वियमस्मासु किमन्यथा व्याहरति । (पुरोऽवलोक्य सानन्दम्) किमपरम्, परागतैवेयं परभृतिका ।

(प्रविश्य)

परभृतिका—(विलोक्य) कध एदे दुवे वि कुमारा अम्हाणं ज्जेव मग्गं पलोअन्तो अग्गदो ज्जेव चिट्ठन्ति । ता उपसप्पामि (इत्युपसर्पति) (कथमेतौ द्वावपि कुमारौ अस्माकमेव मार्गं प्रलोकमानावग्रत एव तिष्ठतः । तदुपसर्पामि ।)

शाम्ब—(सखेद) खासकर के आज का वियोगसन्ताप अप्रतीकार हो रहा है ।

गद—यही बात है ।

अन्त में आकर वियोग की आग विशेषरूप से दीप्त होकर अभ्यन्तर को जलाने लगती है, जैसे प्रातःकालिक प्रदीप को बुझती हुई—बत्तीभर शेष रहने पर—शिखा अधिक प्रकाशित हो उठती है ॥ २० ॥

शाम्ब—आर्य, क्या तरलिका का यह कथन सत्य है ?

गद—वत्स, प्रभावती की प्रियसखी तरलिका क्या हम लोगों से मिथ्या कह सकती है ? (आगे की ओर देखकर—सानन्द) और क्या, यही तो परभृतिका आ रही है ।

(प्रवेश करके)

परभृतिका—(देखकर) क्यों दोनों कुमार हमारी ही राह देखते हुए आगे में हो वर्तमान हैं, अच्छा समीप जाती हूँ ।

गदशाम्बौ—(साकूतस्मितम्) सखि परभृतिके, इत इतः।

परभृतिका—(पुर. स्थित्वा प्रणमति)

उभौ—कच्चिदपचीयते प्रियसख्योस्ते शरीरपरिभवः।

परभृतिका—महाभाआ (महाभागौ)

जावण कमलवणीणां दिणअरकिरणेहिं किरइ फंसो।
चन्दा दर परिहवआ ताव ण ताणं समप्पन्ति ॥ २१ ॥
(यावन्न कमलवनीना दिनकरकिरणै क्रियते स्पर्श ।
चन्द्रकरपरिभवास्तावन्न ताभ्य समाप्नुवन्ति ॥ २१ ॥)

अहवा (अथवा)—

अज्ज वि करथ परिहरा मोह गमइ ण मणिगलदाणं।
परिमलहरिअन्तरआ जइ उअसप्पन्ति अन्तिकं भमरा ॥ २२ ॥
(अद्यापि कथ परिहृतमोहं गमयति न मणिगलत्वम् ।
परिमलहृतान्तरा यदुपसर्पन्ति अन्तिक भ्रमराः ॥ २२ ॥)

शाम्ब.—(सपरितोषम्) किमधिकम्, मधुरतरव्याहारपारङ्गमैव परभृतिका भवति।

गद शाम्ब—(साभिप्राय, मुस्कुराकर) सखि, परभृतिके इधर आओ, इधर।

परभृतिका—(आगे मे खड़ी होकर प्रणाम करती है)

दोनों—क्या तुम्हारी सखियो का शरीरसन्ताप कुछ कम हो रहा है?

परभृतिका—महाभाग,

जब तक कमलवनी को सूर्यकर का स्पर्श न प्राप्त हो जाता है, तब तक चन्द्रकरकृत उनके कष्ट समाप्त नहीं होते हैं ॥ २१ ॥

अथवा—

अभी भी मोह छोड़कर मणि को गले मे क्यो नहीं धारण करती है, जब कि सुगन्ध पर आकृष्ट भ्रमर स्वयं समीप में आ गये हैं ॥ २२ ॥

शाम्ब—(प्रसन्नता से) और क्या, परभृतिका (कोयल) तो मधुर-भाषण करने की कला में पण्डिता ही सुनी जाती है।

गद —(सोत्कण्ठम्) सखि परभृतिके, अन्तिकमुपसर्पन्तीति व्याहरन्ती व्यामोहयसि नौ हृदयम्, यदेतानि परपुरुषप्रवेशानवकाशविधुराण्यन्तःपुराणि।

परभृतिका—सन्दिट्ठ क्खु एद महाभाआण कुमारपज्जुण्णेण ज अज्ज मअणमहूसवुम्भाअवहलवावारपरिस्समोवत्तुभईमामत्तणपराहीणपरिअणे पओसतिमिरम्मि लदाहरपच्छण्णपच्छादुआरिआए राअघर पविसिअ णिअणोपवणमग्गेण कन्नअन्तउरे पविसिदव्वत्ति। (सन्दिष्ट खलवेत-महाभागयो कुमारप्रद्युम्नेन यदद्य मदनमहोत्सवोन्मादबहलव्यापारपरिश्रमोपवत्तनपराधीनपरिजन प्रदोषतिमिरे लतागृहप्रच्छन्नपश्चाद्द्वारेण राजगृह प्रविश्य विजनोपवनमार्गेण कन्यान्तःपुरे प्रवेष्टव्यमिति।)

गद —(सोच्छ्वासम्) प्रदर्शयतु प्रदेशमेन भवती।

परभृतिका—(अङ्गुल्या निदिशन्ती) महाभाआ, इदो उज्जाण उत्तरेण दरतलतरङ्ग सङ्गमुम्मिसिद सदवत्त ससत्त सीअल समीर हीरन्ताल मिल परिमल पराहीनन्तर-णिस्सरन्त-महुअर सहस्स झंकारसकातल तरुच्चल वजल-जन्तु विम्हरोह परिक्खुहिअ जम्बाल-सम्बलिद सलिल मुणालङ्कुर प्पहुद किसलअकवलणुस्कण्ठा विसट्ठुलणिमज्जन्त चपलचञ्चूपुडाणुप्प

गद—(उत्कण्ठा स) सखि, परभृतिके, समीप में आ गये हैं ऐसा कहती हुई तुम हमारे हृदयों को मोह में डाल रही हो, क्योंकि यह अन्तःपुर तो परपुरुष प्रवेश के लिये अयोग्य है।

परभृतिका—आप दोनों आदमी को कुमार न सन्देश कहा है कि आज मदनमहोत्सव के परिश्रम से जब परिजन पराधीन हो जायेंगे, तब सन्ध्यासमय में अन्धकार में लतागृह के प्रच्छन्न द्वार से राजभवन में प्रवेश करके आप दोनों व्यक्ति एकान्त उपवन मार्ग से कन्यान्तःपुर में प्रवेश करें।

गद—(उच्छ्वसित होकर) आप मुझे वह प्रदेश दिखा दें।

परभृतिका—(इशारे से दिखलाती हुइ) महाभाग, इधर उद्यान को

उत्तपण उम्मत्तपिअतमावअण संञ्यउण सम्मदुम्माअवइल कलहंसकेली-कल अलाणुअरण-विरुअन्त-कुरअ सारस वहङ्गमणहराङ्गण-परिसराएसर-स्सइ-सरसीए समासण्णादो वासन्तिआमण्डवादो सुइदसणो ज्जेव सो लदाहरो मए उण इदो गदुआ महाभाआण आगमणं जाव दुआरिगआए ज्जेव ठातव्व पच्छ उण सिमिर-पच्छण्ण तुम्हाण अन्तेउर-मग्गोवदेसिआ हुविस्स। (महाभाग, इत उद्यानादुत्तरेण दरतरलतरङ्ग-सङ्गमोन्मिषितसदावर्त्त-ससक्तशीतलसमीर ह्रियमाणाविलपरिमलपराधीनान्तरनिस्सर-मधुकर सहस्रझङ्कारसङ्क न्ततरुनल जलजन्तुविक्षोभपरिक्षुभितजम्बालसवलितसलिलमृणालाङ्कुरप्ररूढकिसलयकवलनोत्कण्ठा विसञ्चुननिमज्जच्चक्रवाकचञ्चूपुटानुप्रवृत्तप्रणयोन्मत्त प्रियतमावचनश्रवणसमदोन्मादबहुलकलहंसकेलीकलकलानुकरण विरुवत्कुरङ्गसारसविहङ्गमनोहराङ्गणपरिसराया सरस्वतीसरस्याः समासन्नात् वासन्तिकामण्डपात् सुलदर्शनम् एव तत् लतागृहम् मया पुनरितो गत्वा महाभागयोरागमन यावत् द्वारगतयैव स्थातव्य, पश्चात्पुनस्तिमिरप्रच्छन्नयोर्युवयोरन्त पुरमार्गोपदेशिका भविष्यामि ।)

गदः—एवमस्तु ।

(परभृतिका निष्क्रामति)

उत्तर दिशा में तरल तरङ्ग के सम्पर्क से शीतल समीर द्वारा जिसकी सुगन्ध फैलाई जाती है, और जिनके ऊपर हजारो की संख्या से भ्रमर शब्द किया करते हैं ऐसे वृक्षो से युक्त जलजन्तु द्वारा सञ्चालित शैवाल सहित जल मे उत्पन्न मृणाल के पल्लव को खान के लिये चपल चञ्चुपुट, प्रियतमा के वचन को सुनकर प्रणयोन्मत्त हंसकुल के कलकल शब्द से अनुकूजनप्रवृत्त सारसगण से रमणीय, अङ्गणसरसी के चारो ओर वर्तमान वासन्तिकामण्डप के समीप ही लतागृह है। मैं यहां से जाकर आप दोनो के आने तक द्वार पर ही रहूँगी, फिर पीछे आप जब अन्धकार मे छिप जायेंगे, तो मैं आप लोगों को मार्ग बताऊगी ।

गद—ठीक है ।

(परभृतिका जाती है)

शाम्ब—आर्य, तदलं विलम्बेन। (इति परिक्रामतः)

गद—(सोच्छ्वासगर्वम्)

अपसरतु सुरेन्द्रद्रोहिदर्पोऽधुनैष-
प्रियविरहविपाकैः साकमस्माकमद्य।
प्रसरतु पुरुहूतप्रार्थितार्थेन सार्द्धं
सुरतसमरपारप्रापणं यौवनस्य ॥ २३ ॥

शाम्ब—एवमेतत्। इदानीन्तु—

एकत्र रम्यरमणीरमणानुरक्तं
देवद्विषामपरतो दलनोद्यतन्तः।
चेतः प्रयातुमिह वज्रपुरानुरोधं
शृङ्गारवीरशबलत्वमलङ्करोति ॥ २४ ॥

(इति पुनः परिक्रम्य, प्रतीचीं दिशमवलोक्य)

कथं प्रत्यासन्न एव पश्चिमसन्ध्यासमयः। तथाहि—

शाम्ब—आर्य, तब तो अब विलम्ब करना व्यर्थ है।

(दोनों जाते हैं)

गद—(उच्छ्वास तथा गर्व के साथ)

आज हमारे विरहकष्टों के साथ-साथ इन्द्र के शत्रु दैत्यों का घमण्ड दूर हो, इन्द्र का अभिलषित तथा हमारे यौवन के रतयुद्ध की पारप्राप्ति सिद्ध हो ॥ २३ ॥

शाम्ब—यही बात है, इस समय तो—

वज्रपुर में प्रवेश करते समय हमारा हृदय वीररस और शृङ्गाररस से एक ही साथ भरा हुआ है क्योंकि एक ओर हमारे हृदय में सुन्दरी ललना का अनुराग है और दूसरी ओर दानवों के दलन का अध्यवसाय विद्यमान है ।२४।

(फिर चलकर पश्चिम दिशा की ओर देखकर)

क्या सन्ध्या समय आसन्न है, क्योंकि—

रविरयमभूरप्रागारूढो नभः शिखरं शनै
झटिति पतति प्रत्यक्सिन्धौ परिस्खलितस्ततः ।
कथमपि चिरायासादासाद्यते पदमुच्चकै-
र्विधिरयमधःकर्तुं कश्चित्पलं न विलम्बते ॥ २५ ॥

(पुरोऽवलोक्य) कथमिय सरसी । तदस्यास्तीरे वासन्तिकामण्डप-मन्वेषयाव ।

(इति तथा कुरुत:)

गद —(विलोक्य, सखेदमिव) । अहह !!

विधिना विनिपातनाय नीतो
रविरस्ताचलमम्बुधावगाधे ।
मुखमुद्रणमम्बुजैरुपत्तं
प्रणयं के विपदि प्रमाणयन्ति ॥ २६ ॥

शाम्ब —अहं पुनरेवमवलोकयामि—

वदनमुद्रणमस्तमये रवे-
रुचितमाचरितं सरसीरुहैः ।

यह सूर्य पहले धीरे धीरे आकाशशिखर पर आरूढ हो गये थे, वही अब वहाँ से गिर कर पश्चिम सागर में उतर रहे हैं। किसी तरह यदि चिर-परिश्रम से ऊचा पद प्राप्त भी हो जाय तो भाग्य नीचे गिराने मे कितनी देर करता है ? ॥ २५ ॥

(आगे की ओर देखकर) क्यों, यह सरसी है, अच्छा तो इसके तट पर वासन्तिकामण्डप का अन्वेषण करें ।

(वैसा करते हैं)

गद—(देखकर खिन्नभाव से) अहह !!

भाग्य न अगाध समुद्र मे डुबाने के लिये सूर्य को अस्ताचल पर लाकर उपस्थित कर दिया है, इस स्थिति मे कमलो ने मुखमुद्रण कर लिया है, आपत्ति मे प्रेम को कितने लोग प्रमाणित करते हैं ? ॥ २६ ॥

शाम्ब—मुझको तो ऐसा लगता है—

सूर्य के अस्त होने पर कमलो ने मुखमुद्रण कर लिया सो ठीक किया,

किमिव धैर्यनियन्त्रणमन्तरा
सुमनसामवसादन मा पदः ॥ २७ ॥

(निरूप्य) अहो वैपरीत्यं सरोऽवस्थायाः, तथाहि—

शोभामम्भो मधु मधुलिहः सौरभं गन्धवाहा
यस्मात्प्रातःप्रभृति विततास्भोजहस्तादवापुः ।
अस्तं याते सवितरि सरोजातमेतादृगेतत्
सम्पन्मूले श्रयति विपदं को न संकोचमेति ॥ २८ ॥

(वियदवलोक्य)

त्विषां पत्युस्तत्तत्तुरगरथसञ्चारवसुधा
सुधाधाम्नस्ताराप्रणयपरिचाराजिरमहम् ।
किमाक्रान्तं धिङ्मामिदमुपसरत्यन्धतमसं
प्रकोपोऽयं प्रायोऽरुणितमकरोदम्बरतलम् ॥ २९ ॥

उभौ—(परिक्रम्यावलोक्य च)

धैर्यपूर्वक आत्मनियन्त्रण के अतिरिक्त सज्जनों के लिये आपत्ति से उबरने का क्या उपाय है ॥ २७ ॥

(देखकर) अहा, सरोवर की कैसी विपरीत अवस्था हो रही है ?

जिस सरोवर ने कमलरूप हाथ से मुक्तभाव स प्रातःकाल से ही जल को शोभा, भ्रमरों को पुष्परस, वायु को सुगन्ध प्रदान किया, वही सरोवर सूर्य के अस्त हो जाने पर इस दशा को प्राप्त हो गया है, ठीक ही है—सम्पत्ति क मूल के विपन्न होने पर किसे नहीं सङ्कुचित हो जाना पड़ता है । २८ ॥

(आकाश की ओर देखकर)

मैं सूर्य के घोड़ों तथा रथ के सञ्चार की भूमि हूँ, चन्द्रमा ने मुझ पर ही तारों के साथ अपनी प्रणयलीला प्रस्तुत की है, फिर भी यह अन्धकार मुझ पर आक्रमण करता आरहा है, धिक्कार है मुझे, इसी क्रोध से आकाश लाल होता जारहा है ॥ २९ ॥

दोनों—(चलकर तथा आगे देखकर)

कथमयमेव वासन्तिकामण्डपः । अयञ्चाग्रतएव लतागृहप्रच्छन्न पश्चाद्द्वारदेश । तदस्मिन् मनागन्तर घनतरे तमसि प्रवेश्याव । तद्यावदेकान्ते तिष्ठाव' ।

(इति तथा कुरुतः)

शाम्बः—(परितोऽवलोक्य)

चरमाचलव्यवहितस्य रवेः
किरणावशेषमवरोद्धुमिव ।
कथमेकदैव सहसा परित-
स्तमसा समावृतिरे हरितः ॥ ३० ॥

सनिर्वेदञ्च—

अधिगगनमनेकास्तारका राज्यभाजः
प्रतिगृहमिह दीपा दर्शयन्ति प्रभुत्वम् ।
दिशि दिशि विलसन्तः सन्ति खद्योतपोताः
सवितरि परिभूते किन्न लोकैर्व्यलोकि ॥ ३१ ॥

यही तो है वासन्तिकामण्डप । यही है लतागृह से प्रच्छन्न पीछे का दरवाजा । थोड़ी देर के बाद यहीं पर गाढ अन्धकार में प्रवेश करेंगे । तब तक एकान्त में छिप रहते हैं ॥

(वैसा ही करते हैं)

शाम्ब—(चारो ओर देखकर) पश्चिमाचल में छिपे हुए सूर्य को बची-खुची किरणों को घेरकर रखने के लिये एकाएक चारो ओर से अन्धकार ने दिशायें घेर लीं ॥ ३० ॥

विरक्तभाव से—

तारों ने आकाश में अपना राज्य कायम कर लिया है, घर घर में दीपक-गण अपना प्रभुत्व स्थापित कर रहे हैं, ये खद्योत के बच्चे दिशाओं में चमकते फिर रहे हैं, सूर्य के पराभूत हो जाने से लोगों को क्या नहीं देखने को मिला ? ॥ ३१ ॥

गदः—(निर्वर्ण्य) एवमेतत् ।

सम्प्राप्तः प्रतिमन्दिरं पुरवधूविन्यस्तदीपाङ्कुर-
ज्योतिर्जित्वरतामिवेक्षितुमितो निर्यातसूर्यातपः ।
कालः कोपि कलावतीजनमनःसंक्रान्तकामोच्छल-
द्व्यामोहाम्बुधिनीलिमाम्बुनिवहे निर्मग्नदिङ्मण्डलः ॥३२॥

अहो महोत्साहशक्तिसम्पन्नता तमसः, तथाहि—

दत्तोष्णांशुकरावकाशममितोऽप्याकाशमाशु ग्रसन्-
नन्वेतन्महसामुपाहृतरसां क्ष्मामन्धकूपे क्षिपन् ।
मत्वैतान्यपि तैजसानि सहसा चक्षूंषि मुष्णन्महो-
द्रोहोन्मादमयस्तमिस्रनिचयस्त्रैलोक्यमाक्रामति ॥ ३३ ॥

सोत्प्रेक्षञ्च—

वियद्वन्याकाष्ठाचितरविकराग्नावुडुशतं
भृतं तैजसतोयैः कलशकुलमावर्जयति कः ।

गद—(देखकर) यही बात है ।

सूर्य के तेज को ससार से खदेड कर, पुरवधुओं द्वारा प्रज्वालित दीप की रोशनी पर अपनी विजय को देखने के लिये यह (अन्धकारमय) समय उपस्थित हुआ है, इस समय युवतियों के हृदयों में वर्धमान कामकृत व्यामोहसागर की नीलजल राशि मे समस्त दिशायें मग्न सी दीख पड रही हैं ॥ ३२ ॥

अहा, अन्धकार कितना उत्साहसम्पन्न है, क्योंकि—सूर्य की किरणों को अपने यहाँ स्थान देने मे समर्थ आकाश को भी इसने ग्रस्त कर लिया है, तेज के सारतत्त्व को अपने भीतर समाविष्ट करने वाली सारी पृथ्वी को इसने अन्धकूप मे डाल दिया है । इन नयनों को भी तैजस समझ कर इसने क्षीणशक्ति कर दिया है ऐसा प्रतीत होता है कि इस अन्धकार ने द्रोह तथा उन्माद से परवश होकर त्रैलोक्य पर आक्रमण कर दिया हो ॥ ३३ ॥

उत्प्रेक्षा सा करता हुआ—

आकाशरूप वन की दिशारूप (काष्ठ) मे प्रज्वलित रविकिरणस्वरूप वह्नि में तैजस पदार्थ से परिपूर्ण घट सदृश इन तारों को कौन डालता आरहा

जगत्सर्वं निर्वापणसमयसंभारसुलभै-
स्तमस्तोमैर्धूमैरिव निखिलमन्धीयति यतः ॥ ३४ ॥

अपि च—

यान्यासन् वासरश्रीविरचितमिहिरोदारदीपोपरिष्टात्
संवृत्ताऽवाक्पालायितविततवियन्नीलता कज्जलानि ।
भूमीभाण्डे हरिदुभिर्युवतिभिरमितः पात्यमानानि मन्ये
तान्येता-येव सम्प्रत्यविरलतिमिरस्तोमभावं भजन्ति ॥ ३५ ॥

शाम्ब —आर्य, तदयमेव प्रवेशावसरः। (इत्युभौ पश्चाद् द्वारप्रवेशं नाटयत)

(प्रविश्य परभृतिका शनैः सञ्ज्ञां ददाति)

उभौ—(निभृतं परिक्रम्य शनैः परभृतिकायाः समीपमुपसर्पतः)

परभृतिका—इदो इदो महाभाआ। (इतइतो महाभागौ।) (इति सर्वे परिक्रामन्ति)

गद —(पुरोऽवलोक्य सातङ्कम्)

है। आग के बुझने के समय पैदा होने वाले धूमसमूह की तरह लगने वाले इन अन्धकारों से समस्त विश्व व्याप्त हो रहा है ॥ ३४ ॥

और—

वासर श्रीस्वरूप रमणी ने सूर्यरूप दीपक पर उलट कर रखे गये कपाल के सदृश प्रतीत होने वाले फैले हुए आकाशरूप पात्र में श्यामतारूप कज्जल इकठ्ठा कर रखा था, उन्हें इस समय दिशारूप युवतियाँ पृथ्वीरूप पात्र पर गिरा रही हैं, वही गाढ़ अन्धकार का रूप धारण कर रहा है ॥ ३५ ॥

शाम्ब—आर्य, यही प्रवेश करने का मौका है। (दोनों पीछे के द्वार से प्रवेश करते हैं)

(प्रवेश कर के परभृतिका धीरे से इशारा करती है)

दोनों—(धीरे धीरे चलकर परभृतिका के समीप जाते हैं)

परभृतिका—इधर चलें महाभाग। (सभी जाते हैं)

गद—(आगे देखकर सभय)—

दुर्लक्ष्यासु हरित्सु हन्त भवति प्राची विचेयाकृतिः

(क्षणं निरूप्य)

काञ्चित् प्राञ्चितमांसि नीलनिबिलीं मुञ्चन्ति किञ्चित्तियम् ।

(सत्रासच) किं बहुना—

नेदीयानुदयाय शीतकिरणस्तत्किङ्करा यत्कराः

सद्यः स्फीतरुच. सुधारसमुचः प्राचीं परिष्कुर्वते ॥ ३६ ॥

शाम्ब'—(निरूप्य सभयम्) कः प्रकारः ? पश्य—

उद्धूयमानेन्दुकरैरुन्मज्जत्यन्धकारवारिनिधेः ।

क्वापि क्वापि विलग्नच्छाया जम्बालधोरणी धरणी ॥३७॥

परभृतिका—अलं उव्वेएण। एदाएव्जेव मरगअभित्तीए अन्तरिदं पमदवण पविसिअ पच्छण्णमग्गेण ज्जेव कण्णअन्तेउरे पविसिदव्वं।

(अलमुद्वेगेन, एतावत्यैव मरकतभित्त्याऽन्तरित प्रमदवन प्रविश्य प्रच्छन्नमार्गेणैव कन्यान्तःपुर प्रवेष्टव्यम् ।)

(इति सर्वे सत्वर प्रमदवनप्रवेश नाटयन्ति)

दिशाओ के लुप्त होने के कारण पूर्वदिशा का ज्ञान अन्वेषण का विषय हो रहा है ।

(क्षणभर देखकर) प्राचीन अन्धकार नील कान्ति फैला रहे हैं ।

(डर कर,) और क्या, मालूम पडता है कि चन्द्रमा का उदय आसन्न है, क्योकि उसके किरणरूप भृत्यगण अमृतवृष्टि करके पूर्वदिशा को परिष्कृत करने मे लगे हुए हैं ॥ ३६ ॥

शाम्ब—(देखकर, सभय) क्या उपाय है ? देखो—चन्द्रमा की किरणों से अन्धकार सागर से आकृष्ट होकर शैवाल की धारा सी प्रतीत होने वाली यह पृथ्वी कहीं कहीं अपनी छाया प्रकट कर रही है ॥ ३७ ॥

परभृतिका—घबडाने की जरूरत नहीं है। इसी मार्गस्थित दीवाल के उसपार प्रमदवन मे प्रवेश करके आप दोनो कुमार को कन्यान्तःपुर म प्रवेश करना है ।

(सभी शीघ्रता से प्रमदवन मे प्रवेश करते हैं)

गद·—(विलोक्य, सकौतुकम्)

> किमिह निशया दूतीभावे निवेशितया नया
> तिमिरतरुणैः प्रागानीतैर्वनीमवनीभुजः ।
> प्रविरलदलच्छायाच्छेदच्छलादभिसारिकाः
> प्रतितरुतलं संगम्यन्ते तुषारकरत्विषः ॥ ३८ ॥

परभृतिका—(सकौतुकं स्मित्वा)

अहो दुइत्तणम्मि णिउणत्तण णिसाए जं असभाविअसंगमाइ पि एदाइं चन्दिआअन्धारमिहुनाइ संघडिज्जन्ति । (अहो द्वैतेऽपि निपुणत्वं निशाया यदसंभावितसङ्गमान्यप्येतानि चन्द्रिकान्धकार मिथुनानि सङ्घट्यन्ते ।)

उभौ—(विहस्य) कः सन्देहः ?

> युष्मादृशीनामन्याय नैपुण्याय नमोनमः ।
> यूनां येनाङ्कमायान्ति दुर्लभाः प्राणवल्लभाः ॥ ३९ ॥

परभृतिका—महाभाआ, इदो एदं केलीसेलक्देसमारुहीअदु । तदो उण अन्तेउरम्मि ज्जेव ओदरिदव्व । (इति सर्वे केलीशैलैकदेशारोहणं

गद—(देखकर—कौतुक से)

रात्रिरूप दूती अन्धकार युवकों से राजा के वन में विरलपत्र की छिन्न-च्छाया के छल से चन्द्रकिरणरूप अभिसारिकाओं का वृक्ष के नीचे मिलन करा रही है ॥ ३८ ॥

परभृतिका—(सकौतुक, मुस्कुराकर)

अहा ! द्वैत रहने पर भी रात्रि की चातुरी तो देखो कि वह मिलन के असंभव रहने पर चाँदनी तथा अन्धकार के जोड़े को मिला रही है ॥ ३८ ॥

दोनों—(हँसकर) इसमे क्या सन्देह ?

आप सदृश दूतियों की चतुरता को धन्यवाद है, जिनके चलते प्राण-वल्लभा युवतियाँ युवकों की गोद मे आ जाती हैं ॥ ३९ ॥

परभृतिका—महाभाग, आप दोनों कुमार इधर इस क्रीड़ापर्वत के

नाटयन्ति) (महाभागौ, इतएव केलीशैलैकदेश आरुह्यताम् , ततः पुनरन्त पुरे एव अवतर्त्तव्यम् ।)

उभौ—(समन्तादवलोक्य) अहो नैर्मल्यमिन्दुमहसाम् , तथाहि—

अजनि रजनिरन्या चन्द्रमःकान्तिरन्या
विपुलचपलवीचिव्याचिता काचिदेव ।
सतरुगिरिसरिद्भिः किं हरिद्भिस्समेतं
धवलिमनि धरित्रीमण्डलं मग्नमेतत् ॥ ४० ॥

परभृतिका—(सातङ्कमिव) भत्ति ओदरन्तु महाभाआ । (झटित्यवतरतं महाभागौ ।)

(इति निष्क्रान्ता सर्वे)

अन्त.पुराभिसारो नाम पञ्चमोऽङ्कः ।

एक भाग पर आरोहण करें, फिर वहाँ से तो अन्त पुर में ही उतरना होगा।

दोनों—(चारो ओर देखकर) अहा, चन्द्रमा की किरणें कितनी निर्मल हैं ? क्योंकि—

चञ्चल किरणो से व्याप्त यह रात्रि दूसरी ही हो रही है, चन्द्रमा की किरणें भी दूसरी ही प्रतीत होती हैं। वृक्ष, पर्वत, एव नदियों तथा दिशाओ से समेत यह पृथ्वीमण्डल स्वच्छता मे निमग्न हो रहा है ॥ ४० ॥

परभृतिका—(सातङ्क की तरह) आप लोग शीघ्र उतरें।

(सभी का प्रस्थान)

अ त पुराभिसार नामक पञ्चम अङ्क समाप्त

षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशति कञ्चुकी कुब्जकश्च)

कञ्चुकी—(समन्तादवलोक्य) विविक्त एवायं प्रदेशः, तद्वत्स वाहीक, कच्चित्त्वयापि किञ्चिदाकर्णितं कन्यकान्तःपुरकौलीनम् ।

कुब्जकः—अज्ज, को क्खु एद पआसिदु पारेइ । (आर्य, कः खल्वेतत् प्रकाशयितुं पारयति ।)

कञ्चुकी—अपि नामात्र प्रत्येति ते हृदयम् ।

कुब्जकः—ण क्खु पतिआअदि जइ पच्चक्खं ज्जेव ण आअक्खदि । (न खलु प्रत्याययति यदि प्रत्यक्षमेव नालक्ष्यते ।)

कञ्चुकी—(साभिनिवेशम्) तद्ब्रूहि त्वयापि किञ्चित् प्रत्यक्षीकृतम् ।

कुब्जकः—तुम्हाण ज्जेव पुरदो मए भणीअदि । एक्कम्मि दिअहे अह देवीए पव्वईं वदन्तरअणि विअरितुं चन्दवदीगुणवदीणं अन्तेउर-अणुप्पेसिदो । तत्थ उण केलीहरब्भन्तरं पविसन्तो झत्ति ससम्भमाए

(कञ्चुकी तथा कुब्जक का प्रवेश)

कञ्चुकी—(चारों ओर देखकर) यह स्थान तो एकान्त है ही, भाई बाहीक, क्या तुमने भी कन्या-त:पुर के सबन्ध में कुछ अपवाद सुना है ?

कुब्जक—आर्य, उसे कौन प्रकाशित कर सकता है ?

कञ्चुकी—क्या तुम्हारा हृदय उस पर विश्वास करता है ?

कुब्जक—विश्वास नही हो होता, यदि प्रत्यक्ष नहीं देखता ।

कञ्चुकी—(आग्रहपूर्वक) अच्छा तो बताओ, क्या तुमने भी कुछ प्रत्यक्ष देखा है ?

कुब्जक मैं केवल आपसे बता रहा हूँ, एक दिन मैं किसी पर्व पर'''सूचित करने के लिये महारानी द्वारा चन्द्रावती तथा गुणवती के अन्तःपुर में भेजा गया था । वहाँ जब मैं केलिगृह में प्रवेश करने लगा तब घबड़ाकर

परहुदिआए आअक्खिअ-ववदेसेण दुआरदेसम्मि ज्जेव पडिरुद्धो जाव आअण्णोमि केलिहरम्मि पुरिसाणं विअ सलावं पच्छा उण भवणब्भन्तरं अहं अणुप्पेसिदो। तत्थ उण तक्कालिओपहोअ-चिन्हाइ पलोअन्तो अप्पणो अन्तो अकम्पि। तत्थ पविसि अच्छरीअ विसट्ठुलेन हिअएण परावुत्तो म्हि। (युष्माकमेव पुरतो मया भण्यते, एकस्मिन् दिवसे अहं देव्या पर्वणि ··रजनि विज्ञापयितुम् चन्द्रवतीगुणवत्यो· अन्त पुरमनुप्रेषितः। तत्र पुनः केलीगृहाभ्यन्तर प्रविशन् झटिति ससम्भ्रमया परभृतिकया आरक्षिकव्यपदेशेन द्वारदेश एव प्रतिरुद्धो यावदाकर्णयामि केलीगृहे पुरुषाणामिव संलाप पश्चात्पुनः भवनाभ्यन्तरमहमनुप्रेषितः। तत्र पुनस्तात्कालिकोपभोगचिह्नानि प्रलोकमानः आत्मनोऽन्तरकम्पि। तथा प्रविशन् आश्चर्यविसष्ठुलेन हृदयेन परावृत्तोऽस्मि।)

कञ्चुकी—किमत्राश्चर्यम्। न खलु महामायिनोऽन्तरेणान्तःपुरप्रवेशः पुरुषाणां प्रसज्यते। कथमन्यथा च तथाविध उपनतोऽन्तःशरीर-सन्तापः।

कुब्जकः—अण्णम्पि अच्चाहिद जाणादु अज्जो ज कण्णअन्तेउर-पसाहिआए अम्हाण बअण-बहिणिआए णिउणिआए आअक्खिद। (अन्यदपि अत्याहित जानात्वार्यो यत्कन्यान्तःपुरप्रसाधिकया अस्माक वचन-भगिनिकया निपुणिकयाऽऽख्यातम्।)

परभृतिका ने पहरेदार द्वारा दरवाजे पर रुकवा दिया, वहीं से ही मैंने केलि-गृह मे पुरुषो का-सा वार्त्तालाप सुना। पीछे मुझे केलिभवन मे जाने दिया गया। वहाँ जाने पर मैंने देखा कि तात्कालिक सभोग के चिह्न वर्तमान हैं। उन्हे देखने ही मैं काँप उठा। आश्चर्यचकित हृदय लिये मैं पैठने ही वापस लौट आया।

कञ्चुकी—इसमे आश्चर्य क्या है? महामायावी के अतिरिक्त पुरुष का अन्त पुर मे प्रवेश सभव ही नही है। और यदि पुरुष का प्रवेश नही हुआ तो उस तरह की शरीरबाधा कैसे उपस्थित हुई।

कुब्जक—आप और भी अनर्थ जान लें जो मेरी बहन निपुणिका—अन्त पुर-प्रसाधिका—ने मुझे कहा है।

कञ्चुकी—किन्तत् ?

कुब्जक—तइ आणम्पि भट्टिदारिआण गुव्विणीण विअ लक्खणाइं लक्खीअन्ति। (तत् आसामपि भर्तृदारिकाणाम् गुर्विणीनामिव लक्षणानि लक्ष्यन्ते।)

कञ्चुकी—(सावेगम्) अहो महाश्चर्यमुन्मर्यादता व्यतिक्रमश्च कौमारभावस्य।

कुब्जक—चिरआलदंसी साहु अणेहि सोम्ह पेक्खिदुणे परिक्खिदोसि ता किम्पि तक्केसि ये वखु एदे महापाडच्चरा कण्ण अन्तेउर दूसेन्ति। (चिरकालदर्शी साधुजनैः साकं प्रेक्षितुं परीक्षितोऽसि, तत् किमपि तर्कयसि के खल्वेते महापाटच्चरा कन्यान्तःपुरं दूषयन्ति।)

कञ्चुकी—किं ब्रवीमि—

वितथं न ब्रह्मवचो न चोत्पथे पुरजनाः प्रवर्त्तन्ते।
नापि प्रमादभाजः क्षितिपालपरक्षिण पुरुषा ॥ १ ॥

कुब्जक—अज्ज मए एव्व सम्भावीअदि जइ णराण व्वेव केवि माआविणो होन्ति। (आर्य मया एव सम्भाव्यते यदि नराणामेव केऽपि मायाविनो भवन्ति।)

कञ्चुकी—वह क्या ?

कुब्जक—यही कि राजकुमारियों के लक्षण गर्भिणी के से हो रहे हैं।

कञ्चुकी—(आवेग से) बहुत बड़ा आश्चर्य ! इतनी उन्मर्यादता तथा कुमारपन का व्यतिक्रम !!

कुब्जक—तुमने बहुत दिन देखे हैं सज्जनों के साथ रहकर परीक्षित हो चुके हो तुम कुछ तर्क करते हो कि यह कौन चोर हैं जो कन्यान्तःपुर को दूषित कर रहे हैं।

कञ्चुकी—मैं क्या कहूँ ?

न ब्रह्मा का वरदान मिथ्या हो सकता है, न पुरवासी जन उन्मार्गगामी हुए हैं और न राजान्तःपुर के रक्षकगण ही असावधानता बरत रहे हैं ॥ १ ॥

कुब्जक—आर्य, मैं तो ऐसी सभावना करता हूँ कि मानवों में से ही ये कुछ मायावी हैं।

कञ्चुकी—युज्यमानमाशङ्कसे—

> प्रयात. पातालं बलिरपि बलन्वामनतनौ
> प्रपेदे वैदेही विपदमभियाता दशमुखम्।
> प्रपन्ने प्रद्युम्ने क्षयितमखिलं शम्बरकुलं
> सुखं सुप्ता कुत्रापरिचितपरालम्बनकरा. ॥ २ ॥

अथ च सर्वथा कोऽप्ययं दैवतनीतिनिर्वाहितो दुर्योगनिपात। पश्य—

> हंसा स्व सरसीनिवासरसिका कस्मादकस्मादिह
> प्राप्तास्ते पुरमध्यमद्भुतनिधीनानीतवन्तो नटान्।
> तेभ्यश्चेदवरोधदूषणमिदं हा हन्त सम्भाव्यते
> को जानाति करिष्यते किमपरं दुर्मेधसा वेधसा ॥ ३ ॥

कुब्जक—(चिन्तितम्) ता अज्ज किं त्ति ण एदं महाराअगोअरी करीअदि। (तद् आय, किमिति न एतद् महाराजगोचरीक्रियते।)

कञ्चुकी—तुम ठीक आशङ्का करते हो—

बलि ने वामन के ऊपर विश्वास किया तो वह पाताल भेज दिये गये। सीता ने रावण पर विश्वास करके विपत्ति भोगी। प्रद्युम्न के आ जाने से सारा राक्षसकुल समाप्त हुआ, भला अपरिचित जन के साथ आसक्ति करके कौन सुख से सो सका है ॥ २ ॥

और सब तरह से यह कोई देवगण की नीति से चलाया गया अनर्थ का सूत्रपात है। देखो—

स्वर्गीय सरोवरों में निवास करने वाले हंस अकस्मात् यहाँ क्यों आ गये? फिर वे नगर के मध्य आश्चर्य के निधि नटों को क्यों ले आये? यदि उन नटों के द्वारा ही यह अन्त पुर का दूषण हुआ है तो कौन जानता है कि दुष्ट विधाता और क्या करेगा? ॥ ३ ॥

कुब्जक—(चिन्तित होकर) आर्य, तो फिर यह बात क्यों न महाराज से कह दी जाय?

अपि च—

कुर्वाणाः कमलवनीविकासमाशाः
काश्मीरस्तबकभरैः प्रसाधयन्तः ।
लुम्पन्तो विरहरुजं रथाङ्गयूना-
मेते द्यां मिहिरकराः परामृशन्ति ॥ ८ ॥

किञ्च—

उत्सिक्तानि तमांसि मांसलतरैरुत्सार्य सद्यः करै-
रुत्साद्य प्रसभं मृगाङ्कमहसामाह्लादलक्ष्मीमपि ।
चक्राणामरुणो जहार करुणोपन्यासगर्भा गिरो
भानुः केवलमेत्य पङ्कजवनी सौजन्यमभ्यस्यतु ॥ ९ ॥

अपि च—

येषां हन्त समासमा इति समाक्रन्दाकुलं जल्पतां
कल्पान्तानलतामियाय रजनीविश्लेषितानां विधुः ।
त्वं कस्त्वं क इति क्रुधा कथयतान्तेषामिहानीमसौ

क्या नहीं कर सकते हैं ॥ ७ ॥

कमल वन तो विकसित, दिशाओं को केसर के गुच्छों से प्रसाधित एवं चक्रवाकयुगल के विरह कष्ट को समाप्त करने वाले सूर्य के कर आकाश को छू रहे हैं ॥ ८ ॥

गर्वान्ध अन्धकार राशि को बलिष्ठ किरणों द्वारा निष्कासन, चन्द्रमा की ज्योति का समापन, चक्रवाकों के करुण रुदन, इन सारे कार्यों को तो अरुण ने सम्पन्न कर रखा है, सूर्य आकर केवल अब कमलवनी के साथ सौजन्य का अभ्यास करें ॥ ९ ॥

रात में चक्रवाकयुगल बिछुड़े रहते हैं। वे उस समय समा-समा बोलते हैं: उनके शब्द का यह अर्थ लगाया जा सकता है कि यह रात्रि वर्ष के समान है, समा वर्ष का नामान्तर है, रात भर चक्रवाकगण क्रन्दन करते हुए समा समा कहकर चन्द्रमा को कष्टप्रद होने के कारण प्रलयानल समझते रहे, वही चन्द्रमा अब प्रातः काल में 'चक्रवाकों के देखते' तुम कौन होते हो ? इस प्रकार की

चक्राणां सहते विनम्रवदनो न्यक्कारमापद्गतः ॥ १० ॥

किञ्च—

स्मरनरपतेः कारागारायितानयमालया-
मुदयति रविर्जालैर्जालैर्निवेश्य निजत्विषः ॥
प्रणयिषु निशि ग्रीवाग्राहं बलाद्विनिवेशितं
भुजबिसलताबन्धग्रन्थिं हरन् हरिणीदृशाम् ॥ ११ ॥

अपि च—

आविष्कुर्वन्निव नवनवेनादरेणानुरागं
सर्वाङ्गीणं सुचिरविरहोन्मूर्च्छितायां नलिन्याम् ।
त्रैलोक्यान्धीकरणतिमिरद्वेषरोषारुणत्वं
व्याकुर्वन् वा किमयमुदयत्यम्बरे तिग्मरोचिः ॥ १२ ॥

किञ्च—

विरहेण रवेर्दिनावसाने परिपीतानि विषाणि वारिजिन्यः ।
कमलोदरनिस्सरद्द्विरेफव्यपदेशादधुना किमुद्गिरन्ति ॥ १३ ॥

कोपपूर्ण उक्ति को विनम्र मुख होकर तिरस्कार के रूप में सुनने को बाध्य है, आखिर वह आपत्ति में जो है ॥ १० ॥

कामरूप नृपति के कारागार सदृश बने इन घरों में खिड़कियों के मार्ग से अपनी किरणों को पैठाकर सूर्य प्रणयियों की गर्दनों में बलात् डाले गये स्त्रियों के बाहुलताबन्धन को दूर कर रहा है ॥ ११ ॥

चिरकालिक विरह से मूर्च्छिता नलिनी के आगे अपने नव-नव समग्र अनुराग को प्रकट करता हुआ या त्रैलोक्य को अन्धकर देने वाले अन्धकार पर द्वेष से अपनी सर्वाङ्गीण अरुणता को व्यक्त करता हुआ यह सूर्य आकाश में उदित हो रहा है ॥ १२ ॥

सन्ध्या समय कमलिनियों ने सूर्य के विरह में जो विष निगल लिये थे, इस समय वही विष कमल के अभ्यन्तर से निकलते हुए भ्रमर के व्याज से बाहर आ रहे हैं ॥ १३ ॥

अपि च—

जानीमहे रविरतीत्य चिरप्रवास-
मानीय नीलमणिकङ्कणमादरेण ।
विन्यस्यति भ्रमरमण्डलकैतवेन
सङ्कोचशालिनि सरोजकरे नलिन्या ॥ १४ ॥

किञ्च—

त्वमन्यहरिदङ्गनाविहरणव्यपेतक्षप
स्पृशन्नुपगतोऽत्र यः किमधुना करैर्मामिति ।
प्रसार्य कमलाङ्कुरं भ्रमरभाक्रतिव्याजत.
समाचरति पद्मिनी किमु रवेरुपालम्भनम् ॥ १५ ॥

अथ कथमहमिदानीमुदयाचलचूडामणितामभ्युपेयुषि सहस्रमयूखे शयनीयसुखेनालसो दिवसोचितं न व्यवहरामि। (इत्युत्थाय) प्रिये प्रभावति, (समन्तादवलोक्य) कुत्र या प्रभावती ? शून्यमेवैतत् पल्यङ्किकामन्दिरम्, तदन्वेषयामि चित्रशालिकायाम्। (इति परिक्रम्य चित्रशालिका प्रवेशं नाट

चिरकालिक प्रवास को बिताकर घर लौटा हुआ सूर्य नायक नलिनीरूप अपनी प्रेयसी के कमल स्वरूप सङ्कोचशाली (अविकसित और लज्जायुक्त) हाथ में यह भ्रमरमण्डलरूप नीलम का बना हुआ कङ्कण आदर से पहना रहा है ॥ १४ ॥

पद्मिनी नायिका प्रातःकाल में कमलरूप हाथ चमकाकर भ्रमर के शब्दों के व्याज से सूर्य को यह कहती हुई उलाहना दे रही है कि रात में तुम दूसरी दिगङ्गना के साथ विहार करते रहे इस समय अपने कर से मुझे छूते हुए तुमको लज्जा नहीं हो रही है ? ॥ १५ ॥

क्यों मैं इस समय भी—जबकि सूर्य भगवान् उदयाचल की चोटी पर पहुँच गये हैं—शय्यासुख से अलसाया हूँ, और दिवसोचित कार्य नहीं कर रहा हूँ। (उठकर) प्रिये प्रभावति, (चारों ओर देखकर) कहाँ गई प्रभावती ? यह पर्यङ्किका मन्दिर तो शून्य है। अच्छा तो चित्रशालिका में ढूंढ़ता हूँ।

विश्य) (सावेगम्) कथं शून्यमेव सर्वम् (सचिन्तम्) किमन्तःपुरगतः भवेत्? अथवा—

> अपेक्षते मयोत्साहं श्वसितेऽप्यसितेक्षणा।
> सम्भावनापि का दूरं गमने मम नेत्रयोः॥ १६॥

धिक् प्रमादः,

> किं भूयात् कुपितैव कोमलतनुः कोपं न सा शिक्षिता
> तस्या हन्त हृदः प्रतीपकरणे कस्याथवा पौरुषम्।
> प्रच्छन्ना बत वञ्चनाकुतुकिनी तन्वी भवेदित्यपि
> व्यस्तं तद्विनयक्रमेण विकलस्तत्तर्क मूकीभव॥ १७॥

तदन्यतो गवेषयामि प्रियतमाम् (इति परिक्रामन्नग्रतोऽवलोक्य) अये कथमासन्नायामेव केलिकमलिनीखण्डतीरस्फटिकशिलावेदिकायां तरलिकया सह स्नातोपविष्टा विषादाविष्टा प्रभावती विलोक्यते, यतः—

(जाकर तथा चित्रशालिका में प्रवेश का अभिनय करके) (उद्वेग से) सारा भवन शून्य ही है। (चिन्ता से) क्या अन्तःपुर चली गई? अथवा—

जो प्रभावती साँस लेने में भी मेरे द्वारा दिये जाने वाले उत्साह की अपेक्षा करती है, वही मेरी आँखों से दूर चली जायगी इसकी क्या सम्भावना है?

बड़ी गलती हुई।

क्या वह कुपित हो गई होगी? नहीं, कुपित होना तो उसने सीखा ही नहीं है, उसके हृदय के प्रतिकूल आचरण करे, ऐसा साहस किसको है, मुझे वञ्चित करने के उद्देश्य से वह कहीं छिप गई हो, यह भी उसकी विनय के विपरीत है, अतः, हे मेरे तर्क, आप अक्षम हैं, अतः मौन ही धारण करें॥१७॥

तब तक दूसरी ओर ढूंढता हूँ (चलता हुआ आगे की ओर देखकर) अरे प्रभावती तो इसी समीपस्थित कमलिनी सरोवर के तीर पर अवस्थित स्फटिक-मणि निर्मित शिलावेदिका पर तरलिका के साथ बैठी हुई स्नात तथा विषण्ण सी लग रही है, क्योंकि—

पुरस्त्यक्तालापं प्रसरदनुतापं सहचरी-
मुपासीनां दीनां कलयति न नेत्रातिथिमपि ।
गलद्वारिव्याजादहह सहजामर्षकलुषा-
मुपाकीर्णामंसे न पुनरनुबध्नाति कबरीम् ॥ १८ ॥

तदग्रतो गत्वा प्रच्छन्न एव प्रियतमायाः प्रतायमानस्य विषादस्याकस्मिकं कारणमाकलयामि । (इति परिक्रम्य निरूप्य च)

यदेतस्याः कम्पानमदधरसम्पातसुभगं
चिरादस्रं शोणाकुलनयनकोणाद्विपतति ।
सितस्फीताशाटीधृतललितपाटीरमलिकं
न किञ्चित्तन्मानादपरमनुमानादिविषयः ॥ १९ ॥

(इति सचिन्तमेकान्ते स्थितः) ।

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा प्रभावती तरलिका च)

तरलिका—सहि समस्सस समस्सस, अथ हन्त कीरिसं तं उव्वेअकारणं

बातें करना बन्द कर लिया है, अनुताप-सो लग रहो है, सेवा में उपस्थित दीन सहचरी की ओर दृष्टिपात भी नहीं कर रही है, उसके बालों से पानी चू रहा है मानों वे भी अमर्ष से पूर्ण हों, ऐसे कंधों पर लटकते हुए बालों को वह सँभाल भी नहीं रही है ॥ १८ ॥

इसलिये आगे चल कर छिपे-छिपे ही प्रियतमा के बढ़े हुए विषाद के आकस्मिक कारण का पता लगाता हूँ । (चलकर तथा देखकर)

काँपते तथा झुके हुए अधरों पर रक्तवर्ण नयन कोण से आँसू टपक रहा है, इसने उजेली स्वच्छ साड़ी पहन रखी है, ललाट पर चन्दन बिन्दु कर ली है, अतः मान के अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु अनुमान आदि का विषय नहीं है ॥ १९ ॥

(चिन्तित भाव से एकान्त में खड़ा हो जाता है)

(पूर्वनिर्दिष्टरूप में प्रभावती तथा तरलिका का प्रवेश)

तरलिका—सखी, धीरज धारण करो, तुम्हारे उद्वेग का कैसे-सा देखा

जं अम्हेहिम्पि जाणिदुं ण पारीअदि। (सखि समाश्वसिहि समाश्वसिहि, अय कीदृशं तदुद्वेगकारण यदस्माभिरपि ज्ञातु न पार्यते।)

प्रभावती—(सबाष्पोपरोधम्) जइ अहं तम्वाहरिउ पारेमि। (यदि अहं तद् व्याहर्तुं पारयामि।)

तरलिका—(सप्रसरम्) सहि कधेहि कधेहि कहिदो ज्जेव चित्तमण्णु सज्झवेअणो भोदि। (सखि कथय कथय, कथित एव चित्तमन्यु सह्यवेदनो भवति।)

प्रभावती—अयि किङ्कहेमि मन्दभाइणी। (अयि, किं कथयामि मन्दभागिनी।)

तरलिका—पडिहदममङ्गलं। (प्रतिहतममङ्गलम्।)

प्रभावती—सुण। अज्ज णिसीहम्मि सो तुम्हाण वल्लहो महाभाओ (इत्यर्धोक्ते वाक् स्तम्भं नाटयति) (शृणु, अद्य निशीथे स युष्माक वल्लभो महाभागः)

कुमार.—(सत्रासम्)

> किम्मया मन्दभाग्येन विहितं हरिणीदृशः।
> बाष्पोपरोधकुण्ठेऽस्या यन्न कण्ठेऽप्युदञ्चति ॥ २० ॥

कारण है जिसे मैं भी नही जान सकती हूँ ?

प्रभावती—(आँसू रोककर) यदि मैं उसे कह सकती ?

तरलिका—(आगे बढकर) सखी कहो कहो, कहने से ही मानसिक उद्वेग सह्य होता है।

प्रभावती—अरी, मैं अभागिनी क्या बताऊँ ?

तरलिका—अमङ्गल दूर हो।

प्रभावती—सुनो, आज रात में वह तुम्हारे वल्लभ महाशय···(इतना कह कर वचनावरोध का अभिनय करती है)

कुमार—(डरकर) मुझ मन्दभाग्य के द्वारा इस सुन्दरी के प्रति क्या अपराध हो गया है जो इसके बाष्पाकुल कण्ठ से बाहर भी नही निकल रहा है ॥ २० ॥

तरलिका—कधेदु कधेदु पिअसही। (कथयतु कथयतु प्रियसखी!)

प्रभावती—सो तुम्हाणं वल्लहो महाभाओ तादं वज्जणाहं उज्जन्धिअ दक्खिणाए दिसाए परव्वसं विसज्जेदि। पच्छादण सव्वासुरवाहिणीपुरस्सराहिं अम्भाहिं गाइअदि त्ति मए पलोइदं। (स युष्माकं वल्लभस्तातं वज्रनाभमुद्बध्य दक्षिणया दिशा परवशं विसर्जति, पश्चात्पुनः सर्वासुरवाहिनीपुरस्सराभिरम्बाभिर्गीयत इति मया प्रलोकितम्।)

तरलिका—(सविषादमात्मगतम्) अहो दुरत्योवणिवादसूअअ सिविणअ। (अहो, दुर्योपनिपातसूचकः स्वप्नः।)

कुमार—(सापराधमिव) सत्यमवश्यं भाविनो महतो मदपराधस्योपसूचक स्वप्नदर्शनमेतत्। भवतु वा, समाधेयमिदमापाततः।

प्रभावती—(तरलिकाया मुखमवलोक्य सखेदम्) अइ किं मुद्दिअमुही चिट्ठसि। (अयि किं मुद्रितमुखी तिष्ठसि?)

तरलिका—(सकृतकस्मितम्) सहि सिविणअं क्खु एदं ण एआदिसस्स उव्वेअस्स कारण। (सखि, स्वप्नः खल्वेव न एतादृशस्य उद्वेगस्य कारणम्।)

तरलिका—कहो प्रियसखी, कहो।

प्रभावती—वह तुम्हारे बल्लभ महाशय तात वज्रनाभ के गले में बन्धन लगाकर बरबस ले जाकर दक्षिण को ओर छोड़ आते हैं। पीछे समस्त असुर-सैन्य के साथ हमारी मातायें उनकी स्तुति करती हैं। ऐसा मैंने स्वप्न देखा है।

तरलिका—(सविषाद, स्वगत) अरे, यह तो विपत्ति का सूचक स्वप्न है!

कुमार—(सापराध की तरह) सचमुच यह तो मेरे भावी महान् अपराध का सूचक स्वप्न है। जो हो, इस समय तो इसका तात्कालिक समाधान करना ही है।

प्रभावती—(तरलिका का मुख देखकर) (सखेद) फिर तुम क्यों मुँह बन्द करके बैठी हो?

तरलिका—(बनावटी मुस्कान के साथ) सखि, यह तो स्वप्न है, अतः यह इस तरह के उद्वेग का कारण नहीं है।

प्रभावती—(सास्रम्) अइ किं इदो वि अहिअदरं उव्वेअकारण जदो तदो ज्जेव आवादमहुरवावारमणहरादो परिणामदीहदुव्विणअदारुणादो हिअअवल्लहादो ज्जेव एआरिसो अणत्थो सम्भावीअदि। तधावि पिअसहि कधेहि किं एत्थ सुहपरिणामत्थं करीअदि। (अयि किमितोऽपि अधिकतरमुद्वेगकारण यतस्तत एव आपातमधुरव्यापारमनोहरात् परिणामदीर्घदुर्विनयदारुणात् हृदयवल्लभात एव एतादृशोऽनर्थ सम्भाव्यते। तथापि प्रियसखि, कथय, किमत्र सुखपरिणामाय क्रियते।)

तरलिका—एव्व किल सिविणअज्झाअम्मि सुणीअदि—'आलोकितदुःस्वप्नाः पुन स्वपन्त्यन्यतो न तद् ब्रुवते'। (एव किल स्वप्नाध्याये श्रूयते)

प्रभावती—हा मए एदं किम्पि ण समाचरिअं। (हा मया एतत् किमपि न समाचरितम्।)

तरलिका—देवगुरुविप्रपूजनसत्कीर्त्तनतो नयन्ति तदुपशमम्।

प्रभावती—(सावष्टम्भम्) ता समाहरदु पिअसही देवदाण पूओवअरणाइं दिअवराण भोजनवसणसुवण्णाइं। (तद् समाहरतु प्रियसखी देवताना पूजोपकरणानि द्विजवराणा भोजनवसनसुवर्णानि।)

प्रभावती—(रोती हुई) तो क्या इससे भी बढ कर कुछ उद्वेग का कारण हो सकता है ? जिसे हृदयवल्लभ बनाया वही ऊपर-ऊपर से मधुर वचन कहकर परिणाम मे दुर्विनय भीषण बने और इस तरह के अनर्थ की सम्भावना पैदा कर दे। फिर भी यह बताओ कि इस स्थिति में भी परिणाम सुख हो इसके लिये क्या किया जाय ?

तरलिका—स्वप्नाध्याय मे ऐसा लिखा है कि—दु स्वप्न देखनेवाले फिर से सो जाय, और दूसरो से चर्चा न करें॥

प्रभावती—हाय, मैंने यह कुछ भी नही किया!

तरलिका—देवता ब्राह्मण तथा गुरु के पूजन से उसको शान्त करते हैं।

प्रभावती—(रुककर) तो प्रियसखी, देवपूजन की सामग्री और ब्राह्मणो के लिये भोजन तथा वस्त्र ला दो।

तरलिका—जं पिअसही आणवेदि त्ति (निष्क्रान्ता) (यद् प्रियसखी आज्ञापयति।)

(नेपथ्ये कलकलः)

प्रातः प्रत्यङ्गणोद्यद्विकरकलनोत्कण्ठया विस्तृतानां
वस्तूनां सञ्चयायाकुलकरचरणं संभ्रमेण भ्रमद्भिः।
वातप्रातोपहूतप्रबलजलधरध्वानमाकर्ण्य पौरै-
रुद्गीर्णोऽम्भःकणानां पतनपुलकितैः कोऽपि कोलाहलोऽयम्॥२१॥

अपि च—

सगर्वं कुर्वन्तः कलितमुकुलं पङ्कजकुलं
विलिम्पन्तो व्योमोदरमपि दलत्कज्जलभरैः।
अमी भूमीकोपात्क्वचिदपि करानम्बरमणे-
र्निरस्यन्तो धावन्त्यहमहमिकाभिर्जलमुचः॥ २२॥

कुमारः—(आकर्ण्यावलोक्य च) अये कथमयं प्रवर्त्तमानप्रावृट्समय-सुलभः सर्वतोऽपि वियति वारिधरोपरोधः। अहह !!!

तरलिका—प्रियसखी की जैसी आज्ञा। (जाती है)

(नेपथ्य में कलकल)

प्रातःकाल धूप में सुखाने के लिये वस्तुयें आँगनों में फैलाई गई थीं, उन्हें सञ्चित करने के लिये आकुल हाथ-पैर से घबड़ाहट के साथ दौड़ते हुए पुरवासी-जन हवा से बुलाये गये मेघ का गर्जन सुनकर तथा जलकण के पतन से पुलकित होकर यह कोलाहल कर रहे हैं॥ २१॥

गर्व के साथ कमल कुल को मुकुलित तथा आकाश के मध्यभाग को कज्जल से लिप्त करते हुए तथा भूमण्डल से सूर्य किरणों को कहीं दूर भगाते हुए ये मेघ होड़-सी लगाकर दौड़ रहे हैं॥ २२॥

कुमार—(सुनकर) अरे, क्या यह वर्षा-काल में सुलभ जलधर का घेराव आकाश में चारों ओर फैल रहा है? अहह !!

यावद्वियोगविधुरां मधुरादरेण
भानुर्विनोदयति पङ्कजिनीं करेण ।
दुर्दैवदुर्विलसितोन्नमितेन ताव-
दाक्रान्तमम्बरमनेन दुरम्बुदेन ॥ २३ ॥

(प्रविश्योपकरणादिहस्ता सम्भ्रान्ता तरलिका)

तरलिका—भट्टिदारिए, समाहरिदं क्खु एदं समाहरिदव्वं, सम्पदं उण एत्थ किम्पिण सपज्जिस्सदि त्ति जाणीअदि, जदो एदे समन्तदो वि जलासारं वरिसन्ता परापडिआ ज्जेव जलहरा । (भर्तृदारिके, समाहृतं खल्वेतद् समाहर्तव्यम्, साम्प्रत पुनरत्र किमपि न सम्पत्स्यते इति ज्ञायते, यत एते समन्ततोऽपि जलासारं वर्षन्त परापतिता एव जलधराः ।)

प्रभावती—(सवैचित्यम्) सहि कहं सपज्जदु जइ देव्वं ज्जेव एदं ण अनुमण्णुदि । [इत्युभे वर्षवातोद्वेगं नाटयत] (सखि, कथं सम्पद्यता यदि दैवमेव एतन्नानुमन्यते ।)

कुमार—(विलोक्य सस्पृहम्)

जब तक वियोग कष्ट से पीडित कमलिनी को सूर्य अपने कर (किरण–हाथ) के स्पर्श से विनोदित करे तभी तक दुर्भाग्य द्वारा उन्नमित मेघो ने आकाश को आक्रान्त कर लिया ॥ २३ ॥

(सामग्री हाथ मे लिये घबडाई हुई तरलिका का प्रवेश)

तरलिका—राजकुमारी, जो उपकरण लाना था सो मैं ले आई, लेकिन लगता है, इस समय यहा कुछ भी नहीं हो सकेगा । क्योंकि जलवर्षा करते हुए ये मेघ आ पहुँचे हैं ।

प्रभावती—(मोह के साथ) कार्य सम्पन्न कैसे हो जब कि भाग्य को ही मञ्जूर नही है ।

(दोनों वर्षा के वेग तथा वायु से उद्वेग का अभिनय करती हैं)

कुमार—(देखकर—सस्पृहभाव से)

पुलकयति गण्डपालीं मलकालीमाकुलीकुरुते ।
कलयति चञ्चलमञ्चल-मद्वमिव जलदानिलः सुतनोः ॥ २४ ॥

अपि च—

चक्रयति वदनमस्याः शीत्कारविकारिपुलकितकपोलम् ।
मामकनखर-निपात-प्रतिनिधि-रधुना नवाम्बुकणः ॥ २५ ॥

तरलिका—तुरवदु तुरवदु भट्टिदारिआ । (त्वरतां त्वरतां भर्तृदारिका ।)

प्रभावती—(निःश्वस्योत्थाय) ता सपदं समासण्ण-कोलासेल सिहरप्पासादं ज्जेव गच्छम्ह । [इति त्वरितं परिक्रामतः] (तत् साम्प्रतं समासन्न-कोलाशैलशिखरप्रासादम् एव गच्छामः ।)

कुमार—अहह,

वेगावहत्पतितम्रस्थलचलनगलन्नीविलग्नैकहस्ता
पातव्यस्ताञ्चलानां कथमपि च करेणापरेणाहरन्ती ।
मञ्जीरध्वानधारानुकरणतरुणैः किङ्किणी कङ्कणानां
भूयो भूयो भयार्त्तैरिव कलकलितैः प्रेरितेव प्रयाति ॥ २६ ॥

मेरी ही तरह यह मेघ के साथ आने वाली वायु इस सुन्दरी के कपोल को पुलकित, केशपाश को आकुल, एवं नयनप्रान्त को चञ्चल किये दे रहा है ॥ २४ ॥

और—मेरे द्वारा किये गये नखक्षत का प्रतिनिधि यह नवजलकण इस सुन्दरी के रोमाञ्चित कपोलमुखमण्डल को सीत्कार से विकृत तथा वक्र बना रहा है ॥ २५ ॥

तरलिका—राजकुमारी, शीघ्रता करें, शीघ्रता करें ।

प्रभावती—(सांस लेकर, उठकर), इस समय हम लोग क्रीडाशैल के शिखर पर वर्तमान प्रासाद में ही चलें । (वेग से चलती हैं)

कुमार—वेग के कारण चञ्चल नितम्ब से गिरते हुए वस्त्राञ्चल पर एक हाथ रखे हुए वायुचालित वस्त्र के अञ्चल का छोर को किसी तरह दूसरे हाथ में पकड़े, मञ्जीर की ध्वनि का अनुकरण करने वाले इन भयभीत किङ्किणी शब्दों से प्रेरिता की तरह प्रतीत होती आगे बढ़ती जा रही है ॥ २६ ॥

(सस्पृहम्)

याच्ञाभिरेव सुरतावसरे कदाचि
दङ्गानि यानि कथमप्यवलोकितानि।
सन्दर्शितानि सुदृशो ललितानि तानि
व्यस्ताम्बरं मुहुरनेन समीरणेन ॥ २७ ॥

प्रभावती—(क्षण स्थित्वा, नि श्वसती) अम्महे बलिअ पराहूदम्हि एदिणा पओहरोग्गम सम्भमेण। (अहो बलवत् पराभूतास्म्येतेन पयोधरोद्गम-सम्भ्रमेण।)

कुमार—(सकातर्यम्) एवमेतत्।

वक्षोघनक्षोभमुदस्तहारं स्फारं रुणद्धि श्वसितावतारम्।
ऊरू घनोत्कम्पगुरू तदस्यामनेन किन्नापकृतं घनेन ॥ २८ ॥

अपि च—

गति प्रतिपदं त्वराकुलतया ऽनया संवक्ष-
उज्जलार्द्र जघनाम्बरा वरतनो पराभूयते।

(स्पृहाभाव से)

रतिक्रीडा के अवसर पर कभी कभी नाना विनय के बाद मुझे प्रभावती के जो अङ्ग देखने को मिले, उन्ही अङ्गो को वस्त्र को अस्त-व्यस्त करके इस वायु ने मुझे अच्छी तरह देख लेने का अवसर दे दिया है ॥ २७ ॥

प्रभावती—(थोडी देर ठहर कर) (नि श्वास लेती हुई) मेघ के आगमन से उत्पन्न घबराहट के चलते, मैं काफी परेशान हो गई हूँ।

कुमार—(कातरतापूर्वक) यही बात है।

चञ्चल वक्षस्थल हार को फेंककर श्वास के निर्गम को रोक रहा है, जङ्घाद्वय कम्प के कारण बोझिल हो रहे हैं इस प्रकार इस मेघ ने प्रभावती के प्रति कौन सा अपकार नही किया है ॥ २८ ॥

और—इस सुन्दरी की द्रुतगति के कारण जलार्द्र वस्त्र के जघन तथा चरणोंमे लिपट जाने से चलने मे बाधा पड रही है, और इसकी देह

तनुस्तनुतरोदरी स्फुटमुरीकरोत्युन्नमत्-
पयोधर मद्दीधरोद्वहनखिन्नतामुन्नताम् ॥ २९ ॥

प्रभावती—(पुनरपि त्वरितं परामामति)

तरलिका—(विभाव्य) सहि मा करु मा करु तुरिअं परिक्कमेहि आवण्णसत्त्वासि दाणि। तुम अणु अम्पि आआसकारणं एत्थ परिहरीअदि। (सखि, मा कुरु मा कुरु त्वरितं परिक्रम्य। आपन्नसत्त्वासीदानीं त्वम्, अणु अपि आयासकारणमत्र परिह्रियते।)

कुमार.—(सातङ्कम्) सत्यमाह तरलिका। तदहमेव गत्वा निषेधयामि प्रियतमाम्। (इत्यग्रतो गत्वा सप्रतिषेधम्) अलमलमेतावता प्रयासेन, यतः—

स्तनजघनकबरीदृग्भारः पुरः परमो गुरु
र्यदि परमपि प्रते विश्लिष्टचैव सखीजनः।
तदिद चतुरे सञ्चारोऽयं त्वरातरलो यथा
सुतनु न तथा धाराम्धारा पराभवकारणम् ॥ ३० ॥

उन्नत पयोधर के भार को वहन करने मे खिन्नता का अनुभव सा कर रही है ॥ २९ ॥

प्रभावती—(फिर तेजीसे चलती है)

तरलिका—(देखकर) सखि, इतनी तेजी से मत चलो। तुम इन दिनों गर्भिणी हो, इस अवस्था में थोड़े से परिश्रम से भी परहेज किया जाता है।

कुमार—(आतङ्कित होकर) तरलिका ठीक कह रही है। मैं ही जाकर प्रियतमा को तेज चलने से रोकता हूँ। (ऐसा सोचकर आगे जाकर रोकता हुआ) इतना परिश्रम मत करो, क्योंकि—

तुम्हारे ऊपर स्तन जघन, केशपाश, एवं नयनों का विशाल भार है, उस पर से सखी भी मना कर रही है, तुम्हारा यह तीव्र सञ्चरण उतना कष्टकर न भी होता, यदि यह जलधारा पराभव का कारण नहीं होती ॥ ३० ॥

अपि च—

धीरन्धेहि पदे विधेहि न मदे मग्नं मरालीकुलं
प्रोत्कम्पाकुलितोरु किं कतयसे रम्भासु दम्भार्पणम्
क्षोभोरिक्षितपयोधरे किमधिकं धत्से गिरीन् गौरवे
किन्निश्वासमलीमसौष्ठि कुरुषे बिम्बाधरलम्बास्त्विषः ॥३१॥

प्रभावती—(तिर्यक्स्थित्वा) (सकोप तरलिकामीक्षते)

तरलिका—(स्मित्वा) अग्गदो भोदु महाभाओ । (अग्रतो भवतु महाभागः ।)

—

कुमारः—यदावेदयति भवती (इति परिक्रामति)

कुमारः—इत इतो भवती । इयमिय क्रीडापर्वत प्रासादरत्नसोपान-श्रेणी (इति सर्वे सोपानारोहण नाटयन्ति)

कुमार —इय हि—

संसिक्ता मृगमदकुङ्कुमोपलिप्ते

और—तुम धीरे धीरे पग रखो, अन्यथा ये मरालीगण (तुम्हे तेज चलती देखकर अपने को विजयी मानकर) मदमत्त हो उठेंगी, तुम्हारी जांघें कम्प से आकुल हो रही हैं इस प्रकार तुम कदली वृक्ष को अभिमानान्वित क्यों कर रही हो ? तुम्हारे सवेग सञ्चरण से तुम्हारे स्तन कम्पायमान हो रहे हैं, इस प्रकार तुम पर्वतों को क्यों गौरव प्रदान कर रही हो ? तुम्हारे ओठ निःश्वास से मलिन हो रहे हैं, और उसके चलने तुम बिम्बफल को कान्ति का आश्रय क्यों सिद्ध करने जा रही हो ॥ ३१ ॥

प्रभावती—(घूमकर) (क्रोधपूर्ण दृष्टि से तरलिका को देखती है)

तरलिका—(मुस्कुराकर) महाभाग, आगे आइये ।

कुमार—आपका जो आदेश हो । (चलता है)

कुमार—(प्रभावती से) प्रिये इधर से आओ । यही है क्रीडापर्वत-प्रासाद की रत्ननिर्मित सीढी । (सभी सीढी पर चढने का अभिनय करते हैं)

कुमार—यहा के पत्थर कस्तूरी एव कुङ्कुम से स्निग्ध होने के कारण पग-

सोपाने प्रतिपदपिच्छिला शिलाली।
एतस्यामभिनवपल्लवशलथाभ्यां
पद्भ्यां ते सुतनु सुदुष्करोऽधिरोहः ॥ ३२ ॥

प्रभावती—(पदान्तरे स्खलनन्नाटयति)

कुमार —अहो प्रमादः।

सोपानेऽस्मिन् पयोभिः प्रणयिनि पतितैः पिच्छिले विस्खलन्ती
मामालिङ्ग्य व्रजेति प्रियजन विधिना नाधुना वक्तुमीशे।
मत्पाणौ पाणिपाथोरुहमपि सरले सन्निधायार्पयन्ती
स्वैरं स्वैरं पदानि प्रगुणय जगतीयौवराज्यं स्मरस्य ॥ ३३ ॥

(इति प्रभावत्या करतलमामृशति)

प्रभावती—(सकोप हस्तमाच्छिद्य) (तरलिकामवलम्ब्य परिभ्रमति)

कुमार —(सवैलक्ष्यस्मितम् परिक्रम्य) अयमयं क्रीडापर्वतप्रासादः। तदत्र प्रविशाम। (इति सर्वे प्रवेशन्नाटयन्ति)

पग पर पिच्छिल हैं, अपने इन पल्लव-सुकुमार चरणों से तुम्हारे लिये इस सोपान परम्परा पर आरोहण करना कठिन है ॥ ३२ ॥

प्रभावती—(एक पग चलकर गिरने का अभिनय करती है)

कुमार—बहुत भारी भूल हो रही है।

तुम इस सोपान परम्परा पर—जो गिरे हुए जल से पिच्छिल है—गिर जाओगी, अतः मेरा आलिङ्गन करके चलो, इस तरह से पहले की तरह इस समय मैं कह नहीं सकता हूं, फिर भी तुम अपना हाथ मेरे हाथ में रखकर धीरे धीरे चलो, जिससे कामदेव के जगतीयौवराज्य का समर्थन हो ॥ ३३ ॥

(प्रभावती का हाथ पकड़ लेता है)

प्रभावती—(सकोप हाथ छीनकर) (तरलिका का अवलम्बन लेकर घमती है)

कुमार—(लज्जा तथा मुस्कुराहट के साथ चलकर) यही है क्रीडा-पर्वत प्रासाद। हम इसमें प्रवेश करें। (सभी प्रवेश करते हैं)

कुमारः—(अङ्गुल्या निर्दिशन्) अयि प्रियतमे,

वातायनेऽस्मिन्नासीना नवीनाम्भोधरानधः ।
विलोकय जलासार-सम्भारमयमम्बरम् ॥ ३४ ॥

प्रभावती—(अनादृत्यान्यतः समुपविशति)

कुमारः—(उपसृत्य) अयि प्रभावति,

साधारणैः परिजनैः किमुपासनीयं
तद् दूरतो निहितमासनमाश्रयामि ।
त्वत्सन्निधौ तरलिकैव कुतोऽपि किंवा
संवाहकश्चरणयोरनयोर्विशामि ॥ ३५ ॥

तरलिका—(सस्मितम्) आणवेदु एद कुमारस्स पिअसही । (आज्ञापयत्वेतत् कुमारस्य प्रियसखी ।)

प्रभावती—(कोपोत्तरल तरलिकामीक्षते)

तरलिका—(सकृतकक्रोधम्) (कुमारस्य पुरतो हस्त प्रसार्य) लब्भदि महाभाएण एत्थ ओआसो । (लभ्यते महाभागेनात्रावकाश ।)

कुमार—(अङ्गुलीद्वारा इशारा करते हुए) हे प्रियतमे, तुम इस खिडकी के सामने बैठकर नवीन मेघो के नीचे जलधार से भरे हुए इस आकाश-मण्डल को देखो ॥ ३४ ॥

प्रभावती—(अनादर करके दूसरी ओर बैठती है)

कुमार—(समीप जाकर) हे प्रभावती.—

साधारण परिजनों के बैठने के लिये डाला गया वह आसन मैं ग्रहण कर लूं, तुम्हारे पास तरलिका ही रहे। अथवा—(यदि अनुमति दो तो) तुम्हारे चरणो को दबाता हुआ मैं यही बैठ जाऊ ॥ ३५ ॥

तरलिका—(मुस्कुराकर) प्रियसखी कुमार को इसके लिये आज्ञा दे दो।

प्रभावती—(कोपपूर्वक तरलिका को देखती है)।

तरलिका—(बनावटी कोप के साथ) (कुमार की ओर हाथ फैलाकर) आपको यहां स्थान मिलता है।

कुमारः—(सापराधमिव) सखि तरलिके,

स्वप्नेऽपि सापराधेऽस्या निग्रहो मय्यनुग्रहः।
अप्रातिकूल्येनन्नु नहि मन्तुमहं क्षमः ॥ ३६ ॥

तरलिका—(जनान्तिकम्) सुदो णो क्खु सिविणअवुत्तन्तो कुमारेण। (प्रकाशम्) भट्टिदारिए तए ज्जेव अत्तणो जीविदादो वल्लही-कदुअ वड्ढाविओ जणो कहं अम्हाण वअणं पमाणीकरेदु तासअज्जेव पिअसहीं णिवारेदु। (श्रुतः न खलु स्वप्नवृत्तान्तः कुमारेण ? भर्तृदारिके त्वयैव आत्मनो जीवितात् वल्लभीकृत्य वर्द्धितो जनः कथमस्माकं वचनं प्रमाणी-करोतु तत् स्वयम् एव प्रियसखीं निवारयतु।)

प्रभावती—(अधमुखी तिष्ठति)

कुमार—यदि पुनरनेकशो निष्फलमपि स्वप्नदर्शनं दुष्फलोदर्कमिति तर्कयति भवती, तत्रापि

नान्तःपुरप्रविभयोदयमन्तरेण
प्रिया तव प्रहरणग्रहणं करिष्ये।

कुमार—(सापराधभाव से सहास) सखि तरलिके, यदि स्वप्न में भी मुझ से अपराध हो जाता था, तो मैं इसके द्वारा दिये गये दण्ड को अनुग्रह मानता रहा हूँ, किन्तु इस औदासीन्यपूर्ण अपराध को तो मैं मानने में भी अपने को असमर्थ पारहा हूँ ॥ ३६ ॥

तरलिका—(छिपाकर) क्या कुमार ने स्वप्नवृत्तान्त सुन लिया है ?) (प्रकट) राजकुमारि, जिसे तुमने अपने जीवन से भी अधिक प्रिय बनाकर बढ़ावा दे रखा है, भला वह हमारी बातों पर क्यों ध्यान दे ? अतः तुम स्वयं कुमार को रोको।

प्रभावती—(चुप रहती है)

कुमार—अनेक बार विफल होने वाले स्वप्नदर्शन को भी यदि तुम दुष्फलदायी मान रही हो, तो मैं तुमको वरदान देता हूँ कि जब तक अन्तःपुर पर कोई भय नहीं आ जाता है तब तक मैं तुम्हारे शिरास्रों पर भय नहीं

किञ्च त्वयानभिहितस्तमहं न हन्ता
किन्ताम्यसि त्वयि वयं वरमर्पयामः ॥ ३७ ॥

प्रभावती—(रोदिति)

तरलिका—(कुमार हस्तसंज्ञया व्याहरति)

कुमार—(शनैः समीपे समुपविश्य उत्तरीयाञ्चलेन नेत्रे प्रभावत्याः प्रमार्जन्)

प्रिये, प्रमादः कतरस्तवायं माने मनो येन मुधा न्यधायि।
अनेन लब्धप्रसरेण मुग्धे सीदन्ति सौजन्यधनास्तरुण्यः ॥ ३८ ॥

(तस्या कबरीभारमामृशन्)

यदि कथयसि कान्ते वारितान्तर्दुरन्तं
चिकुरनिकरमेनं तन्वि ते संवृणोमि।
उपरि विपरिकीर्णः कर्णपद्मावलम्बी
विकलयति किलायं कोमलामंसपालीम् ॥ ३९ ॥

प्रभावती—मा क्खु मा क्खु (इति तिर्यगवलोकयन्ती वारयति)

उठाऊँगा, और बिना तुम्हारे कहे मैं तुम्हारे पिता को नहीं मारूँगा, तुम क्यों वृथा उदास होती हो ॥ ३७ ॥

प्रभावती—(रोती है)

तरलिका—(कुमार को हाथ के इशारे से कुछ कहती है)

कुमार—(धीरे से समीप में बैठकर चादर की छोर से प्रभावती की आँखें पोंछता हुआ) प्रिये, यह कैसी गलती हुई कि तुमने अपने मन में व्यर्थ मान धारण कर लिया। इसी प्रकार के मानधारण करने से सुजन रमणियों को कष्ट उठाना पड़ता है ॥ ३८ ॥

(उसके केशपाश को सहलाता हुआ)

हे प्रिये, यदि तुम मानसिक कोप को सवृत करके मुझे आज्ञा प्रदान करो तो मैं तुम्हारे इन केशों को सँवार दूँ। इन केशों के कान पर फैले रहने से तुम्हारे कोमल कन्धों को तकलीफ हो रही है ॥ ३९ ॥

प्रभावती—नहीं नहीं। (टेढ़ी नजर से देखकर रोकती है)

कुमार —अयि कोपने, (मा खलु, मा खलु ।)

माने मनागपि मनो मलिनं विधाय
शीलोचितं सुमुखि चारु विचारयस्व ।
किन्नाम रोषपरुषान्तरता हिता ते
किंवा नितम्बिनि मयि प्रणयप्रसादः ॥ ४० ॥

अपि च—पश्य निरनुक्रोशे,

शोणे ते नयने निरीक्ष्य तरुणि त्रासाय मे सर्वतो
रक्ताम्भोजकुलं चलन्मधुकरव्याजाद्विषं वर्षति ।
व्याकीर्णां कबरीमथाम्बरतले श्यामाद्रि वीक्ष्याधुना
गर्जैस्तर्जनमाचरन्ति बहुधा मय्यम्बुदा दुर्मदाः । ४१ ॥

अथ च—हे चण्डि,

यदि निरतिनिदानस्त्याज्य एवैष मान
किमिति बत विलम्बालम्बिनी चित्तवृत्तिः ।

कुमार—हे कोपपरायणे

मान से अपने मन को तुमने मलिन बना लिया है फिर भी अपने शील के अनुकूल ठीक से विचार तो करो कि क्या तुम्हारे लिए कोप से हृदय को कलुषित रखना लाभप्रद है या मुझ पर स्नेहपूर्वक प्रसन्नता प्रकट करना ? ॥ ४० ॥

हे निर्दये, देखो तो—

तुम्हारे नयनों को (कोप में) रक्तवर्ण देखकर मुझे भयभीत करने के लिये रक्तकमल-समूह चञ्चल भ्रमर के व्याज से विष की वर्षा कर रहे हैं, और तुम्हारे केशपाश को आकाश में बिखरा हुआ देखकर ये मेघ मुझे डराने के उद्देश्य से बारबार गर्जन कर रहे हैं ॥ ४१ ।

हे चण्डि

तुम्हारा यह कोप नितान्त अकारण है अतः यह त्याज्य ही है, फिर इसे छोड़ने में चित्तवृत्ति विलम्ब का अवलम्बन क्यों कर रही है ? मदमत्त मयूर

मदमधुरमयूरध्वानसंबान धन्य-
ध्वनितजलदजाल कोऽपि कालः प्रयाति ॥ ४२ ॥

(तरलिका प्रति सोपालम्भम्) सखि तरलिके, त्वमपि किन्नास्मत्कृते प्रसादयसि प्रियसखीम ?

तरलिका—(सासूयमिव) अइ महामाणग्गहिले, कि त्ति एत्तिअ विक्खुहिअ पक्खवादा पुणो पुणो उव्वेजेसि महाभाअ ! पेक्ख, अणुणअ-सुहक्र रिविआ करेइ माण मण सिणीहइए। अणुणीदा अवि ण पसण्णा ता कलङ्किदो पणओ । (अयि महामानग्रहिले किमित्येतावत् विक्षुभित-पक्षपाता पुन पुन उद्वेजयसि महाभागम् । पश्य, अनुनयसुखक क्षिप्त्वा करोति मान मन स्निह्यति । अनुनीता अपि न प्रसन्नास्ततकलङ्कित । प्रणय)।

प्रभावती—(सकोपम्) तुमम्पि सपद मह दोग्गह दुस्सिआए उअरि प्पहरसि । (त्वमपि साम्प्रतं मम दुर्ग्रहदूषिताया उपरि प्रहरसि)।

कुमार—मा मैवमस्मदपराधपक्ष एव निक्षिप्यता तरलिकाव्याहारोऽपि । न पुनरय तनुरप्यतदपराधहेतु ।

के शब्द को प्रवृत्त करने के कारण धन्यवाद के योग्य यह कराल वर्षाकाल उपस्थित है ॥ ४२ ॥

(तरलिका के प्रति, उलाहने स्वर मे) सखि, तरलिके तुम क्यो नही हमारी तरफ से प्रिय सखी को मनाती हो ? ।

तरलिका—(असूया के साथ) हे महामानिनि क्यो इस प्रकार से बिगड कर महाभागको पुन पुन उद्विग्न कर रही हो ? देखो अनुनय सुख का परित्याग करके मान किया जाता है परन्तु मानसिक स्नेह बना रहता है। अनुनय करने पर भी जो मानवती प्रसन्नता नही प्रकट करती है वह प्रणय को कलङ्क लगाती है ॥

प्रभावती—(क्रोधपूर्वक) तुम भी मुझ दुराग्रहदूषिता पर प्रहार कर रही हो ?

कुमार—नही नही, तरलिका के कथन को भी हमारे अपराध के पक्ष मे न डाला जाय। इसमें इसका थोडा भी अपराध नही है।

प्रभावती—एवण्णेदम् । अज्ज उत्त-गोवइआ ज्जेव एसा एआरिसाइं वाह-रदि । (एवं न्विदम्, आर्यपुत्र-गोपिता एव एषा एतादृशानि व्याहरति)।

तरलिका—(विहसन्ती) सहि सहिस्सं दाव एदं तुम उण अम्ह अहि-क्खेवक्खरेण विकरेहि अत्तणो वल्लहेण सलावन्ति । (सखि सहिष्ये ताव-देतत् , त्व पुनरस्मान् अधिक्षेपाक्षरेण विकिर आत्मनो वल्लभेनालपन्ती)।

प्रभावती—(स्मितमधुरमधोमुखी तिष्ठति)।

कुमार—(सानन्द प्रभावत्याः पाणौ गृहीत्वा) प्रिये नामुना वातायनेन सुखावलोकनीया प्रावृषो लक्ष्मी , तदुत्तुङ्गामिमां वेदिकामारुह्य वैदूर्यवाता-यनेनावलोकयामः ।

(इत्युत्थाय सर्वे वेदिकारोहणं नाटयन्ति)

कुमारः—(समन्तादवलोक्य) कथमुपशान्तालोकः सर्वतो भूलोकः ! तथाहि—

आत्मानमासारमयेऽन्तरीक्षे दुर्वारनिर्वापणमीक्षमाणः ।
पूर्वाचलप्रान्तगुहागृहान्तः प्रायः परावृत्य रविः प्रविष्टः ॥ ४३ ॥

प्रभावती—यही बात है कि आपके द्वारा रक्षिता होकर ही यह ऐसी बातें कहती है ।

तरलिका—(हँसती हुई) सखि, मैं यह सहलूंगी, तुम मुझ पर तिरस्कार की वर्षा कर लो, परन्तु अपने प्रियतम से बातें करती हुई ।

प्रभावती—(मुस्कुराकर मुंह नीचा कर लेती है)

कुमार—(सानन्द, प्रभावती का हाथ पकड कर) प्रिये, इस खिडकी से वर्षाऋतु की शोभा अच्छी तरह नहीं दीखती है, अतः इस ऊंची वेदी पर चढ़ कर हम लोग इस वैदूर्यमणि की खिडकी से वर्षा की शोभा का अवलोकन करें ।

(उठकर सभी वेदी पर चढने का अभिनय करते हैं)

कुमार—(चारो ओर देखकर) पृथ्वी पर सभी ओर प्रकाश शान्त हो रहा है । क्योंकि—जब सूर्य ने देख लिया कि आकाश की जलवर्षा से मुझे बुत जाना पडेगा ही, तब वह पूर्वाचल प्रान्तवर्ती गुफारूप घर के भीतर प्रवेश कर गये ॥ ४३ ॥

अहो महोन्नतारम्भोऽयमाम्भोघरोऽन्धकारः । तथाहि—

अम्भःसम्भारभीत्या सवितरि निभृतं वैरिणि व्योमचक्रा-
न्निष्क्रान्ते गर्जितोर्जस्वनविजयबलात्कार ढक्कारवस्य ।
केकावेशापदेशाद्द्विजवरवदनोद्गीर्ण-पुण्याह-धन्यं
धारासारैरुदीते तिमिरनरपतेरेष राज्याभिषेकः ॥ ४४ ॥

प्रभावती—(विलोक्य सकौतुकम्) अज्जउत्त, णिब्भिज्जन्त-कज्जल-महीहर-सिहरमणोहरे पओहरे पुणो पुणो पज्जलिअविप्फुरन्ती विज्जुआ झत्ति आहरइ हिअआइं । (आर्यपुत्र, निभिद्यमान-कज्जलमहीधरशिखरमनोहरे पयोधरे पुनः पुनः प्रज्वलितविस्फुरन्ती विद्युत् झटित्याहरति हृदयानि ।)

कुमारः—(सोपालम्भम्)

हरिद्राद्युत्याङ्गि स्मरसमरताडण्यतरला
मदङ्के चेत् पङ्केरुहमुखि रहस्त्वं विहरसि ।
मनागप्युन्माद्यन्मुदिर-परिरब्धा कथमसौ
तदा सौदामिन्या हरति हृदयानन्दिनि मनः ॥ ४५ ॥

मेघ का यह अन्धकार बडी उन्नति करता जा रहा है,

जलवर्षा से डरकर सूर्यरूप वैरी चुपचाप जब आकाशरूप राज्य से भाग खड़े हुए तब वहाँ अन्धकार-नामक विजयी नृप का राज्याभिषेक हो रहा है, मेघ का गर्जन विजय की सूचना देने वाला बाजा है, मयूर की वाणी ब्राह्मणों के मुख से निकलने वाले पुण्याह शब्द हैं, और जल की धारा जो बरस रही है वह अभिषेक-स्नपन हो रहा है ॥ ४४ ॥

प्रभावती—(देखकर कौतुक से) आर्यपुत्र, टूट कर गिरते हुए कज्जल-पर्वत के शिखरों के समान प्रतीत होने वाले मेघ में पुनः पुनः प्रज्वलित होकर चमकने वाली विद्युल्लता हृदय को आकृष्ट करती है ।

कुमार—(उलाहने के स्वर में)

हे हरिद्रावर्ण अङ्ग धारण करने वाली सुन्दरी, काम-युद्ध में यौवन की चञ्चलता प्रकट करने वाली तुम यदि एकान्त में मेरी गोद में विहार करने लगती हो, तब उठते हुए मेघ से आलिङ्गित वह विद्युल्लता किसी प्रकार भी हृदय को आकृष्ट नहीं करती है ॥ ४५ ॥

प्रभावती—(सलज्ज स्मितम्) अज्जउत्त, किणिमित्त विज्जुआ झत्ति स्सघडिअ विहडेइ। (आर्यपुत्र, किं निमित्तं विद्युत् झटिति सघटय विघटति।)

कुमार—(सहास प्रभावतीं परिष्वज्य)

मदुरसङ्गासङ्गस्फुरितरुचिमालोक्य भवतीं
हसन्तीं हारिद्रद्रवनवनदीमञ्जनगिरेः।
घनक्रोडक्रीडातरलमियमात्मीयमफलं
वपुर्विद्युद्वल्ली विघटयति भूयो घटयति ॥ ४६ ॥

तरलिका—(सोत्प्रेक्षम्) अहं उण एव्व जाणेमि—(अहं पुनरेव जाने)

दट्ठुण चिउरणिअरं सहीअ दूरादि लम्बिअपइण्णं।
तल्लिअमिसा जलआणं तडित्ति विहडन्ति हिअआइं ॥ ४७ ॥
(दृष्टवा चिकुरनिकरं सख्या दूराल्लम्बितप्रभिन्नम्।
तडिन्मिषाज्जलदाना तडिति विघटन्ति हृदयानि ॥ ४७ ॥)

प्रभावती—तरलिए, तुमम्पि सपदं उपेक्खककवितुणे पविट्ठिआसि। (तरलिके, त्वमपि साम्प्रतमुत्प्रेक्षाकवित्वे प्रविष्टासि।)

कुमार—साधु तरलिके, साधु, एवमेतत्।

प्रभावती—(लज्जा तथा हँसी के साथ) आर्यपुत्र, क्यों यह विद्युल्लता मेघ से लिपट कर फिर अलग हो जाती है ?

कुमार—(हँसते हुए प्रभावती का आलिङ्गन करके) कज्जल पर्वत पर अवस्थित हरिद्रा रस की नदी की तरह जब तुम मेरी गोद में चमकती रहती हो, तब हसती हुई तुमको देख कर विद्युल्लता मेघ को गोद में क्रीडा करते हुए अपने शरीर को विफल मान कर बार बार उसे मेघ से अलग करती तथा संयुक्त करती है ॥ ४६ ॥

तरलिका—(उत्प्रेक्षा करती हुई) मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है—

खुले हुए तथा लम्बमान तुम्हारे इन केशपाशों को देखकर मेघों के हृदय तडतड करके फट पडते हैं वही यह विद्युल्लतायें होती हैं ॥ ४७ ॥

प्रभावती—तरलिके तुम भी अब उत्प्रेक्षा पूर्ण कविता करने लगी हो ?

कुमार—ठीक कहती हो तरलिके, यही बात है।

एतस्याः कबरीभिरम्बरतलव्यालम्बिनाभिर्बला-
दाक्रम्यापहृतासु दुर्भगतराः सम्पत्सु पाथोधराः।
तत्तालस्तनितार्दनादविधुराण्यश्रूणि भूयस्तरा-
ण्यासारान् विसृजन्ति विस्फुरिततडिद्व्याजस्फुटद्वक्षसः ॥४८॥

प्रभावती—(अन्यतोऽवलोक्य) निरन्तरासारसम्भारसंभरिज्जन्त-सरोवरन्तर निमज्जन्त-पङ्कन्तरुड्डीण-भमरभङ्कार-सङ्कलिद-कमलिनी-दलन्ताणिज्जन्त-सलिलसद्द सम्मद्द-बहुलो पलोइअदु कमलवणो। (निरन्तरासारसभारसम्भ्रियमाणसरोवरान्तर्निमज्जत्पङ्कजान्तरुद्भिन्न भ्रमरझंकार-सङ्कुलित-कमलिनीदलताड्यमान सलिलशब्द सम्मर्द-बहुलं प्रलोक्यतां कमलवनम्)।

कुमारः—(विहस्य) इदमित्थमवलोकयामि।

त्वन्नेत्रेण जितान्यगाधसलिले मज्जन्ति लज्जाभरे-
रुद्भ्राम्यद्भ्रमराणि सम्प्रति सरोजानीति जानीमहे।
धारासारपराहताकुलदलव्याजेन पाथोजिनी
सोरस्ताडमहो विहङ्गविरुतैः स्नेहोचितं शोचति ॥ ४९ ॥

इसके खुले हुए केशों ने आकाश में लटक कर मेघों की सारी शोभा-सम्पत्ति बलपूर्वक आक्रमण करके छीन ली है, मेघ नितान्त दरिद्र हो रहे हैं, इसीलिये बिजली के व्याज से उनके हृदय विदीर्ण हो रहे हैं, और गर्जन रूप आर्त्त स्वर के साथ जलरूप अश्रुप्रवाह जारी है ॥ ४८ ॥

प्रभावती—(दूसरी ओर देखकर) निरन्तर जलवर्षा के कारण सरोवर पूर्ण होता जा रहा है, उसमें कमल डूबने जा रहे हैं, डूबते हुए कमलों से बाहर निकलने वाले भ्रमरगण झंकार कर रहे हैं कमलिनी के पत्तों से ताडित जल के शब्द के साथ मिलकर भ्रमर के झंकार-समर्द उठ रहे हैं, इस प्रकार से यह सरोवर देखने के योग्य हो रहा है इसे देखिये।

कुमार—(मुस्कुराकर) मैं तो इसे इस तरह देखता हूँ। तुम्हारे नयनों से पराजित कमलगण से अगाध जल में डूब रहे हैं, निराश्रय भ्रमर चक्कर काट रहे हैं, धारावृष्टि से ताडित पत्र के व्याज से कमलिनी छाती पीटकर रो रही है, तथा पक्षियों के कलरव द्वारा अपना शोक व्यक्त करती जा रही है ॥ ४९ ॥

(अन्यतोऽवलोक्य)

इतो वातव्रातव्यतिकर तिर:कम्पितशिरः-
स्फुरज्झंझाकारस्वर-मुखर कान्तार तरव. ।
प्रदेशा. प्रोत्तुङ्गक्षितिधर विनिर्गत्वरझर-
प्रपातप्रध्वंसोपलशकल विभ्रस्त विहगाः ॥ ५० ॥

अपि च—

पवनै प्रकम्पितवनैर्वलिता
विकसत्कदम्बशत संवलिता. ।
घनशैलशाद्वलवलत्सरित
शबलीभवन्ति हरित परित· ॥ ५१ ॥

(श्रुतिसुखमभिनीय)

ताण्डवोन्मद मयूर मण्डली मण्डलीकृतशिखण्डमण्डना ।
नीलशाद्वलविशालमेखलोन्मेषलोलपवना वनावली ॥ ५२ ॥

प्रभावती—अज्जउत्त, गज्जन्त निविल जलअर लोअनोहिल्लत्तणु-त्ताण लोअणसुह-समुण्णामिअगीवमुग्गिण्ण-केकाणुकार-विरुअन्तरम्मह-

---

(दूसरी ओर देखकर)

हवा के सम्पर्क से वृक्षो के ऊपर के हिस्से काप रहे हैं, झंझावात के स्वर से वे मुखर भी हो रहे हैं, ऊचे पर्वतों से निकलने वाले निर्झर के प्रपात से प्रस्तर-खण्डो पर उत्पन्न होने वाली ध्वनि से पक्षीगण भयभीत हो रहे हैं ॥ ५० ॥

हवा से हिलते हुए वनो से, विकसित शतशतकदम्ब तरुओं से, और हरे भरे पर्वत पर प्रवहमान नदियो से दिशायें परिपूर्ण हो रही हैं ॥ ५१ ॥

(श्रवणसुख का अभिनय करके)

वनावली मे ताण्डवपरायण उन्मदमयूर अपने पुच्छ को मण्डलाकार बनाये हुए हैं, और हरे घासफूस से भरी भूमिवाले स्थलपर हवा खेल रही है ॥ ५२ ॥

प्रभावती—आर्यपुत्र, गरजते हुए घने मेघो को देखकर लोचन सुख से

वलकार-हक्काविअगोवीमण्डलन्तर-तण्डविणा सिहण्डिणा मण्डलीकदो एस कलावो विकिण्ण वल्लोअदि । (आर्यपुत्र, गर्जन्तिविडजलधर-लोकनकमितोत्तानलोचनसुख समुन्नमितग्रीवमुद्‌गीर्णं केकानुकार विहृतान्तरं महाबलत्कारकारित गोपीमण्डलान्तर ताण्डविना शिखण्डिना मण्डलीकृत एष कलाप विकीर्णोऽवलोक्यते ।)

कुमारः—(सोपेक्षम्)

तव नजर वरीभिर्ग्यक्कृताऽनेकवारं
कमलमुखिकलाप कःकिनाङ्के न वर्ण्यं ।

अथवा वर्णनीय एवायम्—

गुणव तनवदीदृगविप्रतीपप्रयुक्तं
परिभवमपि मन्ये पुण्यभाजो भजन्ति ॥ ५३ ॥

(प्रविश्य)

परभृतिका—(प्रणम्य) भट्टिदारिए, चन्दवदी गुणवदीओ पणमिअ विण्णवेन्ति, अज्ज अम्हाण केलीहर कुमार पज्जुण्ण सणाहाए भट्टिदारिआए आअच्छिअ ज किम्पि दोहलअ अहिलहीअदि तस्सि ज्जेव करीअदुप्पसादो त्ति । (भर्तृदारिके, चन्द्रवतीगुणवत्यौ प्रणम्य विज्ञापयतः,

---

गर्दन उठाये केका शब्द करते हुए पुकारनवाली गायियो के बीच ताण्डवनृत्य करते हुए मयूरगण के मण्डलाकार पुच्छ बिखरे दीख रहे हैं ॥

कुमार—(उपेक्षा से) मयूर के जिन कलापो को तुम्हारे केशपाश ने अनेक बार पराजित किया है उनका वणन कौन करे ? अथवा—इनका वर्णन होना ही चाहिये, गुणाधान की तरह ऐसे श्रेष्ठ विरोधिजन द्वारा प्रस्तुत पराभव प्राप्त करना भी पुण्य का फल होता है ॥ ५३ ॥

(प्रवेश करके)

परभृतिका—राजकुमारी, चन्द्रवती तथा गुणवती ने प्रणामपूर्वक निवेदन किया है कि आज हमारे केलिगृह मे कुमार प्रद्युम्न के साथ आकर प्रभावती

बद्यास्माकं केलीगृहं कुमारप्रद्युम्नसहायया भर्तृदारिकया आगत्य यद् किमपि दोहदकमभिलष्यते तस्मिन्नेव क्रियतां प्रसाद इति ।)

प्रभावती—(लज्जते)

तरलिका—भटिटदारिए, आमन्तिदासि बन्धवाचारविहिणा बहिणिआहिं । (भर्तृदारिके, आमन्त्रितासि बान्धवाचारविधिना भगिनीभ्याम् ।)

परभृतिका—ण केवलं आमन्तिदा, किं उण आआरिदा वि । (न केवलमामन्त्रिता किं पुनराकारितापि ।)

कुमार—सर्वथानुल्लङ्घनीयोऽय भगिन्योरभिलाष. ।

प्रभावती—(सलज्जस्मितम्) परहुदिए, ऋज्जुअ ज्जेव किं ण भणासि सगन्ति दोहलअं बहिणि आओत्ति । (परभृतिके, ऋजुकमेव किं भणसि यावतो दोहदकं भगिन्याविति ।)

परभृतिका—(स्मित्वा) एदं भट्टिदारिआए भणिदव्वं । (एतद् भर्तृदारिकया भणितव्यम् ।)

कुमारः—(सानन्दम्) उभयमपि एतदभिनन्दनीयं यदुकुलस्य । तदल विलम्बेन । संप्रत्येव संपादयामः परभृतिकाप्रार्थ्यमानमर्थं यदयमुपशान्तो घनासारः । तथाहि—

जो कुछ दोहद अभीष्ट हो उसे स्वीकार करें ।

प्रभावती—(लज्जित हो जाती है)

तरलिका—राजकुमारी, बान्धवाचार के अनुसार बहनो ने बुलाया है ।

परभृतिका—केवल बुलाया ही नहीं है अनुरोध भी किया है ।

कुमार—बहनों का यह अनुरोध सर्वथा अनुल्लङ्घनीय है ।

प्रभावती—(सलज्ज भाव से मुस्कुराकर) परभृतिके, सीधे यह क्यो न कहती हो कि बहनें दोहद की इच्छा करती हैं ।

परभृतिका—(हँसकर) यह तो आप कहें ।

कुमार—(सानन्द) दोनों बातें यदुकुल के लिये प्रसन्नता की हैं । विलम्ब करने की आवश्यकता नहीं है । परभृतिका द्वारा प्रार्थित वस्तु का हम अभी सम्पादन करें । वर्षा भी रुक गई है ।

शमितसलिलबिन्दुबाणवर्षः
स्खलिततलित्करवालदुर्भगाशः ।
रविकिरणकृपाणपाट्यमानः
प्रतिभटवत्परिभूयते पयोदः ॥ ५४ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

केलीशैलो नाम षष्ठोऽङ्क. ।

जलबिन्दु रूप बाण की वर्षा शान्त है, बिजलीरूप तलवारो का दिशाओ मे चमकना बन्द है, सूर्य की किरणरूप कृपाण से विदारित शत्रुस्वरूप मेघ पराभूत हो रहा है ॥

(सभी जाते हैं)

केलीशैल नामक छठा अङ्क समाप्त

सप्तमोङ्कः

[ततः प्रविशति दैत्यपुरोधा]

दैत्यपुरोधा —(आकाशे कर्णं दत्त्वा) किं ब्रवीषि समन्ततः समासन्ना सुरसामन्तवर्गः स्वर्गादिसर्वलोकविजययात्रा मुहूर्त्तमङ्गलेभ्यो भवन्तमपेक्षते परमेश्वर इति। (सवैचित्र्यम्) कथमुल्लङ्घितो देवेन भगवतो दाक्षायणीभर्त्तुरादेशः ? तद्गच्छ, विज्ञापय महाराज भयमहमागत इति।

(परिक्रामन्, सचिन्तोद्वेगम्)

यस्यैताः श्रुतयश्चरन्त्यनुचरीभूता किमेनावता
यस्याज्ञां चिरमाचरिष्णुरकरोद्विष्णुस्तनुं वामनीम्।
तद्वाग्ब्रह्म विलङ्घयन् जनयितुर्जम्भद्विषं विद्विषन्
देवः किन्न बिभेति शान्तमथवा ब्राह्मो न जिह्मोवरः ॥ १ ॥

[दैत्य पुरोहित का प्रवेश]

दैत्यपुरोहित—(आकाश की ओर कान लगाकर) क्या कह रहे हो, समस्त असुर योद्धागण के साथ हमारे महाराज स्वर्गादि सकल लोक की यात्रा के समय मङ्गल अनुष्ठान के लिये हमारी अपेक्षा कर रहे हैं। (आश्चर्य के साथ) हमारे महाराज ने भगवान् मरीचि के आदेश का कैसे उल्लङ्घन कर दिया ? अच्छा चलो, महाराज स निवेदन करो कि मैं अभी आरहा हूँ।

(चलता हुआ चिन्ता तथा उद्वेग के साथ)

जिस भगवान् मरीचि के आगे श्रुतियाँ दासी बनी रहती है, इतना ही नहीं, जिन की आज्ञा के पालन मे अनुरक्त विष्णु ने वामनरूप धारण किया, उन्ही पितृदेव के वचन का उल्लङ्घन कर रहे हैं। हमारे महाराज इन्द्र के शत्रु बनकर, फिर भी उन्हे अपने पूज्य पितृदेव की आज्ञा टालने मे भय नही हो रहा है, अथवा ब्रह्मा का वरदान मिथ्या नहीं हो सकता है ॥ १ ॥

(पदान्तरे दुर्निमित्तान्यनुभूय) अहो महोत्पातानामुपनिपातः । तत्कि-मेतत् ? अथवा किमन्यत्, पर्यवसितप्रायाः प्रायशो दैत्यकुलविभूतयः । (सखेदोपालम्भम्)

हा धातः कतमस्तवैष विषमः स्वाङ्गीकृते व्युत्क्रमः ?
तावानद्य तिरोहितः कथमभूद्भूतेषु भीतेर्भरः ।
ये बिन्दूनपि वारिणो न विकिरन्त्याज्ञामृते भूपते
स्तेऽमी रेणुघनानसृग्द्रवकणान्वर्षन्ति पाथोधराः ॥ २ ॥

अपि च—

यानेव क्षणमीहते क्षितिपतिर्दूरादनन्यस्पृश-
स्तानेवापनयन्ति ये परिमलानावासभूमीरुहाम् ।
क्षिप्तोत्पातिपताकमाकुलचलोद्भग्नाभिरामद्रुमं
तेऽमी हन्त समीरणाः प्रविकिरन्त्युच्चैस्तरां शर्कराः ॥३॥

किञ्च—

गातुं नाप्सरसां गणोऽपि लभते यत्प्राङ्गणोपाङ्गनं
घोरास्तत्र शिवा निराकुलमिवाक्रन्दन्त्यमन्दस्वराः ।

(एक पग रखते ही दुर्निमित्त का अनुभव कर के) अहो, महान् उत्पात हो रहे हैं । यह क्या है ? अथवा और क्या हो सकता है दैत्यकुल की समृद्धि समाप्त सी हो रही है । (खेद एव उलाहने से भरे स्वर मे)

हा ब्रह्मन्, आपके निर्माण मे यह भयङ्कर व्युत्क्रम कैसे हो रहा है ? समस्त प्राणियो मे वर्तमान भय का साम्राज्य कैसे लुप्त हो गया ? जो मेघ हमारे महाराज की आज्ञा के बिना जलबिन्दु की वर्षा भी नही करते थे, वही मेघ अब धूल भरे रक्तकण की वर्षा करने लगे हैं ॥ २ ॥

और – हमारे महाराज किसी दूसरे द्वारा अस्पृष्ट जिन सुगन्धो की इच्छा करते थे ये वायु उन्ही सुगन्धो को गृहसमीपवर्ती उद्यान से ले आकर उपस्थित करते रहते थे, वही वायु आज ध्वजो को गिरा रहे हैं, रमणीय उद्यानवृक्षों को तोड रहे हैं और जोरों से कंकड की वर्षा सी कर रहे हैं ॥ ३ ॥

जिनके प्राङ्गण के पास अप्सरायें भी गीत गाने के लिये कठिनता से स्थान प्राप्त करती रही हैं वहीं पर आज यह भयङ्कर सियारिने मौज में उच्चस्वर

मध्याह्नेपि खराः करा न तरणेर्यत्रापतन्मन्दिरे
गृद्ध्रा यत्ररुवं पतन्ति परुषं तत्रोद्गिरन्तो गिरः ॥ ४ ॥

अपरञ्चाप्रसक्तपुरुषपरिचयानां कुत्रचिदत्रैव पुरे पुत्रोत्पत्तिः कुमारीणामिति बहुलीभूतं कौलीनमुत्पातपक्ष एव निक्षिपामि। सोऽयमस्माकं स्वस्त्ययनसमयो ब्राह्मणानाम्। (विचिन्त्य) धिक्कष्टम्,

मङ्गलार्थमुपाहूतः कर्त्तुमिच्छामि शान्तिकम्।
कारयत्यन्यदन्यस्मिन् विधेये विधुरो विधिः ॥ ५ ॥

(परिक्रम्य, समन्तादवलोक्य) कःकोत्र राजभृत्येषु, समाहूय सद्ब्राह्मणानुपक्रम्यतां शान्तिको विधिः।

[नेपथ्ये]

हन्त, कोऽयं हत विधेरुपक्रम ?
पुरोधा—(आकर्ण्य, सक्रोधम्) आः, कोऽय दुर्दुरूटोऽस्मान्निषेधति ?

से चिल्ला रही हैं, जिन के मन्दिर पर दोपहर को भी सूर्य की तीव्र किरणें नही पडती थीं, उन्ही मन्दिरो पर आज भयङ्कर शब्द करने वाले गृद्ध्र गिर रहे हैं ॥ ४ ॥

और मैं पुरुष परिचय के बिना ही इस अन्त पुर मे कुमारी कन्याओ के लडके पैदा हुए हैं। इस बात को भी एक प्रकार का उत्पात ही मानता हूँ। यह अपवाद चारो ओर फैल भी गया है। अत· हम ब्राह्मणों के लिये यह स्वस्त्ययन करने का समय है। (सोचकर) हाय, कष्ट की बात है।

मङ्गल करने के लिये बुलाया गया मैं शान्तिकर्म करना चाहता हूँ, परन्तु विरुद्ध भाग्य मुझसे दूसरा ही कार्य करवा लेता है ॥ ५ ॥

(चलकर चारो ओर दृष्टि डाल कर) अरे यहाँ कौन राजभृत्य है ? सद्ब्राह्मणो को बुलाकर शान्तिकर्म प्रारम्भ करने को कहो।

[नेपथ्य मे]

हाय, विधाता का यह कैसा विधान है ?
पुरोधा—(सुनकर क्रोध भरे स्वर मे) अरे यह कौन बदमाश हम

(विलोक्य) किं कुतोऽपि कारणात् कञ्चुकी वात्स्यायनो विघातमुपालभते, तदिदमेतन्मुखेन वेधसैवप्रतिषिद्धम् ।

(प्रविश्य)

कञ्चुकी—कोऽयमित्याद्युक्त्वा वैचित्य नाटयति ।

पुरोधा —(उपसृत्य) वात्स्यायन, कोऽयमद्यतनस्ते विषादातिरेक ?

कञ्चुकी—(क्षण स्थित्वा, नि श्वस्य) कथयामि पुरोधसे, परन्त्वनाख्येयमिदमर्वाग्दैवदुर्विलसितेभ्य ।

पुरोधा —श्रावय ।

कञ्चुकी—एवमस्तु । अद्य महाराजेन कन्यकाभवनावलोकनवर्त्मना विलोचनप्रसादप्रासादवातायनेनाकस्मादेकस्मिन् केलीशैलसन्निवेशे तरलिकापरभृतिकाभ्यामन्त पुरपरिचारिकाभ्यामभ्यासादितकुतूहला कलालापिन कोमलालका केपि बालका त्रयो वयोविशेषेण प्रभा-

---

लोगो को मना कर रहा है । (देख कर) किसी कारणवश कञ्चुकी वात्स्यायन ब्रह्मा को कोस रहा है मुझे लगता है कि इसके मुख से ब्रह्मा ही निषेध कर रहे हैं ।

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी— यह कौन इत्यादि कह कर घबडाहट का अभिनय करता है ।

पुरोधा—(समीप जाकर) वात्स्यायन आज तुम इतने खिन्न क्यों हो रहे हो ?

कञ्चुकी—(थोडा रुक कर, सास छोड कर) कह देता हूँ पुरोहित जी से, परन्तु दुर्दैव के द्वारा अनर्थो के सम्पन्न होने से पूर्व यह वक्तव्य नहीं है ।

पुरोधा—सुनाओ ।

कञ्चुकी—अस्तु । आज महाराज वज्रनाभ ने कन्यान्त पुर देखने के क्रम मे आँखों को प्रसन्न करने वाली अन्त पुर की खिडकियों से अकस्मात् एक क्रीडापर्वत पर अन्त पुरदासी तरलिका और परभृतिका के द्वारा कुतूहल में डाले जाते हुए मधुर भाषी घुघराले बालों वाले समान अवस्था तथा सौंदर्य वाले तीन लडके स्पष्ट भाव से देख लिये । उस समय मैं भी उन

परिवेपेण च स्फुरन्तः स्फुटतरं निरीक्षिताः। ततश्चाहमपि पश्चादासन्न एवासम्। ततश्च कौतुकाश्चर्यरोषपर्यस्तलोचनः परावृत्त्य यावदन्तनिवेशकानाह्वयति तावदहमतिभीतस्ततः कथंचिदपसृतोऽस्मि।

पुरोधाः—(सविस्मयम्) हुँ, भयस्थानमेवैतदन्त पुराधिकारिणाम्। (विचिन्त्य) अथवा न केवलं भवतामेव भयस्थानमेतत् किन्तु विश्वेषामेव देवद्रोहिणां यदनेन दानवेन्द्रस्य दूरारोहिणा दुरहङ्कारेण किन्न करणीयम्।

कञ्चुकी—आर्य, अपरिचितपरिग्रहेणेत्यपि वक्तव्यम्।

पुरोधाः—हुँ, परिणतप्रायैव प्रायशः पौरुहूतीनीतिः। (प्रविश्यापटीक्षेपेण) (कुब्जकः आत्मनः कर्णनासिके स्पृशन् कञ्चुकिनमुपेत्य) अज्ज जीआविआ सव्वे वि तुम्हे अम्हेहिं। (अद्य जीविताः सर्वेऽपि यूयमस्माभिः।)

कञ्चुकी—कथमिव ?

कुब्जकः—रोस परव्वसेन राइणा वावादिदं विनिदिठ्ठेसु अन्ते

के समीप ही था। इसके बाद महाराज की आखो मे आश्चर्य, क्रोध एवं कुतूहल भर आये, उन्होंने तत्काल लौट कर द्वारपालो को बुला भेजा, मैं अतिभीत हो कर वहां से भाग खड़ा हुआ।

पुरोधा—(विस्मय के साथ) हु, अन्त.पुराधिकारियो के लिये तो यह भय का स्थान है ही। अथवा—केवल आप लोगो के लिये ही यह भय का स्थान नही है, यह समस्त असुरो के लिये भय का स्थान है क्योंकि दानवेन्द्र के बढे हुए अहङ्कार से क्या न हो जायगा ?

कञ्चुकी—आर्य, यह भी कहना चाहिये कि महाराज को विवाह की बात का ज्ञान नही है। यह भी क्या न कर बैठेगा।

पुरोधा—हुं। प्रायः इन्द्र की नीति सफल हो गई। (आकर) (कुब्जक अपने नाक कान छूता हुआ कञ्चुकी के पास पहुँचकर) आर्य, आज मैने तुम सभी लोगो को जिला लिया।

कञ्चुकी—कैसे ?

कुब्जक—क्रोधवशीभूत महाराज ने समस्त अन्तःपुराधिकारियो के वध

उराहिआरिआ पुरिसेसु वेवमाणेण मए पासपरिवत्तिणा हुविअ विण्णविदं । (रोषपरवशेन राज्ञा व्यापादयितु विनिर्दिष्टेष्वन्त पुराधिकारिपुरुषेषु वेपमानेन मया पार्श्ववर्त्तिना भूत्वा विज्ञापितम् ।)

कञ्चुकी—कथमिव ?

कुब्जकः—एव्व (इति कर्णे कथयति) (एवम् ।)

कञ्चुकी—ततः किं व्यापारो वज्रनाभः ?

कुब्जकः—खणन्तरे जाणिदव्व । (क्षणान्तरे ज्ञातव्यम् ।)

कञ्चुकी—गत्वा ज्ञायताम् ।

कुब्जकः—एव्व (इति निष्क्रान्त) (एवम् ।)

कञ्चुकी—(सावेगम्)

विमुद्रयन्तो विपदां विदूराद्द्वाराणि मुग्धा मुदमुद्वहन्तु ।
आसामसाधारण कर्मरक्ष्य, परापरीक्ष्य, पर एव पन्थाः ॥ ६ ॥

अपि च—

निर्माय निर्माय निहन्तु कामो वामो विधिः केन विलङ्घनीयः ।

का आदेश दे दिया, तब मैंने कांपते हुए उनके पास जा कर कहा—

कञ्चुकी—क्या कहा ?

कुब्जक—इस तरह (कान मे कहता है)

कञ्चुकी—तब वज्रनाभ ने क्या किया ?

कुब्जक—वह दूसरे समय ज्ञात होगा ।

कञ्चुकी—जा कर पता लगाओ ।

कुब्जक—जो आज्ञा । (जाता है)

कञ्चुकी—(खेद के साथ)—

विपत्तियो के द्वारो को दूर से बन्द करते हुए मुग्ध जन भले ही खुशियाँ मनाया करें, परन्तु उनका तो अपना कुछ ऐसा मार्ग होता है जिसे कोई नहीं देख पाता है तथा जिसकी रक्षा असाधारण कर्म करते है ॥ ६ ॥

और—बना बना कर बिगाडने की इच्छा रखने वाले विपरीत भाग्य को कौन रोक सकता है ?

अथवा—
दुर्वारगर्वामयमोहभाजामाजानिकं भेषजमेव एव ॥ ७ ॥

(नेपथ्ये साङ्ग्रामिको वादित्रनादः)

पुरोधा —(ससम्भ्रममाकर्ण्य सातङ्कम्)

कोऽयं कर्णोपघाती प्रतिहतपटहप्रामगम्भीरगर्जः
स्फूर्जत् फूत्कारताध्वनिबहलबलत्कोहलाद्भाहलोलः ।
प्रेङ्खत्शुम्भेष शङ्खस्वनघनगगनप्रान्तरोम्रप्रचारी
द्वारोपासन्न दूरोन्नत मणिवलभीदुन्दुभी नादिनादः ॥ ८ ॥

अपि च—

दृप्यत्कल्पान्तवातव्यतिकरदलितोन्मूलितोर्वीधरेन्द्र
प्रभ्रंशोद्भ्रान्त पाथोनिधिनिनदमदोरक्षेपसंक्षेपदक्षः ।
एकीकुर्वं त्रिलोकीं समुदयतिरवः कोपि कालाग्निजाल-
व्याप्तब्रह्माण्डभाण्डस्फुटनचटचटध्वानधिक्कारतारः ॥ ९ ॥

अथवा—दुर्वार गर्वरूप रोग से ग्रस्त जनो के लिये स्वाभाविक चिकित्सा यही है ॥ ७ ॥

(नेपथ्य मे युद्ध के बाजे बजते हैं)

पुरोधा—(सभ्रम से सुन कर, भय के साथ)

द्वार समीपवर्ती मणिवलभी मे रक्षित दुन्दुभिगण का कानों को बधिर बना देने वाला, नानाविध वाद्यान्तर के शब्दों को अपने भीतर समेट लेने वाला, फूत्कार की उग्र गर्जना से वर्द्धित कोहल नामक वाद्य के शब्द से भीषण तथा शङ्खध्वनि से भरे आकाश मे प्रचार पाने वाला यह कैसा शब्द हो रहा है ॥ ८ ॥

और—प्रलयकालिक वह्नि की ज्वाला से व्याप्त होकर फूटने वाले ब्रह्माण्ड की चट चट ध्वनि को परास्त करने वाला, कल्पान्त वात से उखाड़े गये पर्वतराज के गिरने से मथित सागर के गर्जन को तुच्छ सिद्ध करने वाला तथा तीनो लोको को एक करता हुआ—यह कौन भयङ्कर शब्द हो रहा है ॥ ९ ॥

(पुनर्नेपथ्ये)

भोभोः शाखानगरशास्तार सामन्ताः ।

दैत्येशादेशवाचः समसमयसमाक्रान्तदिक्चक्रमेके
प्राकारेभ्य परस्तात् पवनमपि परस्मिन्सरन्तं ग्रसन्तु ।
गूढं व्यूढैरनीकैर्गगनतलमलं केपि कुर्वन्तु, केचित्
पातालान्तःप्रविष्टा नृपनगरधरामूलमाच्छादयन्तु ॥ १० ॥

पुरोधा—(सक्षोभम्) आः किमिदमादिष्टो दिशा पर्यवष्टम्भः ।

(पुनर्नेपथ्येकलकल)

कञ्चुकी—(आकर्ण्यावलोक्य च)

अन्योन्याघोषणोत्तालभीषणोत्फालशालिनः ।
विक्रामन्ति हरिच्चक्रमाक्रामन्तो महासुराः ॥ ११ ॥

पुरोधाः—(विलोक्य)

(फिर नेपथ्य मे)

अजी शाखानगरो के शासक सामन्तगण,

महाराज दैत्येश्वर की आज्ञा के साथ-साथ आप मे से कुछ लोग दिङ्मण्डल को चारो तरफ से घेर लें, कुछ लोग प्राकार से बाहर निकलती हुई हवा को भी रोक रखें, और कुछ लोग अपने सैन्य के साथ आकाश मे फैल जाय तथा कुछ लोग पाताल मे फैल कर दैत्यराजपुरी को जड को चारो तरफ से घेर लें ॥ १० ॥

पुरोधा—(क्षुब्ध हो कर) अहा, यह दिशाओ को घेरने का आदेश क्यो दिया गया है ?

(फिर नेपथ्य मे कलकल होता है)

कञ्चुकी—(सुन कर तथा देख कर)

एक दूसरे को ललकारने वाले तथा भयङ्कर उत्फाल मचाने वाले यह महासुर दिङ्मण्डल में व्याप्त होकर आक्रमण कर रहे हैं ॥ ११ ॥

पुरोधा—(देख कर)

दोःस्तम्भोद्रेकदम्भोत्कटदनुजभटास्फोटनोत्फालकाल-
व्यावल्गत्खड्गधाराततिदनुकलिताकान्तलोकान्तरालम्।
सामन्ताः स्वर्गकान्ताक्रमरणरणकास्कन्दिसन्दीप्तकोप-
व्याटोपस्पष्टदष्टस्फुरदधरतटी सङ्कटं सङ्कटन्ते ॥ १२ ॥

कञ्चुकी—(सव्ययम्) धिग्विधेर्वैपरीत्यम्, अत्याहितम्, कुतः ?

त्रिभुवनजययात्रा संभ्रमः क्वाद्य
क्व च निजनगरेऽपि द्रोहिणो दुर्निवाराः।
क्व तदमरवधूटी लुण्ठनोद्युक्तमन्तः
क्व पुनरुपनिपातोऽन्तःपुरे दुर्नयस्य ॥ १३ ॥

(पुनर्नेपथ्ये)

प्रवेशिता नटव्याजात् पुरं पापैः पतत्रिभिः।
अन्तःपुरेऽपराध्यन्ति चौरा दौरात्म्यदूषिताः ॥ १४ ॥

अपने बाहुबल के दम्भ से भरे दानव योद्धागण के आस्फालन से चलते हुए खड्ग समुदाय से दिशावकाश पूर्ण हो रहा है, यह सामन्तगण स्वर्गसुन्दरियों के मिलन की आकांक्षा तथा क्रोध के कारण अपने ओठ चबा रहे हैं तथा भीषण रूप मे चल रहे हैं ॥ १२ ॥

कञ्चुकी—(दुःख के साथ) धिक्कार है ब्रह्मा की विपरीतता को, बड़ा अनर्थ है, क्योंकि—

कहाँ तो आज त्रिभुवन विजय-यात्रा की तैयारी थी, और कहाँ यह अपने नगर मे भी दुर्धर्ष दुश्मनों का प्रवेश हो गया है। कहाँ हम अपने हृदयों मे यह अभिलाषा संजो रहे थे कि देवबालाओं का अपहरण करेंगे और कहाँ यह हो गया कि हमारे ही अन्तःपुर मे दुराचार प्रारम्भ हो गया ॥ १३ ॥

(फिर नेपथ्य में)

इन पापी पक्षियों के द्वारा नट के व्याज से नगर के भीतर लाये गये यह चौरगण दुष्टता से कन्यान्तःपुर में अपराध कर रहे हैं ॥ १४ ॥

तेऽमी महामायिनो मायाहरीभिर्महासुरीभिरन्तः पुरेऽन्विष्य निगृह्यन्ताम्। अथवा किमेतावद्भिः (उच्चैराघोषयन्) रे रे मायातिरोहितापरिचिताश्चौराः, चेतयध्वम्,

युष्माभिर्दनुजाधिराजतनया शुद्धान्तपाटच्चरैः
प्रागेवप्रतिपादितं स्वयमिदं मृत्यामुखे जीवितम्।
नहि किं वासरकौशिकैरिव चिरस्थेमाशयास्थीयते
स्थातारो न भवन्ति दुर्नयदशाविष्टा विनष्टायुषः ॥ १५ ॥

अपि च—

नापक्रान्तं दानवव्यूहमध्याद्वध्यानां वः कश्चिदन्यः प्रकारः।
दूरं युष्मान् प्रापयिष्यन् विधाता स्वस्थानेक. शस्त्रधारापथो नः ॥१६॥

पुरोधाः—(आकर्ण्य) (अपरतोऽवलोक्य)

आः के खल्वेते महापुरुषप्रकाण्डाः प्रकटमन्तःपुरप्रासादमारोहन्ति ?

कञ्चुकी—(विलोक्य) उपाध्याय, नून त एवैते चिराभिक्रान्त-

इन मायावी चोरों को मायाहरण करने वाली हमारी महासुरियाँ खोज कर पकड़ लें। (अथवा) इतने से क्या होगा ? (जोर से घोषणा करता हुआ) अरे मायावश तिरोहित चौरगण, सम्हल जाओ।

तुम लोगों ने दैत्यराजतनया के अन्तःपुर में डाका डालकर स्वयं अपना जीवन मौत के मुख मे डाल दिया है, फिर उल्लू की तरह, छिप कर चिरकाल तक जीवित रहने की आशा कर रहे हो, उनका जीवन चिरस्थायी नही हो पाता है जो दुर्विनय पर उतर आते हैं ॥ १५ ॥

दानव मण्डली के बीच से तुम वध्यों के निकल भागने का कोई रास्ता नहीं है, हमारे शस्त्रों की धारा के मार्ग से तुम लोगों को अलग कर सकने मे कोई ब्रह्मा समर्थ नही है ॥ १६ ॥

पुरोधा—(सुनकर) (दूसरी ओर देख कर)

अरे यह कौन महापुरुषगण खुले आम अन्तःपुर के प्रासाद पर चढ़ रहे हैं ?

कञ्चुकी—(देख कर) उपाध्याय, निश्चय ही यह वही कन्यान्त-

कन्यान्तः पुरावैरिणी विकत्थनमसहमाना स्वपौरुपनिर्भराः परापतन्ति।

(पुनर्नेपथ्ये कलकलानन्तरम्)

भो भो. कन्यान्त पुरप्रवेशिन, प्रसह्य गृह्यन्ताममी प्रासादवर्त्तिनः पाटच्चरा । वय पुनरखिलमेवान्त पुर पर्यवष्टभ्य तिष्ठाम. ।

कञ्चुकी—(सभयम्) अहो महदत्याहितमापतितम्, तदायाम-प्येतस्मात् सभावितास्त्रसञ्चारनिरावरणात् प्रदेशादपसराव. ।

(इति निष्क्रान्तौ)

विष्कम्भकः

(प्रविश्यापटीक्षेपेण वियदुत्पात नाटयन्)

भद्र —भोस्तथाहमुत्पतितो यथा हि—

सद्यो नद्यो लुप्तकल्पा विकल्पा. सत्त्वासत्त्वाभ्यां पत्तने वारणे वा।
शैलालीयं क्षुद्रवल्मीकपाली क्षोणी क्षुद्रा जायते द्रागियत्तः ॥ १७॥

पुरवर्ती दुष्टगण वैरियो की श्लाघा को नहीं सह सकने के कारण अपने पराक्रम पर निभर हो कर निकल रहे हैं ॥

(फिर नेपथ्य मे दूसरा कलकल होता है)

अजी, कन्यान्त पुर मे प्रवश करने वाले इन चौरो को पकड लो, हम लोग सारे कन्यान्त पुर को घेरे रहते हैं ।

कञ्चुकी—(भय से) अहो, बडा भारी अनर्थ है हम अब यहाँ स भाग चलें, क्योंकि अब यहाँ पर अस्त्र का सञ्चार होगा, जिससे बचने का आवरण नहीं है ।

[दोनों का प्रस्थान]

(विष्कम्भक)

(विना पर्दा उठाये प्रवेश करके आकाश मे उडने का अभिनय करता हुआ)

भद्र—अजी, मैं इस प्रकार से उडा कि—तत्काल नदियाँ मेरी दृष्टि से ओझल हो गई, गावों तथा गजो का होना सन्दिग्धावस्था में पड गया । यह वनमाला बहुत छोटी वल्मीक की तरह तथा पृथ्वी अतिक्षुद्र दीख रही है ॥ १७ ॥

(विपरयवतरत्यङ्कलीनां वीणां वहन्महः)

(निरूप्य) आं ज्ञातम् , सोऽय कलहकेदारनीरदो नारदो मुनिः ।

(ततः प्रविशत्याकाशवर्त्मना नारदः)

नारदः—(साशंसम्)

चिराददृष्टद्वन्द्वस्य दुःखसाक्षिभिरक्षिभिः ।
महाहवनवानन्द निर्भरैरद्य भूयताम् ॥ १८ ॥

अहो महोत्सवोऽयमस्माकम् यदन्योन्यमन्येषां जिजीविषाविषमोऽभियोगभारः । तथाहि—

तं विद्मो विषयं वयं विवदते वीरद्वयी यत्कृते
तद्राज्यं बहुमन्महे यदुदयद्द्वैराज्यदोलायितम् ।
एतन्नः सुदिनं नवाहवरवो यत्र श्रवो मुद्गणः
सा दिक् साहसिनामपायमसिना पश्यामि यस्यामहम् ॥१९॥

भद्रः—(ससंभ्रममुपसृत्य) भगवन्नयमहं प्रणमामि । (इति तथा करोति)

(गोद में वीणा लिये हुए नारद का प्रवेश)

नारद—(आशा भरे स्वर मे) अहा चिरकाल पर आज हमारे नयन महायुद्ध देखने के आनन्द का अवसर प्राप्त करेंगे, उनको वह आनन्द प्राप्त होगा जिसमे चिरकाल से जिन लोगो ने दुःख का साक्षात्कार नही किया है उनके दुःखो के प्रत्यक्ष होंगे ॥ १८ ॥

अहा, यह हमारे लिये महोत्सव है कि यह परस्पर जयेच्छा वालो का भयङ्कर आक्रमण हो रहा है । क्योकि—

हम उसी देश को देश समझते हैं जिसके लिये दो वीर परस्पर विवाद करते हैं, हम उसी राज्य को अच्छा राज्य समझते हैं जहाँ दो नृपो का संघर्ष जारी हो । हमारे लिये वही सुदिन होता है जब नवयुद्ध का कोलाहल कानो मे पड़ता है और वही दिशा वस्तुतः दिशा है जिसमें हम बहादुरों का वध देख पाते हैं ॥ १९ ॥

भद्र—(घबड़ाया हुआ समीप आकर) भगवन्, मैं भद्र प्रणाम करता हूँ । (प्रणाम करता है) ।

नारदः—(विलोक्य) को भवान् ?

भद्र—(सप्रश्रयम्)

पारिजात हरणाहवहृष्टो येन पूर्वमुपनृत्य हृतोऽसि ।
सोऽहमस्मि भगवन् स्मरमूर्त्तेर्वासुदेवतनयस्य वयस्यः ॥२०॥

नारद—(स्मृत्वा) भद्रोऽसि साधु साधु ।

समितमभितगर्वास्फारसर्वास्त्रजाल-
स्फुरणतरुणतेजो विद्युदुद्द्योतमानाम् ।
अपि सुचिरमतीतामस्मयनुस्मृत्य पीता-
मृत इव नवलब्धानन्दनिस्यन्दकन्दः ॥ २१ ॥

तत्कथय कन्यान्तःपुरे प्रद्युम्न पर्यवष्टभ्य किमाचष्ट वज्रनाभः ? प्रागवृत्त तु प्रागेव ध्यानादवगतोऽस्मि ।

भद्र—इदमाह—

भुक्कुण्डान् हुतभुक्कुण्डान्तरे संयम्य यामिकाः ।
क्षिप्रं क्षिपन्तु क्षुद्राणां धिङ्नृणां मारणे घृणाम् ॥ २२ ॥

नारद—(देख कर) तुम कौन हो ?

भद्र—(नम्रतापूर्वक)—

पारिजातहरण युद्ध मे प्रसन्न होकर जिसने नाच कर आप को प्रसन्न किया था, मैं वही काममूर्ति वासुदेव पुत्र का मित्र हूँ ॥ २० ॥

नारद—(स्मरण करके) भद्र हो, वाह वाह,

अपरिमित गर्व से पूर्ण सभी तरह के अस्त्रो के तेजरूप विद्युत् से प्रकाशमान उस चिरपूर्वकालिक युद्ध को याद करके मुझे उसी तरह की नवीन तृप्ति मिल रही है जैसी तृप्ति अमृत पीने पर मिलती है ॥ २१ ॥

अच्छा, अब यह बताओ कि कन्यान्त पुर मे प्रद्युम्न को घेर कर वज्रनाभ ने क्या कहा ? पहले की घटना को तो मैं ध्यान करके समझ गया हूँ ।

भद्र—यही कहा—

इन नर्तकों को बाधकर प्रहरीगण आग की भट्ठी में डाल दें, इन क्षुद्र मनुष्यो को मारने मे कृपा कैसी ? ॥ २२ ॥

नारद—ततस्ततः।

भद्र—ततस्त्रपाकोपाभ्यां पराधीनतास्पदयोः प्रद्युम्नगदयोः कुमार शाम्बः प्रहस्य प्राह—

भुक्कुण्डाः शौर्यशौण्डा वा वयं का वाग्विभीषिका।
न यावदवतीर्णोऽसि क्षमां प्रहरणक्षमाम्॥ २३॥

नारद—शङ्के सम्प्रति सक्षोभा प्रभावती प्ररोचयिष्यति प्रद्युम्नं पितृकुलप्रत्ययस्कन्दनाय।

भद्र—अथ किम्? स्त्रीस्वभावसुलभेन भीरुभावेन प्रणयकातरतां प्रकटयन्ती प्रभावती—

हा नाथेत्यसकृदुदीरितं सखीनामाकर्ण्य स्वपतिकुलादरादवादीत्।
जानाना यदुकुलजन्मनामुदारं व्यापारं कमपि विपक्षवाहिनीषु॥ २४॥

नारद—किमुक्तवती?

नारद—इसके बाद?

भद्र—इसके बाद लज्जा तथा क्रोध से परवश प्रद्युम्न और गद को हँसते हुए शाम्ब ने कहा—

हम नर्तक हों या बहादुर, जब तक हम तथा आप युद्धोपयुक्त भूमि में नहीं उतरते है तब तक यह वचनबिभीषिका से क्या होता जाता है॥ २३॥

नारद—मुझे शङ्का है कि इस पर बिगड कर प्रभावती प्रद्युम्न को पितृकुल पर आक्रमण करने को प्रेरित करेगी।

भद्र—और क्या? स्त्री स्वभाव सुलभ भय से प्रणयकातरता प्रकट करती हुई प्रभावतीने,

सखियों का 'हा नाथ' इस प्रकार की उक्ति को सुनकर पतिकुलपर आदर से कहा, उसे यदुवंशियों का शत्रु सैन्य पर होने वाला व्यापार ज्ञात था॥ २४॥

नारद—क्या कहा?

भद्र—

अलं विलम्बितैर्वीर दारुणाः सुरवैरिणः।
अप्रमत्तः परिक्रामन् विप्रतीयान्निवारय ॥ २५ ॥

नारद—ततः प्रभावती वितीर्णानुज्ञेन किमुपक्रान्तं प्रद्युम्नेन ?

भद्र—ततश्च सद्यः सम्पद्यमानमायामयोपादानकारणेन मनःकारुणा निर्मित मूर्त्तमिव दिवस्पतेर्मनोरथ रथमास्थाय सारथिं चिन्तयतोऽनन्तमूर्त्तेर्मूर्त्तिविशेष. स्वय शेषः प्रादुर्भूय कुमारस्य सारथिभावमङ्गीचकार।

नारदः—ततस्ततः ?

भद्रः—ततश्च—

यावदेष दनुजैर्निरुध्यते सूतभूतभुजगेशदेशितः।
प्राप तावदधिरूढमन्मथः सत्वरं नगरचत्वरं रथः ॥२६॥

रथेन तमनुद्रवन्तं दैत्याधिपतिमनुपतद्भिः दानवानीकैर्विमुक्ते

भद्र—प्रभावती ने कहा कि वीरो, देर करना ठीक नहीं है, ये दानव बडे भयङ्कर हैं, सावधान भाव से विचरण करते हुए शत्रुओं का निवारण करो ॥ २५ ॥

नारद—प्रभावती का आदेश पाकर प्रद्युम्नने क्या किया ?

भद्र—तत्काल मायामय सामग्री से मनरूप कारीगर ने मूर्तिमान् 'इन्द्र के मनोरथ के समान रथ प्रस्तुत कर दिया, कुमार सारथि के लिये सोच ही रहे थे कि स्वय शेषनाग प्रकट होकर सारथि बन गये।

नारद—इसके बाद—

भद्र—इस के बाद,

जब तक कुमार को दानवगण रोकें तभी तक वह सारथि रूप में वर्तमान शेषनाग द्वारा चालित कन्दर्पाधिरूढरथ नगर-चत्वर में आ गया ॥ २६ ॥

रथ से प्रद्युम्न का पीछा करने वाले वज्र नाम के पीछे चलने वाले दैत्यों

विय पथे प्राप्तोत्पतनमार्गेण मया नाकनायकाय निवेदयितुमेनमर्थ-मनुप्रस्थितेन भगवन्तो निरीक्षिता इति ।

नारद —(सस्मितम्) निवर्त्तस्व, निर्वृत्तमेतत् । (साभूयञ्च) जीवति-नारदे नैतादृशस्य पौरन्दरस्य पारितोषिकस्यापर पात्रम् । अपि च—

कर्णोन्मादनसिंहनादनिविडं मन्ये भयोरेतयो-
र्यावन्नावतरत्युदित्वरशरश्रेणी विलुप्तं नभः ।
अन्तस्तावदनर्थकारणकथासञ्चारणप्रोद्भव
न्मोदब्रह्मविनोदयोरविरतं द्वैरूप्यमीक्षामहे ॥ २७ ॥

भद्र —(विहस्य) भगवन् , तत किमुयुक्त देवराजेन ?

नारदः—आहूतो वासुदेव, प्रारभ्यन्ते प्रद्युम्नस्य साहाय्यकोप-करणानि ।

भद्रः—तर्हि किमस्माकमिदानीं व्यवसितव्यम् ।

न व्योममार्ग खाली कर दिया, मुझे उड़ने का रास्ता मिल गया, मैं यही बातें इन्द्र से कहने जा रहा था कि रास्ते में आप पर दृष्टि पड़ गई ।

नारद—लौट चलो, यह कार्य हो चुका है । (असूया से) नारद के रहते इन्द्र के पास इस तरह की खबर देकर पारितोषिक पाने का पात्र दूसरा नहीं हो सकता है, और—

कानों को पूर्ण कर देने वाले सिंहनाद से भरा यह आकाश जब तक बरसते हुए बाणों से आच्छादित नहीं हो जाता है तब तक अनर्थ को उपस्थित करने वाली इस युद्धवार्त्ता को फैलाने से सम्भवी आनन्द तथा ब्रह्मानन्द को मैं मिलता जुलता देखता हूँ ॥ २७ ॥

भद्र—(हँसकर) भगवन् , तब देवराजने क्या किया ?

नारद—उन्होंने वासुदेव को बुला भेजा प्रद्युम्न की सहायता के लिये उप-करण प्रस्तुत हो रहे हैं ।

भद्र—तो फिर हम लोगों को इस समय क्या करना है ।

नारद —किमपरम्, सम्भावय सहास्माभि समरसम्मर्दसाक्षात्करणेन लोचनमहोत्सवमिति।

भद्र —एवमस्तु। (इत्युभाववाङमुख परिक्रामत)

नारद —(सवितर्कम्) नियतमितो निरन्तराय समरसम्मर्द, तथाहि—

हरन्ति लवशो दृशो प्रसरमुद्धुरा रेणव
श्रव सपदि मूर्त्तवत् कलकल समाक्रामति।
भयङ्करमुपस्थित किमपि शङ्कते मन्मन-
स्तदेतदवधारित स्फुटमितो न दूरे रण ॥ २८ ॥

भद्र —(चक्षुरादि विक्षोभ नाटयन्)

न तावदपि धीयते नयनमेव रणूत्करै
पुरीतदपि जाठर श्वसितसक्रमात्पूर्यते।
स्फुटत्यथ न केवलं कलकलेन कर्णद्वयी
शिरोऽपि गुरुवेदनोल्वणमनेकधा भिद्यते ॥ २९ ॥

(इति पुन पराक्रामत)

नारद—और क्या करना है ? हमारे साथ चलो युद्ध देखकर नयनो को उत्सव प्रदान करो।

भद्र—अच्छा यही हो। (दोनो नीचे उतरते हैं)

नारद—(सोचकर) निश्चय इधर युद्ध निर्बाध भाव से चल रहा है क्योंकि—

जोरो से फैलती हुई धूल आखो को व्यथ बना रही है कल कल शब्द मूर्त्तवत् बन कर कानो पर आक्रमण कर रहा है मेरे मन मे शङ्का हो रही है कि कुछ भयङ्कर वस्तु उपस्थित हो रही है इन सारी बातो से निश्चय हो रहा है कि युद्ध यहाँ से दूर पर नही है ॥ २८ ॥

भद्र—(आख आदि के फडकने का अभिनय करता हुआ) केवल नयन ही धूल से नही आवृत हो रहे हैं जठरवर्त्ती नाडी भी सास से फूलती जा रही है कल-कल से कान ही नहीं फट रहे हैं शिर भी वेदना से अनेक टुकडों मे फटता सा लग रहा है ॥ २९ ॥

[पुन चलते हैं]

भद्र —(निपुणं विभाव्य) कथं बाणान्धकारोऽपि ।

नारद —(क्षणं विभाव्य सानन्दम्) पश्य पश्य—

विश्वग्व्यापिविरोधिचापविसरद्बाणान्धकारं क्षणा-
द्वीरः क्षिप्तसमीरदैवतशरश्रेणीभिरुत्सारयन् ।
उद्धूतासि लताकरोऽयमकरोद्द्रागेव तद्रैणवं
ध्वान्तं शान्तमुदित्वरद्विपदसृक्संभारधौताम्बरः ॥ ३० ॥

तदावामेतस्यामेव नेदीयस्यामधित्यकायामवतीर्य सुखमितो महाहवमवलोकयावः । (इति तथा कुरुतः)

नारद —(निरीक्ष्य, सोल्लासम्) अहो बहोः कालादयमवलोकितो दनुजलोकनायकानामभिसरः । तथाहि—

एते श्वेतेभशुण्डार्गलविपुलबलद्बाहुदण्डाः समीयुः
कोदण्डाकर्षहर्षव्यतिकरितरुषो विद्विषो वासवीयाः ।
दीर्घं दोलायमाना द्रुतचलितचमूचक्रभारेषु येषां
मेषा शेषा हि शीर्षैः कथमपि धरणी धार्यते धैर्यवद्भिः ॥ ३१ ॥

भद्र—(अच्छी तरह देखकर) क्यों बाणों से अन्धकार भी फैल रहा है ?

नारद—(थोड़ी देर देखकर सानन्द) देखो, यह वीर चारों ओर फैलते हुए शत्रुचाप निर्गत बाणकृत अन्धकार को वायव्य अस्त्र से दूर करता हाथ में तलवार लेकर शत्रुओं का संहार कर रहा है, शत्रुओं के रक्त से आकाश धुल रहा है, फलत फैलती हुई धूल द्वारा उत्पन्न अन्धकार शान्त होता जा रहा है ॥ ३० ॥

अत हम लोग इस समीपवर्ती अधित्यका में उतर कर आराम से युद्ध का अवलोकन करें ।

नारद—(देखकर) (प्रसन्नता से) अहा बहुत दिनों के बाद राक्षसों को ऐसी जमघट देखने को मिल रही है, क्योंकि—

श्वेत गजराज के शुण्डादण्ड समान बाहुशाली यह इन्द्र के शत्रुगण धनुराकर्षण से उत्पन्न आनन्द तथा क्रोध से युक्त होकर इकट्ठे हुए हैं, वेग से प्रचलित इनके सैन्य समूह के भार से दोलायमान इस धरा को शेषनाग के मस्तकगण धैर्यधारण करके किसी तरह सभाल रहे हैं ॥ ३१ ॥

भद्र—(विलोक्य, सातङ्कम्) अपूर्वोऽयमसुरवरूथिनीभरपरिभवो वसुन्धरायाः। अद्य खलु—

जरठतरकठोरोत्तुङ्गपृष्ठप्रतिष्ठा-
महह वहतु गुर्वीं कूर्मभूमीमृदुर्वीम्।
झटिति चिपिटभावापन्नविक्लिन्नकायः
किमपि गहनमेनां शेषमूर्त्तिर्बिभर्त्ति ॥ ३२ ॥

नारद—एवमेतत्,

गुर्वीमद्य धुरं कठोरजरठे पृष्ठे प्रतिष्ठापयन्
कूर्मो मर्मरुजं सहेत सहसा स्वाङ्गानि सङ्कोचयन्।
संहृत्यापि फणाः क्षणादथपरा भुग्नाः पतत्कन्धरं
तैस्तैः कञ्चुकमोचनैर्मृदुमृदुः शेषः कथं शक्ष्यति ॥ ३३ ॥

(सरोमाञ्चञ्च) एक एव कुमारो महासुरोसहस्रैरेकदाऽभियुक्तो न परिभूतश्चेति महदाश्चर्यम्।

भद्र—भगवन्, न परिभूत इति किमुच्यते,

भद्र—(देखकर, भयसे) आज—

पुरानी तथा उन्नत अपनी पीठपर कूर्मराज किसी प्रकार इस विशाल धरा का धारण कर लें, शेषनाग की देह तो पसीने से लथपथ तथा चिपटी हुई जा रही है, वह इस धरा को बडे कष्ट से किसी प्रकार धारण कर रहे हैं ॥ ३२ ॥

नारद—हाँ, ऐसी ही स्थिति है,

कठोर तथा पुरानी पीठ पर इस बोझिल पृथ्वी को धारण करके कूर्मराज किसी तरह मर्मान्तिक पीडा को सहन कर लेंगे, परन्तु यह शेषनाग तो अपने फणामण्डल को सङ्कुचित करके, गर्दन झुकाकर, बारबार कञ्चुक त्याग करने पर भी बोझ को उठाने में किस प्रकार समर्थ होंगे ॥ ३३ ॥

(रोमाञ्च का अभिनय करके)

अकेला प्रद्युम्न हजार महासुरो से एक साथ आक्रान्त होकर भी परास्त नहीं हो रहे हैं, यह बडे आश्चर्य की बात है।

भद्र—परास्त नहीं हो रहे हैं, यह आप क्या कह रहे हैं ?

विक्रमन्नेक एष ज्वलति निरवधिक्रोधवाताबधूतः
सन्नद्धीकृत्यधूमैरिव निखिलदृशो विद्विषां दुर्यशोभिः।
विष्वग् विक्षिप्यमाणप्रखरतरचलच्चण्डकाण्डार्चिरुच्चैः
सङ्ग्रामारण्यसीमन्यरितरुनिवहं निर्दहन् वीरवह्निः ॥३४॥

(क्षणं चावलोक्य सभयोत्कम्पम्) हन्त भोः कष्टम्, अयमेकदैवानवरतासुरमहास्त्रैरभिहतो मुह्यतीव रथकूबरावलम्बी शम्बरारिः।

नारदः—(विलोक्य सानन्दम्, आश्चर्यमोहमवधूय)

क्रोधात् सद्यः संविधायाभिधावन्
मायाकायव्यूहमेव द्विषद्भ्यः।
यावन्तोऽमी दानवाः शस्त्रहस्ता-
स्तावन्मूर्तीर्विश्ववर्त्ती बिभर्त्ति ॥ ३५ ॥

भद्रः—(सोत्साहम्) भगवन्, महच्चित्रमेतत्।

नारदः—

व्याप्नोति विश्वमपि यद्वपुषां वितानै-
स्तद्विश्वरूपतनयस्य न चित्रमस्य।

यह वीर पावक निरवधि कोपरूप वायु से प्रेरित होकर दुर्यश रूप धूम से शत्रुजनों की आंखों को भर कर चारों ओर फैलनेवाली अपनी प्रचण्ड लपटों से संग्राम भूमिकी सीमा में शत्रुरूप वृक्षों को जलाता जा रहा है ॥ ३४ ॥

(थोड़ी देर देखकर, भय से कांपते हुए) हाय, अनर्थ हुआ, यह प्रद्युम्न एकाएक अनवरत निपाती महासुरास्त्रों से आहत होकर मूच्छित सा होता हुआ रथ के स्तम्भ को पकड़ रहा है।

नारद—(देखकर सानन्द, आश्चर्य तथा मोह को दूर करके)

कुपित होकर प्रद्युम्न ने कायव्यूह कर लिया है अतः जितने शत्रु हैं उतना बनकर उनकी ओर दौड़ रहा है, कायव्यूह के हाथों में भी अस्त्र हैं वह इस प्रकार विश्ववर्त्ती हो रहा है ॥ ३५ ॥

भद्र—(उत्साह से) भगवन्, यह तो महाश्चर्य है।

नारद—विश्वरूप भगवान् का पुत्र यदि अपने शरीर भेद से विश्व को

एतत्तु चित्रमत एव पुनः प्रहर्त्तुम-
द्यापि यद्वलति दानववीरवर्गः ॥ ३६ ॥

भद्रः—भगवन् पश्य पश्य, प्रकृत्य परावृत्तमुखा साम्परायिकादप-सरन्त्यसुरवरूथिन्य ।

नारद—कथं दूरमपक्रान्तेष्वसुरसामन्तेषु प्रकामनिरन्तरालवर्त्ती सन्दिग्धे वज्रनाभ ।

भद्र—(आकाशे कर्णं दत्वा) किमाह कुमार· प्रद्युम्न भोः प्रवीरासुर वरूथिनीपते, किमपस्त्रियते ? समरादपसरणं हि नाम दुर्मरणम् ।

अथ च—

बहुभिरनुपतन्निहन्तुमेवं त्वमिव न सङ्गरमासुरं करिष्ये ।
कथमसि परिमुह्यमानचेतास्त्यज भयमेष वपूंषि संहरामि ॥३७॥

व्याप्त कर रहा है तो इसमे क्या आश्चर्य है ? आश्चर्य तो इसमे है कि दानव· गण प्रद्युम्न को ताडित करने की इच्छा से अभी भी इस लिये घेर रहे हैं कि वह भगवान् का पुत्र है ॥ ३६ ॥

भद्र—महाराज, देखिये, देखिये, प्रहार करके दानवसैन्य युद्ध से मुंह मोडकर भाग रहा है ।

नारद—क्यो, असुर सामन्तो के दूर चले जाने पर आगे बढ़ते समय वज्रनाभ समीप जाने मे हिचकिचा रहा है ।

भद्र—(आकाश मे कान देकर) कुमार प्रद्युम्न ने क्या कहा ? अजी वीरदानव सैन्य के नायक, भागते क्यों हो, ? ·समर भूमि स भागना तो अपमृत्यु है । और—

जैसे तुम एकाकी मुझपर बहुत सारी सेना के साथ आक्रमण कर रहे थे उस प्रकार मैं बहुत सेना के साथ एकाकी तुझपर आक्रमण नही करूँगा, फिर तुम घबडा क्यो रहे हो ? भय त्याग करो, मैं अभी अपने कायव्यूह को सहृत कर रहा हूँ ॥ ३७ ॥

नारदः—(विलोक्य साश्चर्यम्) कथं कायव्यूहमुपसञ्जहार कुमारः। (कर्णं दत्वा) किमुपसरन् ब्रवीति वज्रनाभः ?

धिक् पाटच्चरतामुपेत्य चरता पापानि कन्यागृहे
दिष्ट्या वीरपथास्थितेन भवता मृत्योः पदं प्राप्यते।
तत्त्वं व्याहर मत्प्रहारसदृशं जन्मात्मनः कर्म वा
यत्र त्वन्निधनाय धारितमिदं व्रीडां विदध्याद्धनुः ॥ ३८ ॥

भद्रः—(आकर्ण्य) किमुत्तरयति कुमारः—

वंशे यद्विपजद्विषोऽजनि यदोर्विख्यातदोर्विक्रमं
क्षत्रं तत्र जगत्त्रयी जनयितुर्जातोऽस्मि दैत्यद्विषः।
तस्यैतद्भुवनाद्भुतस्य जनुषो युक्तं तु मत्कर्मणा—
माख्यं रणशौण्डशम्बरवधाख्यानं तवाख्यास्यति ॥ ३९ ॥

नारदः—(आकर्ण्य) किं प्रत्युत्तरयति वज्रनाभः ? आः पाप, कार्ष्णिरसि ?

नारद—(देखकर, साश्चर्य) क्यों, कुमार ने कायव्यूह सहृत कर लिया ? (कान देकर) समीप आता हुआ वज्रनाभ क्या कह रहा है ? चौर्य वृत्ति धारण करके कन्यागृह मे पापाचार करनेवाले तुमको धिक्कार है, भाग्यवश वीरमार्गारूढ होने से आज तुमको मौत मिल रही है। तुम अपने जन्म तथा कर्म का वर्णन करो जिससे तुझे मारने को प्रस्तुत हमारा यह धनुष लज्जा धारण करे ॥ ३८ ॥

भद्र—(सुनकर) कुमार क्या उत्तर देते हैं ?

कमलकुल वैरी चन्द्र के वंश मे पराक्रमी यदुवंशी क्षत्रियो में त्रिलोकीजनक मधुसूदन से मैं उत्पन्न हुआ हूँ, रही हमारे कर्म की बात, सो मुझ अद्भुत जन्मा के कर्म तो तुम को मेरे द्वारा किये गये शम्बरवध की कथा ही बतायेगी ॥ ३९ ॥

नारद—(सुनकर) वज्रनाभ क्या प्रत्युत्तर देता है ?

दूरं प्रेम दुरूढदुष्टचरितामारोहयन् वैरिणीं
कामान्ध कुलटाविट स्फुटमयं पापे स्वयं पातित ।
यत्तद्वास्तु निमित्ततापि यदि ते तत्रास तस्मादपि
जातव्यस्य करिष्यते परिभवाग्नियादवा मेदिनी ॥ ४० ॥

किञ्चरे पाप,

प्रथयसि यथा प्रारम्भकमं निजकर्मणा
मजनि सदृशी तेषामेषा चिरादुपसंहृति ।
यदिह समरक्षोणीपृष्ठे लुठन्मम सायकै
स्तव सवलवोत्कृत्त काय शिवाभिरवाप्यते ॥ ४१ ॥

भद्र —(विहस्य) सशयितस्तावत्तवाय शब्द किं कायेन किमुत सायकैरन्वेष्यतीति ! किमत्र वा कथयति कुमार ? (कर्णं दत्वा) किमेवमाह ?

मदस्त्रव्युत्त्रस्त सपदि समनीकादपसरन्

अरे पाप तुम कृष्ण का बेटा है ? तुमने अपनी वैरिणी दुष्ट चरिता ललना के साथ बहुत दूर तक प्रेम किया है तुम कामा ध कुलटागामी होने से स्वय पतित हो चुके हो। जो कुछ हो यदि उस पापाचार में तुम निमित्त मात्र भी हो तो उतने ही भर से तुमको मारकर आज मैं पृथिवी को यादवों से शून्य किये दे रहा हू ॥ ४० ॥

और, अरे पाप

जिस प्रकार से तुमने अपना कार्य प्रारम्भ किया है उसका उचित उपसहार शीघ्र ही हो गया। अभी अभी तुम मेरे बाणों से आहत होकर पृथ्वी पर लोटने लगेगा टुकडों में बटी तुम्हारी यह देह सियारों को प्राप्त होगी ॥ ४१ ॥

भद्र—(हसकर) यहां यह सन्दिग्ध है कि 'तव' शब्द का काय मे अन्वय है या सायक में ? देखें कुमार क्या उत्तर देते हैं ? (कान देकर) क्या ऐसा कह रहे हैं ?

मेरे अस्त्रो से डर कर तुम युद्ध क्षेत्र से विमुख होकर भाग रहे थे भाग्यवश

परावृत्तः पुण्यैर्वचनरचनामेवमकरोः ।
इदञ्चापि व्यस्तं वदसि मुखमस्तीति न पुनः
सुधांशोर्वंशेऽस्मिन् प्रभवति परेभ्यः परिभवः ॥ ४२ ॥

नारदः—(आकर्ण्य) किं ब्रूते वज्रनाभः ?

परपरिभवपात्रं चेन्न ते जातिमात्रं
किमिति चरितचौर्यं दूषिताधिक्कुमार्यः ? ॥
कथमसुरपुरेऽस्मिन् दर्शितानेकभङ्गै-
र्नटनपटुभिरङ्गैर्यातनेयं धनेभ्यः ॥ ४३ ॥

भद्रः—आः पापापराधोयं वज्रपुरप्रवेशं प्रतिबध्नतो ब्रह्मणः, परमोद्धतचरित्रेषु सिद्धवद्विश्वासविधुरशीलस्य च कुमारीकुलस्य ।

नारदः—श्रोतव्यमत्रोत्तरं कुमारस्य ।

भद्रः—(आकर्ण्य) किं व्याहरति रौक्मिणेयः ?

इदमिह मम चौर्यं निर्भरं वाथ शौर्यं

लौट आये हो और इस प्रकार बात बना रहे हो। तुम्हारे पास मुह है इसलिये ऐसी बेतुकी बात कह रहे हो, क्या हिमांशु वंशियों का शत्रु से पराभव सभव है ? ॥ ४२ ॥

नारद—(सुनकर) वज्रनाभ क्या कहता है ?

यदि तुम्हारे वंश मे शत्रुकृत पराभव नही होता है तो तुमने चौर्यवृत्ति से कुमारियों को दूषित क्यो किया ? तुमको धिक्कार है। इस दानवनगरी मे अनेक रूप दिखलाकर नाचने मे निपुण भङ्गो से धन के हेतु तुमने इतनी यातनायें किस प्रकार सहीं ॥ ४३ ॥

भद्र—अरे पापी, वज्रपुरमे प्रवेशको प्रतिबद्ध करने वाले ब्रह्मा का यह कसूर है ? अथवा उद्धृतचरित्र जनो मे विश्वास करनेवाली कुमारियाँ अपराधिनी हैं।

नारद—इस प्रसङ्ग में कुमार का उत्तर सुनना है।

भद्र—(सुनकर) रुक्मिणी तनयने क्या कहा—

मेरी यह चोरी है या बहादुरी, इसका निर्णय नीतिज्ञ विद्वज्जन करेंगे।

व्यवसितमिति सन्तो नीतिमन्तो विदन्तु ।
इदमथ जगदेतद्वेद यद्वृष्णिवीरै-
र्ननु दनुजतनूजा दूषिता भूषिता वा ॥ ४४ ॥

अपि च—

मूढत्व द्रढयद्भिरुन्मदहृदामेषां महेन्द्रद्विषां
किन्नस्त्वन्निधनाय हृष्टहृदयैर्विक्रीडित वृष्णिभि. ।
हर्त्तव्यं तव वित्तमेव यदि चेत्त्व तत्स्वयं दत्तवान्
त्वा हत्वा ह्रियतामशेषमपि तत्कायं विशेषग्रह ॥ ४५ ॥

नारद —(विहस्य) साधु साधु, प्रवीरोद्गिरणीयाना गिरामप्युपरि प्रत्युत्तरित प्रद्युम्नस्य ।

(नेपथ्ये कलकल)

नारद —(विलोक्य) कथ पुनरपि परावृत्ता सङ्गराङ्गणमापतन्ति दानवानीकिन्य ।

(पुनर्नेपथ्ये)

इस बात को भी ससार जानता है कि वृष्णिवीरोने दनुजकन्याओ को भूषित किया है या दूषित किया है ॥ ४४ ॥

महेन्द्र के शत्रु इन राक्षसो की मूढता को दृढ करनेवाले इन यादवो ने प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारे वध के लिये कौन सा पराक्रम नही दिखलाया है । यदि तुम्हारे धन का हमे लोभ होता तो तुमने तो अपना सारा धन हमे दे ही दिया था, तुम्हें मारकर सारा धन ले लिया जाय इसमे क्या विशेषता हो रही है ॥ ४५ ॥

नारद—(हसकर) साधु साधु बहादुरों के कहने लायक वाणी के भी ऊपर प्रत्युतर है प्रद्युम्न का ।

(नेपथ्य मे कलकल)

नारद—(देखकर) क्यो फिर भी वापस लौटती हुई दानवसेना युद्ध क्षेत्र में आ रही है ।

(फिर नेपथ्य मे कलकल)

दैत्या॰ कृत्याय कस्मै कलकलविकलं त्रासयन्तस्त्रिलोकी-
मन्त क्रुद्ध कुरुध्वं क्षणमिह भवतामायुधानिक्षमन्ताम्।
एकोऽहं हन्मि कन्याविटमसुरभटद्रोहिणं त्रातुमेन
सुत्रामाद्या॰ समन्तादपि समरमपत्रासमत्राविशन्तु ॥ ४६ ॥

अपिच, भो किमिदमसम्भावितमापतितम्, आ प्रमाद,

प्रस्थानुविष्णुलोकावधिभवभवना भोगमात्रावशेषा-
मुन्मेषादेव दोष्णो शमितशतमखक्रान्तमद्यत्रिलोकीम्।
भर्त्ता तत्तादृगुद्यद्भुजबलविलसद्दानवानीकिनीना
धिग्धातारं धुनीते धनुरनुमनुजं विज्वलन् वज्रनाभ ॥ ४७ ॥

नारद —(ससम्भ्रमवलोक्य) महास्त्रप्रहारप्रसक्तचेतसा भयङ्करमुप-क्रान्तमसुरचक्रवर्त्तिना।

भद्र —भगवन्, प्रतिकर्त्तुं प्रवीण प्रद्युम्न इति न किञ्चिदेतत्।

दानवगण अपने कलकल से त्रिलोकी को भय भीत करते हुए आपलोग क्यो अपने अ त करण को कुपित कर रहे हैं, थोडी देर आप के अस्त्र क्षमा करें। इस कन्यादूषक दानवद्रोही को मैं अकेला ही मार गिराता हूँ निर्भय होकर इन्द्रादि सकल देवगण इसकी रक्षा के लिये इस युद्ध क्षेत्र मे आवें ॥ ४६ ॥

और—अजी यह कैसी असभावित बात हो रही है। आ, भयङ्कर भूल हुई। अपने बाहुबल के प्रभाव से विष्णुलोक से लेकर शिवलोक तक विचरण करनेवाला तथा इन्द्र के पराक्रम को शमित करनेवाला यह त्रिलोकीपति वज्रनाभ बाहुबलदर्पित दानवसैन्य का स्वामी होकर भी मनुष्य के ऊपर धनुष उठा रहा है, विधाता को धिक्कार है ॥ ४७ ॥

नारद—(घबडाहट के साथ देखकर) असुर सम्राट् ने महास्त्रप्रहार करने की इच्छा से भयकर कार्य करने को प्रवृत्त हो रहे हैं।

भद्र—महाराज, प्रद्युम्न प्रतीकार करने मे समर्थ हैं अत यह कुछ बात नही है।

नारद —(विलोक्य, साश्चर्यम्) एवमेतत् ।

अन्तर्मनून् विमृशता द्विषता प्रयुक्तं
तत्तन्महास्त्रमयभास्तुतदीर्घमायः ।
स्वीयाकृतिप्रतिमकायकपाटमग्रे
निर्माय तत्र निपतद्विफलं करोति ॥ ४८ ॥

भद्र —(विलोक्य, सानन्दम्) कथमियमम्बरादवतरत्यमरवरूथिनी ।

नारद —जानामि वज्रनाभस्य विकत्थनप्रागल्भ्यम् । वज्रपुरप्रवेशावकाशमासाद्य प्रद्युम्नस्य साहायकमादिष्टमासन्नवर्त्तिना विबुधचक्रवर्तिना ।

भद्र —एवमेतत् । किमधिकम्, मातलिसुतेन सुवर्चसा समुपनीत पौरन्दर स्यन्दनमारुह्य प्रासादशिखरादवतरति समरमेदिनीं गदः । अयञ्च पुलोमजापतिप्रणयिना प्रवरेणाधिष्ठितमैरावतमारुह्य शाम्ब सौधाम्बरवर्त्मना समराङ्गणमवतीर्णः ।

नारद—(देखकर, आश्चर्य के साथ) बात तो ऐसी ही है ।

शत्रु ने मन ही मन मन्त्रों का स्मरण करके महास्त्र का प्रयोग किया, प्रद्युम्न ने माया से अपनी आकृति वाले शरीरों की रचना करके उनके महास्त्र को उसी शरीर समुदाय रूप कपाट पर रोक लिया, इस प्रकार प्रद्युम्न ने शत्रुकृत महास्त्र प्रयोग को विफल कर दिया ॥ ४८ ॥

भद्र—(देखकर, सानन्द) क्यों, यह आकाश से देवसेना उतर रही है ।

नारद—वज्रनाभ की आत्मप्रशंसाशक्ति से मैं परिचित हूँ । वज्रपुर में प्रवेश का मौका पाकर समीपवर्त्ती इन्द्र ने प्रद्युम्न की सहायता करने का आदेश दिया है ।

भद्र—यही बात है, और क्या ? मातलिपुत्र सुवर्चा द्वारा लाये गये इन्द्र रथ पर आरूढ होकर गद प्रासाद शिखर पर से युद्ध भूमि में उतर रहे हैं और शाम्ब इन्द्र के स्नेहभाजन प्रवर से अधिष्ठित ऐरावत पर आरूढ़ होकर आकाशचुम्बी प्रासाद मार्ग से युद्ध-क्षेत्र में आ गये हैं । स्वयं जयन्त भी प्रद्युम्न के रथ पर उतर रहे हैं ।

स्वयं चायं जयन्तः प्रद्युम्नस्येव स्यन्दनेऽवतरति ।

नारदः—(विलोक्य) निर्भरं परिष्वज्य प्रद्युम्नं पृच्छत्ययनामयं जयन्तः ।

भद्रः—नूनमिदानीम्—

प्राक्पारिजाताहरणप्रयुक्तप्रद्युम्नबाणव्रणवेदनाभिः ।
हृदन्तरे संभृतमत्सरेऽस्मिन् बलान्निधत्ते प्रणयं जयन्तः ॥४९॥

नारदः—इत्थमेवाकस्मिकजिगीषोपदर्शितपरस्परातिशयितपौरुषाणां पुरुषाणां परस्परानुरागनिर्भराणि भवन्ति हृदन्तराणि ।

भद्रः—भगवन् स्मर्यते यथायं जयन्तः सन्ततपरापतितप्रद्युम्नशरसहस्रजर्जरीकृतकलेवरः सहस्रनयनपुटकोटराक्रान्तकायस्य जनयितुरनुकरणमकरोत् ।

नारदः—(स्मृत्वा, विहस्य)

प्रद्युम्नास्त्रगणव्रणप्रणयिभिर्गात्रैः शचीसूनुना
दृग्भिर्दग्तुरितोऽस्यकारिजनकाकारः किमत्राद्भुतम् ।

नारद—(देखकर) जयन्तप्रद्युम्न का गाढ़ालिङ्गनकर के कुशलवार्त्ता पूछ रहे हैं ।

भद्र—निश्चय ही इस समय—

पूर्वकाल मे पारिजातहरण प्रसङ्ग मे प्रद्युम्न द्वारा चलाये गये बाणो की चोट से जयन्त के हृदय मे जो द्वेष उत्पन्न हो गया था, इस समय जयन्त इस गाढालिङ्गन के द्वारा उस द्वेष के स्थान मे स्नेह को निहित कर रहे हैं ॥ ४९ ॥

नारद—अकस्मात् किसी विषय मे जिगीषा उत्पन्न हो जाने पर वीरजन अपना पौरुष प्रकट करते हैं, फिर भी उनके हृदयों मे एक दूसरे के लिये स्नेह इसी तरह भरा रहता है ॥

भद्र—महाराज, आपको याद है कि यह जयन्त प्रद्युम्नकृत बाण-प्रहार से जर्जर शरीर होकर हजार नयनों से व्याप्त शरीर अपने पितृ देव का अनुकरण करने लगे थे ।

नारद—(स्मरण करके, मुस्कुराकर)

प्रद्युम्न द्वारा प्रकृत अस्त्रगण से व्याप्त शरीर होकर जयन्त ने आँखों से

एतत्त्वद्भुतमस्त्रवर्षणपरे प्रत्यङ्गमस्मिन्निजै-
रस्राण्यक्षिपुटैः सहस्रनयनो वर्षन्नभूद्वार्षिकः ॥ ५० ॥

(अपरतोऽवलोक्य) भद्र, का खल्वियं वज्रपुरादेव बहिर्भवन्ती वाहिनी दानवानीकमभियोधयति ।

भद्रः—(निरूप्य) अस्मत्सार्थवाहिन एवैते सानुचरा यादवकुमारा दानवराजदत्तानि तानि तानि त्रिभुवनावगाहानि वाहनानि समारुह्य वैरिव्यूहावरोधमपसारयन्त. परापतन्ति ।

नारदः—(सप्रमोदम्) सम्प्रति सर्वतोमुखी सङ्गरलक्ष्मीः ।

(नेपथ्ये कलकल । उभावाकर्णयत.)

(पुनर्नेपथ्ये)

शुण्डाकृष्टान्दन्तदण्डाभिदष्टान्
यन्निर्पिष्टान् कष्टकष्टामवस्थाम् ।

भरे पितृ शरीर का अनुकरण किया । इसमे क्या आश्चर्य है ? आश्चर्य तो इसमें है कि जयन्त की देह पर जब प्रद्युम्न प्रत्यङ्ग मे बाण बरसा रहे थे तब इन्द्र उनके प्रत्येक अङ्ग पर अपने नयनो की वर्षा करते हुए वार्षिक मेघ बन गये थे ॥ ५० ॥

(दूसरी ओर देखकर) भद्र, यह कौन सी सेना है जो वज्र पर से ही निकलकर दानवो पर आक्रमण कर रही है ?

भद्र—(देखकर) यह हमारे साथी यादव हैं -जो-अपने अनुचरो के साथ दानवराज द्वारा दिये गये त्रिभुवन सञ्चरण - समर्थ वाहनो पर आरूढ़ होकर शत्रुओ के व्यूह को चीरते हुए आगे बढ़ रहे हैं ।

नारद—(आनन्द स) इस समय चारो ओर लड़ाई है ।

(नेपथ्य मे कलकल । दोनो सुनते हैं)

(फिर नेपथ्य मे)

यह धाम्बारूढ़ गजराज किसी को सूड से खींच कर, किसी को दाँतो से

दीनानित्थं दानवान्दर्शयन्तं
शाम्बारूढं वारणं वारयध्वम् ॥ ५१ ॥

भद्रः—भगवन् , पश्य पश्य ।

शाम्बोत्सृष्टशरान्धकारविसरन्नीहारभारैर्नभः
संवोढुं गिरिजागुरोरिवगिरेर्गर्वोद्धुरं धावतः ।
आपुङ्खव्यतिपक्तमार्गणमय जम्भद्विषत्कुम्भिनः
कुम्भावुद्दलयन्नुपैति भुजयोर्दर्म्भान्निकुम्भासुरः ॥ ५२ ॥

नारदः—भद्र, कतरोऽयमपरतः समरसंमर्दः ?

भद्रः—(निरूप्य) भगवन् ,

ऐन्द्रस्यन्दनचक्रचंक्रमचटत्कारत्रुटत्पञ्जर-
स्थूलास्थिस्थपुटान् पिनष्टि परितो निष्पात्य दैत्यान् गदः ।
इत्युद्वीक्ष्य विनिःक्षिपन्नुरुशरश्रेणीरनीकाग्रणी-
र्गम्भीरेण भुजोष्मणैव दनुजोर्वीशानुजो धावति ॥ ५३ ॥

दबाकर, किसी को पैरों से कुचल कर दानवों को कष्टमय अवस्था मे डालते हुए दीन बनाता आ रहा है, इसे रोको।

भद्र—महाराज, देखिये, देखिये,—

शाम्बद्वारा चलाये गये बाणकृत अन्धकार रूप पाले से व्याप्त आकाश को पार करने के निमित्त हिमालय की तरह सगर्व आगे बढ़ते हुए ऐरावत के मस्तक को मूलपर्यन्त चुने हुए बाणगण से विदीर्ण करता हुआ निकुम्भासुर बाहुदर्प से आगे की ओर बढता आ रहा है ॥ ५२ ॥

नारद—भद्र, दूसरी तरफ यह कैसा युद्ध हो रहा है ?

भद्र—(देखकर) भगवन् ,

इन्द्ररथ के चक्के के सञ्चार से जिनकी हड्डियाँ स्थूल हो जाती हैं ऐसे दानवो को गद रणभूमि मे पीसता आ रहा है, इस बात को देखकर उग्र बाणवृष्टि करता हुआ सैन्याग्रवर्त्ती सुनाम अपने पराक्रम के दर्प से दौडता आ रहा है ॥ ५३ ॥

नारदः—धावन्तु तावदेते यावद्भगवता गदाग्रजेनागत्यामर्षस्पृष्टया दृष्ट्या निष्पीतान्यायूंषिनामीषाम् ।

भद्र—भगवन्नवधार्यते कियान् विलम्बो वासुदेवस्य ।

नारद—आसीदधिवासितो द्वारवत्या रुद्रोपहारः । तन्निर्वर्त्य सम्प्रति समागतमवगच्छ भगवन्त रुक्मिणीरमणम् ।

(नेपथ्ये सर्वसंसारारावः शङ्खनादः)

नारद —(आकर्ण्य सहर्षम्) भद्र, परिचीयते पाञ्चजन्यध्वनिः ?

भद्र —(सप्रमोदम्) सभाव्यते। (उच्चैरालोक्य च) आ., कथ पतगराजः ?

नारद —नूनमेव देवगणसमाचमाजगाम वियति वासुदेवः ! न चाय मस्य मायामय. स्यन्दन. तादृशस्य तपस्तेजसा सनाथस्य द्विषतो रथस्य प्रत्यवस्कन्दने प्रभवतीति पिध्य पत्रमेनमनुपतति पतगेन्द्रः ।

भद्रः—कथमधिष्ठितमहेन्द्रनन्दनस्यन्दनमुत्सृज्य गरुडमारूढो रौक्मिणेयः ।

नारद—तब तक ये लोग दौड लें जब तक भगवान् कृष्ण अमर्षपूर्ण दृष्टि से इनकी आयु को समाप्त नही कर दे रहे हैं ।

भद्र—महाराज, आप समझते हैं कि कृष्ण के आने में कितना विलम्ब है ? ।

नारद—द्वारका मे महादेव की पूजा आयोजित थी, उसे समाप्त करके भगवान् को आया ही समझो ।

(नेपथ्यमे समस्त संसार को व्याप्त करने वाला शङ्खनाद)

नारद—(सुनकर, सहर्ष) भद्र, पाञ्चजन्य को ध्वनि पहचानते हो ?

भद्र—(हर्ष से) हो सकता है, (ऊपर देखकर) आः, क्या गरुड हैं ।

नारद—निश्चय भगवान् वासुदेव आकाश स्थित देवगण के बीच पहुँच गये हैं । प्रद्युम्न का मायामय रथ तपस्या के तेज से युक्त शत्रु-रथ को बराबरी नही कर सकता है इसीलिये गरुड उस रथ के पीछे उतर रहे हैं ।

भद्र—जयन्त के रथ को छोडकर प्रद्युम्न गरुड पर आरूढ हो रहे हैं क्या ?

नारदः—(सरोमाञ्चम्) अतः परमासन्नसंगरापवर्गदारुणानि पराऽपतिष्यन्ति यदवलोकनाय निरवकाशमाकाशमुपर्युपरि पर्युपस्थितानि स्थगयन्ति विमानानि।

भद्र—(अधोऽवलोक्य सरोमाञ्चम्) इयमितः शतक्रतुकुमारेण दुर्वारदारुणक्रमं परिक्रामता निकृत्तनिपतितैर्दनुजबलकलेवरैर्निविलतरमाकीर्णा समरधरित्री।

नारदः—(विलोक्य) एवमेतत्, परन्तु—

देहैर्द्रोहभृतामपूरि न समिद्भूमीतलं केवलं
पौलोमीतनयेन किन्तु निहतैरेतैरुपेतैर्दिवम्।
नीरन्ध्रं परिपूरितासु परितोरथ्यासु मिथ्याभय-
व्यग्रैः स्वर्गिभिरर्गलाकुलगृहद्वाःस्थैरवस्थीयते ॥ ५४ ॥

(नेपथ्ये कलकलः उभावाकर्णयतः = पुनर्नेपथ्ये)

धिकष्टममुना विहङ्गापसदेन—

नारद—(रोमाञ्चित होकर) इसके बाद होगा भयङ्कर युद्ध, जिसे देखने के लिये आये हुए विमान आकाश को व्याप्त करके अवस्थित हैं।

भद्र—(नीचे देखकर रोमाञ्चित होते हुए)

इधर जयन्त ने दुर्वारदारुण पराक्रम प्रकट करके कटकर गिरे हुए दानव कलेवर से युद्धभूमि को आवृत कर दिया है।

नारद—(देखकर) यही बात है, किन्तु—

जयन्त ने शत्रुओं को मारकर केवल युद्धभूमि को ही उनकी लाशों से नहीं भर दिया है, उन्हें स्वर्ग पहुँचाकर उनसे स्वर्ग को भी भर दिया है। मरकर स्वर्ग पहुँचे हुए राक्षसों से स्वर्ग की गलियाँ खचाखच भर गई हैं, स्वर्गवासी मिथ्याभय से व्यग्र होकर घर की कुण्डियाँ बन्द करके दरवाजे पर खड़े हो रहे हैं ॥ ५४ ॥

(नेपथ्य में कलकल दोनों सुनते हैं फिर नेपथ्य में)

हाय, इस दुष्ट पक्षिराज ने—

केचित् पक्षोत्क्षेपवातैर्विधूतास्त्रासादेवासादिता मोहमन्ये,
मूर्द्धानो द्वा धिङ्निगीर्णा परेषां चञ्चूकोटित्रोटितस्कन्धबन्धाः ॥५५॥

भद्र—भगवन्, भयङ्कर सञ्चरति पतगेन्द्रः।

नारदः—किमुच्यते कोपि किलावतारो महारुद्रस्य काद्रवेयकुलद्रोही विहङ्गपुङ्गवः। पश्य—

विद्वेषं दनुजनुषां कुलेषु कुर्वन् निर्बन्धाद्द्वितयमुपाददे स देवः।
तत्रैकस्त्रिभुवनकम्पनः पतत्री चक्रं च प्रचितपराक्रमं परेषु ॥ ५६ ॥

भद्र—अतः परं प्राप्तुमवशिष्यते सुदर्शनः पित्र्य रणोपकरणं कुमारस्य।

नारदः—पुरतस्तदपि नेदीयः।

भद्र—भगवन् पश्य पश्य, वैनतेय निहन्तुमुद्यत दानवेन्द्र दारुणविमर्दया गदया प्रहरति प्रद्युम्नः।

नारदः—(विलोक्य, वज्रनाभ निर्दिशन्) अयं हि—

किसी को पङ्ख की वायु से उडा दिया, कुछ को भय से ही मूर्च्छित कर दिया, और कुछ लोगो के गले को चोंच के द्वारा तोड कर उनके सिर को निगल लिया ॥ ५५ ॥

भद्र—महाराज, पतगेन्द्र बडी भयङ्करता से सञ्चरण कर रहे हैं।

नारद—क्या कहते हो, यह पक्षिराज सर्पवंशद्रोही तथा महारुद्र के अवतार हैं। देखो—राक्षसो से द्वेष रखने वाले भगवान् विष्णु ने आग्रहपूर्वक दो वस्तुएं अपनायी हैं, एक त्रिभुवन को कम्पित कर देनेवाला पक्षिराज और दूसरा है शत्रु पर पराक्रम प्रदर्शित करने वाला चक्र ॥ ५६ ॥

भद्र—इसके बाद प्रद्युम्न को पिता का युद्धोपकरण सुदर्शन पाना शेष है।

नारद—आगे वह भी समीप है।

भद्र—महाराज, देखिये देखिये, गरुड को मारने पर उतारू दानवेन्द्र को भयङ्कर प्रहार करनेवाली गदा से प्रद्युम्न आहत कर रहे हैं।

नारद—(देखकर, वज्रनाभ की ओर सकेत करके)

हृदिपतितगदः प्रतिप्रतीक-
प्रसरदसृङ्निवहारुणो विभाति ।
सपदि सवितृबिम्बसंविभागाद्
गिरिरिव सम्परिबद्धसान्ध्यमेघः ॥ ५७ ॥

भद्रः—क्षण प्रमुह्य प्रबुद्धो दनुजराज.। (सभयम्) पश्य पश्य, गदेयं दानवप्रयुक्ता प्रद्युम्नोरसि परापतति ।

नारदः—(सोद्वेगं कर्णौ विधाय) प्रतिहतममङ्गलम् ।

(नेपथ्ये)

हाहा महासुरविसृष्टगदाभिमृष्टः
कष्टां दशामयमुपैति विशालबाहुः ।

भद्रः—(आकर्ण्य) परित्रायस्वेति मूर्च्छितः पतति)

(नेपथ्ये शङ्खध्वनिः)

यह वज्रनाभ हृदय पर प्रद्युम्न से गदा द्वारा ताडित हुआ है, इसके रग रग से खून निकल रहा है, उस खून से रञ्जित होने के कारण वह ऐसा लग रहा है मानो सूर्यकिरण के सम्पर्क मे आया हुआ सान्ध्यमेघ से आवृत गिरिराज हो ॥ ५७ ॥

भद्र—थोडी देर तक मूर्च्छित रहकर वज्रनाभ होश में आ गया। (डरकर) महाराज, देखिये, यह वज्रनाभ की गदा प्रद्युम्न की छाती पर गिर रही है।

नारद—(उद्विग्न होकर, कान मूदकर) भगवान् भला करें,

(नेपथ्य मे)

हाहा! महासुर वज्रनाभ द्वारा प्रहृत गदा से आहत होकर यह विशाल-बाहु प्रद्युम्न कष्टमय दशा को प्राप्त हो रहे हैं।

भद्र—(सुनकर) (बचाओ—कहकर मूर्च्छित होता है)

(नेपथ्य में शङ्खध्वनि)

नारदः—(आकर्ण्य) समाश्वसिहि समाश्वसिहि, पाञ्चजन्यध्वनिरयं प्रबोधयति प्रद्युम्नम्।

(पुनर्नेपथ्ये—प्रियम्, प्रियम्)

एतस्य मोहमपसारयति त्रिलोकी
मुज्जीवयन्निव जगन्निधिशङ्खनादः ॥ ५८ ॥

भद्र—(समाश्वस्योत्थाय) (सकातर्यम्) भगवन्, किमवलोक्यते।

नारद—पश्य पश्य, अम्बरादवतरन्तं सुदर्शनमुत्थायाभिवाद्य पाणौकृत्य प्रहरति प्रद्युम्नः।

भद्र—(सोत्कण्ठम्) भगवन्, अपि नाम निर्दनुजदुर्दिनं त्रिभुवनं दर्शयिष्यति सुदर्शनः।

(नेपथ्ये कलकलं उभावाकर्णयतः। पुनर्नेपथ्ये)

प्रद्युम्नेनावकृत्त. कृतविकृतधरं दानवेन्द्रस्य दोर्भ्या
मङ्के कुर्वन्निवोर्वी निपतति निबिडस्नेहबन्ध. कबन्धः।

नारद—(सुनकर) धैर्य धारण कीजिये, धैर्य धारण कीजिये, यह पाञ्चजन्य शब्द कुमार को होश मे ला रहा है।

(फिर नेपथ्य मे—बडी खुशी, बडी खुशी) भगवान् के शङ्ख का शब्द प्रद्युम्न की मूर्च्छा को दूर कर रहा है ॥ ५८ ॥

भद्र—(आश्वस्त होकर, उठकर) (कातर भाव से) महाराज, क्या देख रहे हैं ?

नारद—देखो देखो, आकाश से उतरते हुए सुदर्शन को उठाकर प्रद्युम्न ने प्रणाम किया, फिर हाथ मे लेकर वह उस से प्रहार कर रहे हैं।

भद्र—(उत्कण्ठित भाव स) महाराज, क्या सुदर्शन त्रिभुवन से दानवों के आतङ्क को दूर कर देगा।

(नेपथ्य मे कलकल दोनों सुनते हैं फिर नेपथ्य मे)

प्रद्युम्न ने दानवेन्द्र का सिर काट दिया, उसके गिरने से पृथ्वी विकृत हो रही है, उसकी देह बाहुओ से पृथ्वी का आलिङ्गन सा कर रहा है। उसके

कण्ठेनाक्रम्यचक्रं गगनतलमथोल्लङ्घयन्नस्य मूर्ध्नो
बाहुर्धावन्नपर्वण्यपरमथचतुरस्त्युद्ग्रसत्यर्कबिम्बम् ॥ ५९ ॥

(पुनर्नेपथ्ये)

स्वर्नारी चिकुरापकर्षणरसाहम्भावसम्भावना—
मारोन्मादवशेन येन गमिता निर्निद्रमेव क्षपा. ।
सोऽयं प्राप्तजनार्दनानुजभुजोपश्लेष विश्लेषित-
द्वैतोद्वेगमुपैति वीरशयनस्वापं सुनाभासुर. ॥ ६० ॥

(तभावाकर्ण्य, सप्रमोदम्) अहा कथमतिचिरेण त्रिभुवनान्त करणा॰नन्दनिरन्तराण्याकर्णितानि वचनामृतानि ।

भद्र —(विलोक्य सानन्दम्) भगवन् पश्य पश्य,

कृत्वा शाम्बशरावली विदलितारम्भं निकुम्भं पुर.
पातालाय विधाय मानसममी दूरं व्यपेता द्विष. ।

गले मे चक्र लिपटा हुआ है, उसका सिर तथा बाहु आकाश मे उडकर अपर्व मे राहुकृत ग्रहण की शङ्का पैदा करते हुए सूर्यमण्डल को ग्रस्त कर रहे हैं ॥ ५९ ॥

(फिर नेपथ्य म)

देवाङ्गनाओं के बाल खींचने की इच्छा, तथा अहङ्कार प्रयुक्त उसकी सभावनाकृत उन्माद से जिसने रातें जगकर बिताई, वह सुनाभासुर गद के बाहुओ से पीडित होकर अद्वैत सुख में वीरशयन प्राप्त होकर सो रहा है ॥ ६० ॥

(सुनकर, सानन्द)

अहा, किस प्रकार शीघ्र ही त्रिभुवन के अन्त करण को आनन्दित करने॰वाले वचनामृत सुनने को मिल गये ?

भद्र—(देखकर, सानन्द) महाराज, देखिये देखिये ।

शाम्ब ने निकुम्भासुर के सारे प्रयत्न व्यर्थ कर दिये, तब राक्षसो ने निकुम्भ को आगे करके पाताल भाग जाने की इच्छा से मैदान छोड दिया ।

आदेशादथशार्ङ्गिणः शमयितुं निर्यान्ति लज्जालसाः ।
प्रासादाभिमुखा विषादविधुरान्दारान् कुमारास्त्रयः ॥ ६१ ॥

नारद —(सानन्दम्) तदहमुपगत्य सम्भावयामि प्रभावतीप्रद्युम्नौ ।

भद्र —(अञ्जलिं बद्ध्वा) आज्ञापयतु भवानहमपि गत्वा वासुदेव-वासवयो प्रसादसुखमनुभवामि ।

नारद —एवमस्तु ।

(भद्र निष्क्रान्तः)

नारद —(परिक्रम्यावलोक्य च) कथमित एव चन्द्रवती गुणवत्योरानन्दाय गदशाम्बामनुप्रहित्य तरलिकया सह स्वपन्थानमवलोकयन्तीं प्रभावतीमुपसर्पति प्रद्युम्नः ।

(तत प्रविशन्ति यथानिर्दिष्टाः प्रद्युम्नप्रभावतीतरलिका विभवतश्च परिवाराः)

अब भगवान् के आदेशानुसार तीनों कुमार स्त्रियों को शान्तिसुख प्राप्त करानें के लिये लज्जित भाव से प्रासाद की ओर जा रहे हैं ॥ ६१ ॥

नारद—(सानन्द) मैं प्रभावती तथा प्रद्युम्न के समीप जाकर उनको साधुवाद प्रदान करूँ ।

भद्र—(हाथ जोड कर) आप आज्ञा दें, मैं भी कृष्ण तथा इन्द्र के पास जाकर उनके सुख मे हिस्सा बटाऊँ ।

नारद—एवमस्तु ।

(भद्र का प्रस्थान)

नारद—(आगे चलकर, देखकर), क्यो, इधर चन्द्रावती तथा गुणवती को प्रसन्न करन के लिये गद तथा शाम्ब को भेजकर तरलिका के साथ प्रद्युम्न राह देखती हुई प्रभावती के पास आ रहे हैं ।

(यथानिर्दिष्ट रूप मे प्रद्युम्न, प्रभावती, तरलिका एवं उचित परिवार का प्रवेश)

प्रभावती—(सोच्छ्वासहर्षमुपसृत्य कुमारस्यासनमुपनयति)

कुमार —(उपविशति)

तरलिका—(तालवृन्तेन वीजयति)

कुमार—(सानुनयम्) देवि, पितृकुलद्रोही तवाहमिति मा ते मन्युरस्तु । (इत्यञ्जलिं घटयति)

प्रभावती—(सहर्षविषादम्) दिट्ठिआ परिट्ठिआइ पुण्ण परिणइ मग्गाइ अम्हह्ँसोहग्गाइ; तह दिट्ठिआ अदुक्करारम्भ दारुणाइ णिद्दलिआइ दनुअ दुद्दिणाइ । (प्रभावतीपटाञ्चलेन मुखमावृत्य रोदिति) (दिष्टया परिस्थितानि पुण्यपरिणतिमार्गाणि अस्माकं सौभाग्यानि, तथा दिष्टया अदुष्करारम्भ दारुणानि निर्दलितानि दनुजदुर्दिनानि) ।

नारद —(उपसृत्य) देवि अलमलमश्रुपातेन,

तातस्ते दिवसकरोपकल्पतरोर्कं
स्वर्लोकं मरणमहोत्सवादवाप्त ।

प्रभावती—(उच्छ्वास तथा हर्ष के साथ प्रद्युम्न के लिये आसन लाती है)

कुमार—(बैठते हैं)

तरलिका—(पङ्खा झलती है)

कुमार—(अनुनय के साथ) देवि, मैं तुम्हारे पितृ कुल का द्रोही हूँ इसके लिये तुमको मुझसे रुष्ट नहीं होना चाहिये । (हाथ जोड़ता है)

प्रभावती—(हर्ष तथा विषाद के साथ)

भाग्यवश पुण्य परिणामस्वरूप हमारे सौभाग्य सुरक्षित रहे और भाग्यवश ही भयङ्कर कार्य के कारण भीषण दानवदल समाप्त हो गये ।

(प्रभावती आँचल से मुह ढाँपकर रोती है)

नारद—(समीप जाकर)

(बेटी, तुम्हारे पिता सूर्यलोक का भेदन करके रणमरण के कारण स्वर्ग

प्रत्यूहं कमपि चराचरस्य हर्त्ता
भर्त्ता ते भवनमुपागतः किमन्यत् ॥ ६२ ॥

(सर्वे ससम्भ्रममुत्थाय प्रणमन्ति)

तरलिका—(सादरमासनमुपनयति । सर्वे यथोचितमुपविशन्ति)

(नेपथ्ये)

भो भोः पौरजानपदा, प्रवर्त्त्यतां माङ्गलिकमातोद्यं दनुजराजभवनमुपगतौ महेन्द्रोपेन्द्रौ वज्रपुरं सशाखानगरसहस्रं चतस्रश्च ग्रामकोटीश्चतुर्धा विभज्य हसकेतु प्रद्युम्नस्य विजय जयन्तस्य चन्द्रप्रभङ्गदस्य गुणवन्त शाम्बस्य चतुर कुमारान् सम्प्रत्येव सम्पादितसम्भारमभिषिञ्चतः ।

(सर्वे आकर्ण्य हर्षमभिनयन्ति । पुनर्नेपथ्ये)

आकल्पान्तं राज्यमेतच्चतुर्णा-
मास्तामेषामस्तु गोप्ता जयन्तः ।
सद्यः सर्वे सन्तु दिव्यानुभावा-
दिव्यास्त्रज्ञा व्योमयाना युवानः ॥ ६३ ॥

सिधारे हैं, और संसारभयहारी तुम्हारे पतिदेव तुम्हारे घर आ गये हैं, और क्या चाहिये ॥ ६२ ॥

(सभी शीघ्रता से उठकर प्रणाम करते हैं)

(तरलिका सादर आसन देती है सभी यथोचित रूप मे बैठते हैं नेपथ्य में)

हे नगरवासियो, आप मङ्गल वाद्य बजायें, इन्द्र तथा कृष्ण दानवराज के भवन मे आकर शाखानगर समेत बज्रपुर तथा चार करोड गाँवो को चार हिस्से में बाट दिया है एक भाग प्रद्युम्न के पुत्र हसकेतु को, दूसरा भाग जयन्त के पुत्र विजय को, तीसरा भाग गद के पुत्र चन्द्रप्रभ को तथा चौथा भाग शाम्बपुत्र गुणवान् को देकर तत्काल सामग्री प्रस्तुत करके उनका अभिषेक कर दिया है ।

(सभी सुनकर हर्ष का अभिनय करते हैं । फिर नेपथ्य मे)

प्रलयपर्यन्त यह राज्य इन चारो का रहे, जयन्त इनके रक्षक रहे, यह चारो कुमार सदा दिव्यशक्ति सम्पन्न, दिव्यास्त्र के ज्ञाता, व्योमविहारी तथा युवावस्थापन्न हों ॥ ६३ ॥

नारदः—(आकर्ण्य) (सानन्दम्)

वरोऽयं वासववासुदेवयोः कमपि महिमानमारोपयति व कुमारान् ।

प्रभावती—(सानुशयं जनान्तिकम्) सहितरलिए किं उण अज्जउत्तस्स आणविस्सदि भअव महुमहणो । (सखि तरलिके, किं पुनरार्यपुत्रस्य आज्ञापयिष्यति भगवान्मधुमथनः ।)

(नेपथ्ये)

राजानोऽमी पालनाय प्रजानां
यावत्प्राप्तप्रौढभावा भवन्ति ।
प्रद्युम्नाद्याः स्थापितास्तावदत्रे-
त्युक्त्वा सेन्द्रो यादवेन्द्रः प्रयाति ॥ ६४ ॥

तरलिका—(आकर्ण्य) सहि जिदं अम्हेहिं । (इत्युभे हर्षं नाटयतः) (सखि, जितमस्माभिः ।)

तरलिका—(ऊर्ध्वमवलोक्य) कहं चलि आ इज्जेव महेन्दादीणं विमाणाइं एसो भवअ महुमहणो विहङ्गवहणा गअणं आरुहिअ पत्थादुकामो

नारद—(सुनकर सानन्द)

इन्द्र तथा कृष्ण का यह वरदान आपके कुमारो को महिमातिशय प्रदान कर रहा है ।

प्रभावती—(परिताप के साथ, लोगों से बचाकर)

सखि तरलिके, न जाने, भगवान् मधुसूदन आर्यपुत्र को क्या आदेश देते हैं ?

(नेपथ्य मे)

तत्काल अभिषिक्त यह राजागण जब तक प्रजापालन के योग्य अवस्था को प्राप्त करें तब तक प्रद्युम्न आदि को यहाँ रखा जाता है, ऐसा कह कर इन्द्र के साथ कृष्ण जा रहे हैं ॥ ६४ ॥

तरलिका—(सुनकर) तब जीत हमारी रही ।

(दोनों हर्ष का अभिनय करती हैं)

तरलिका—(ऊपर की ओर देखकर) क्यों, महेन्द्र आदि के विमान

पतीएदि । तुम्हाणं बहुआण अन्ते उराइं ता सहि पणम चराचरगुरुणो अत्तणो ससुरस्स । (कथ चलितान्येव महेन्द्रादीना विमानानि, एष भगवान्मधुमथनः विहङ्गपतिना गगनमारुह्य प्रस्थातुकामः प्रतीयते । यूयं बध्वोऽस्तःपुरस्य । तद् सखि प्रथम चराचरगुरुमात्मनः श्वशुरम् ।)

प्रभावती—(ससम्भ्रममुत्थाय प्रणमति, इतरेपि यथोचितमाचरन्ति)

नारदः—(सानन्दम्) कुमारप्रद्युम्न, किन्तेभूयः प्रियम् ?

कुमारः—(अञ्जलिं बद्ध्वा) भगवन् , किमपरम् , यस्या युष्माकमाशिषोऽयमुदर्कः पुनः पुनः सैवास्माकमस्तु ।

नारदः—(विहस्य) का तुभ्यमाशीः ?

देवी त्वां मुरजिन्नवाम्बुदतडिल्लक्ष्मीरसूतस्वयं
त्वद्वाहू पुरुहूतपत्तनपतत्त्रासोपसर्गार्गले ।
किञ्चानाविनिविष्टविश्ववलयं ब्रह्मैव यच्चिन्त्यते
तस्य त्वं त्रिगुणोर्मिनिर्मितचतुर्व्यूहस्यतुर्यम्महः ॥ ६५ ॥

तथापीदमस्तु—

चल पडे ? यह भगवान् कृष्ण गरुड पर आरूढ होकर जाने को उद्यत मालूम पड रहे हैं । तुम उनकी बहुएँ हो, अत तुम विश्वगुरु अपने श्वसुर को प्रणाम करो ।

प्रभावती—(शीघ्र उठाकर प्रणाम करती हैं, अन्य जन भी यथोचित आचार करते हैं)

नारद—(प्रसन्नता से) कुमार प्रद्युम्न, तुमको और क्या प्रिय है ?

कुमार—(हाथ जोडकर) भगवन् , और क्या ? आपके जिन आशीर्वादों का यह फल है, हमें वही आशीर्वाद पुनः-पुनः प्राप्त होते रहें ।

नारद—(मुस्कुराकर) तुमको क्या आशीर्वाद, कृष्णरूप मेघ की विद्युल्लता रूपा स्वय लक्ष्मी ने तुमको जन्म दिया, तुम्हारे बाहु इन्द्रपुरी की रक्षा करते हैं, जिसमें समस्त विश्व लीन है, जिसे योगिजन ध्यान करते हैं, उस चतुर्धाविभक्त ब्रह्म के तुम चतुर्थ रूप हो ॥ ६५ ॥

फिर भी ऐसा होवे-—

प्राक् प्राप्नोतु चिराद्गिरासहचरीमुद्रां समुद्रात्मजा
नो चेन्मुञ्चतु वैरमित्यपि न चेन्मूढेषु मा मज्जतु ।
येषां दुर्मदमोहदुर्दिनदृशां दोषस्पृशामग्रतः
कालग्रस्त इवावसीदति सतामन्तर्निगूढो गुणः ॥ ६६ ॥

अपि च—
पुरस्तात्पैशुन्यं परिहरतु गोष्ठीं गुणजुषा-
मथैषामौन्नत्ये मुदितमिदमास्ताञ्जगदपि ।
कवेरेतत्कल्पावधिमघुरगम्भीरगुरुभि
र्गिरां गुम्फैः स्यूतं सुकृतमनुगृह्णन्तु सुहृदः ॥ ६७ ॥

(इति निष्क्रान्ता सर्वे)

नाट्योपसंहारो नाम सप्तमोऽङ्कः ।

इति महोपाध्यायश्रीहरिहरविरचित प्रभावतीपरिणयं नाम नाटक समाप्तम् ।

पहले तो लक्ष्मी सरस्वती की सहचरी बने, यदि ऐसा न हो तो कम से कम लक्ष्मी सरस्वती से वैर त्याग दे, यदि यह भी संभव नहीं हो तो लक्ष्मी उन मूढ जनों पर अनुराग नहीं करे जिन मोहग्रस्त दोषदर्शी अन्त करणो मे सज्जनों के गुणगण कालग्रस्त की तरह समाप्त हो जाते हैं ॥ ६६ ॥

और—पिशुनता गुणियों की गोष्ठी को छोड दे, यह ससार गुणियो की उन्नति मे प्रयत्नशील हो, और इस कवि की गम्भीर गुरुवाणी मे निबद्ध यह रचना सहृदयो द्वारा अनुगृहीत होती रहे ॥ ६७ ॥

(सभी का प्रस्थान)

नाट्योपसंहारनामक सप्तम अङ्क समाप्त

महोपाध्याय हरिहरोपाध्यायकृत प्रभावतीपरिणय नामक नाटक का हिन्दी रूपान्तर समाप्त

प्रभावतीपरिणयस्य

श्लोकानुक्रमणिका